

ज्ञातार्धर्मकथांग का साहित्यिक

एवं

सांस्कृतिक अध्ययन

लेखिका

डॉ० राजकुमारी कोठारी

सम्पादक

डॉ० विजय कुमार

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रन्थमाला : १४१

प्रधान सम्पादक
प्रो० सागरमल जैन

ज्ञातार्धर्मकथांग का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

लेखिका

डॉ० राजकुमारी कोठारी

सम्पादक

डॉ० विजय कुमार

प्रवक्ता, पार्श्वनाथ विद्यापीठ,
वाराणसी



पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

२००३

पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रन्थमाला सं० - १४१

- पुस्तक : ज्ञाताधर्मकथांग का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन
लेखिका : डॉ० राजकुमारी कोठारी
सम्पादक : डॉ० विजय कुमार
प्रकाशक : पार्श्वनाथ विद्यापीठ, आई०टी०आई०, रोड, करौंदी,
वाराणसी-५
दूरभाष संख्या : ०५४२-२५७५५२१
प्रथम संस्करण : २००३
मूल्य : २००.०० रुपये मात्र
अक्षर सज्जा : सरिता कम्प्यूटर्स, डी ५५/४८, औरंगाबाद, वाराणसी
फोन नं० : २३५९५२१.
मुद्रक : वर्द्धमान मुद्रणालय, भेलूपुर, वाराणसी.
© : पार्श्वनाथ विद्यापीठ
I.S.B.N. : 81-86715-73-8

Pārśwanātha Vidyāpīṭha Series No. : 141

- Title : **Jñātādharmakathāṅga kā Sāhityika ēvaṃ
Sāṃskṛtika Adhyayana**
Author : Dr. Rajkumari Kothari
Editor : Dr. Vijay Kumar
Publisher : **Pārśwanātha Vidhyāpīṭha**
I.T.I. Road, Karaundi, Varanasi-5.
Telephone No. : 0542-2575521
First Edition : 2003
Price : Rs. 200.00 only
Typesetting at : **Sarita Computers, D. 55/48, Aurangabad,**
Varanasi-5.
Phone No. 2359521.
Printed at : Vardhaman Mudranalaya, Bhelupur, Varanasi.

प्रकाशकीय

जैन आगम मूलतः प्राकृत भाषा में निबद्ध हैं किन्तु प्राकृत एक भाषा न होकर भाषा समूह है। प्राकृत के इन अनेक भाषिक रूपों का उल्लेख हेमचन्द्र प्रभृति प्राकृत-व्याकरणविदों ने किया है। प्राकृत के जो विभिन्न भाषिक रूप उपलब्ध हैं उन्हें निम्न भाषिक वर्गों में विभक्त किया जाता है— मागधी, अर्द्धमागधी, शौरसेनी, जैन-शौरसेनी, महाराष्ट्री, जैन-महाराष्ट्री, पैशाची, ब्राचड़, चूलिका, ढक्की आदि। इन विभिन्न प्राकृतों से ही आगे चलकर अपभ्रंश के विविध रूपों का विकास हुआ और जिनसे कालान्तर में असमियाँ, बंगला, उड़िया, भोजपुरी या पूर्वी हिन्दी, पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी आदि भारतीय भाषाएँ अस्तित्व में आयीं। अतः प्राकृत सभी भारतीय भाषाओं की पूर्वज है और आधुनिक हिन्दी का विकास भी इन्हीं के आधार पर हुआ।

अर्द्धमागधी आगम साहित्य की विषयवस्तु मुख्यतः उपदेशपरक, आचारपरक एवं कथापरक है। विषय प्रतिपादन सरल, सहज और सामान्य व्यक्ति के लिए बोधगम्य है। ज्ञाताधर्मकथा जैन कथा साहित्य का प्रथम सोपान है जिसका साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन लेखिका ने प्रस्तुत पुस्तक में समावेशित करने का सफल प्रयास किया है, अतः वे धन्यवाद की पात्रा हैं। अल्पावधि में प्रस्तुत पुस्तक को सम्पादित कर मूर्त रूप प्रदान करने का श्रेय संस्थान के प्रवक्ता डॉ० विजय कुमार को जाता है, उनको मेरा साधुवाद। साथ ही सुन्दर अक्षर-सज्जा के लिए सरिता कम्प्यूटर्स और स्वच्छ मुद्रण हेतु वर्द्धमान मुद्रणालय को भी मेरा धन्यवाद है।

६/१/२००३
वाराणसी

प्रो० सागरमल जैन
मंत्री

प्राक्कथन

कथा-साहित्य के क्षेत्र में प्रारम्भ से ही रुचि होने के कारण अपने अध्ययन-क्रम में आगम-ग्रन्थों के कथानकों को भी पढ़ने का अवसर मिला। इनमें मानव मन के शुभ-अशुभ भावों के कथानकों को व्यक्त करने वाली अनेक कथाएँ उपलब्ध होती हैं। उत्तराध्ययन, उपासकदशाङ्ग, विपाकसूत्र, ज्ञाताधर्मकथांग (णायधम्मकहाओ) आदि आगम-ग्रन्थ उनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें भी ज्ञाताधर्मकथांग की कथाओं में अभिव्यक्त नैतिक व मानवीय मूल्यों-ने मुझे बहुत ज्यादा प्रभावित किया। इसमें साहित्यिक व सांस्कृतिक महत्त्व की प्रभूत सामग्री भी पर्याप्त रूप से है, इस-कारण इसके अध्ययन की ओर विशेष जिज्ञासा बढ़ी। अपने इस अध्ययन के अन्तर्गत मन को छूने वाली और ज्ञानराशि की रश्मियों को आलोकित करने वाली सामग्री को भविष्य के लिए स्मरणार्थ एक अलग डायरी में सङ्केतात्मक रूप में आलेखित करना भी शुरु कर दिया जो धीरे-धीरे बढ़ता गया, तब यह जिज्ञासा भी प्रबल हुई कि इसके आधार पर लेखन-कार्य शुरु किया जाय, लेकिन पारिवारिक दायित्वों के कारण अवसर का अभाव ही रहा।

मेरे पूज्य व सम्माननीय पति डॉ० सुभाष कोठारी जो स्वयम् आगमविज्ञ भी हैं, इन सङ्केतात्मक नोट्सरूपी सङ्कलन को यदा-कदा उलट-पलट कर देखते रहते। इसी प्रयास में एक दिन वे सहसा बोल पड़े इतना परिश्रम किया है, पी-एच.डी. के लिए आधारभूमि बन गयी है, कुछ समय निकालो और लिखना शुरु करो। उनकी बात में वजन था, फिर क्या था, एक निश्चय किया, और लग गयी लक्ष्य की ओर, उसका परिणाम जो निकला वह सामने है।

द्वादशाङ्गों में इस ज्ञाताधर्मकथांग का छठा स्थान है। इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध में ज्ञात उदाहरण कथारूपों में हैं और द्वितीय श्रुतस्कन्ध में धर्मकथाएँ हैं। इसीलिए तत्त्वार्थभाष्यकार ने इसे ज्ञाताधर्मकथासूत्र कहा है और 'जयधवला' में 'णायधम्मकहाओ' कहा गया है। तात्पर्य यह है कि जिसमें धर्म का कथन किया गया है वह ज्ञाताधर्मकथा है। इस तरह यह कथा-साहित्य का प्रारम्भिक ग्रन्थ तथा लिखित कथा संग्रह का प्रथम सोपान है।

कथाओं में देश व समाज के विभिन्न पक्षों का चित्रण स्वाभाविक रूप से होता है, इस दृष्टि से यह तत्कालीन साहित्य व सांस्कृतिक विरासत का अपूर्व व उल्लेखनीय ग्रन्थ है। इसमें अभिव्यक्त इस धरोहर का विभिन्न अध्यायों व उनके शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया गया है। यथा—

प्रथम अध्याय में आगम स्वरूप, आगम अर्थ, आगम व्युत्पत्ति, आगम वाचना, आगम भेद, विविध आगमों का परिचय आदि प्रस्तुत किया गया है। इसी क्रम में ज्ञाताधर्मकथा के सामान्य परिचय को भी साङ्केतिक किया गया है।

द्वितीय अध्याय ज्ञाताधर्मकथांग के विस्तृत परिचय व नामकरण से सम्बन्धित है। इसमें ज्ञाताधर्मकथांग के रचनाकाल, तत्सम्बन्धी भिन्न-भिन्न मत, विभिन्न पाण्डुलिपियाँ, प्रकाशित कृतियाँ एवम् इससे सम्बन्धित व्याख्या साहित्य को प्रस्तुत किया गया है तथा इसका आलोचनात्मक दृष्टि से मूल्यांकन भी किया गया है।

तृतीय अध्याय प्राकृत कथा-साहित्य, उसके उद्भव व विकास, कथा का अर्थ, कथा की परिभाषा, कथा की उपयोगिता, कथाओं का उद्भव एवं विकास तथा कथा के वर्गीकरण से सम्बन्धित है। ऐसा इस आगम के महत्त्व व उपयोगिता को प्रतिपादित करने के लिए किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में ज्ञाताधर्मकथांग की विषयवस्तु को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है, परन्तु अध्ययनक्रम में यह आभास हुआ कि विषयवस्तु का विस्तार विवेचन ही प्रत्येक कथा के अन्तरंग एवं बाह्य साक्ष्यों को प्रस्तुत करने वाला है। अतः विषयवस्तु के समस्त प्रस्तुतीकरण को सरल एवं सुबोध रूप में दिया गया है। इस ग्रन्थ की प्रत्येक कथा को कथानक रूप में प्रस्तुत किया गया है एवं प्रत्येक कथा की विषयवस्तु के साथ अन्त में जो विशेषताएँ एवं निष्कर्ष दिये गये हैं वही कथा की मूल आत्मा है और वही जीवन का सन्देश भी है।

पञ्चम अध्याय में कथा के तात्त्विक-विवेचन के क्रम में कथानक, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण, शिल्पकला, देश-काल, वातावरण और उद्देश्य का वर्णन दिया गया है। इसमें कथा के मूलस्रोत को आधार बनाकर तथा विविध दृष्टान्तों, पात्रों के भावों, विचारों एवम् उनके चिन्तन को प्रस्तुत किया गया है। इस क्रम में कथा के विविध पक्षों को भी उनके साथ प्रस्तुत किया गया है। कथानक के मूल में अवान्तर कथाएँ किस रूप में मोड़ लेती हैं इस पर भी प्रकाश डाला गया है। चरित्र-चित्रण में नैतिक मूल्याँ, सामाजिक विचारों आदि की प्रधानता से युक्त दृष्टि रखते हुए ऐतिहासिक, पौराणिक पात्र चित्रण भी दिया गया है।

कथोपकथन की दृष्टि से यह कथा-ग्रन्थ बहुत महत्वपूर्ण है। कथा का प्रस्तुतीकरण कथोपकथन के द्वारा ही हुआ है। शिक्षात्मक विवेचन, नैतिक मूल्यों आदि को प्रस्तुत करते समय कथोपकथन ने कथा में प्राण फूँक दिये हैं। कथा में प्रयुक्त पात्र ही कथा को सजीव एवं वस्तुस्थिति को स्पष्ट करने वाले होते हैं और पात्रों के द्वारा ही कथा का उद्देश्य आँका जा सकता है।

षष्ठ अध्याय में भारतीय आर्य भाषाओं के क्रम में प्राकृत, संस्कृत, मागधी, अर्द्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अपभ्रंश एवम् आगे जाकर राजस्थानी आदि क्षेत्रीय भाषाओं का विकासक्रम प्रस्तुत किया गया है।

ज्ञातासूत्र की प्रस्तुति मूलतः समास शैली, वर्णन शैली, मनोवैज्ञानिक शैली, कथोपकथन शैली आदि के रूप में है। यह भाषाशास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही इस तरह के प्रयोग हमें प्राप्त होने लग जाते हैं जो भाषा की सहजता को इंगित करते हैं। सन्धि, समास, क्रिया, कृदन्त, अव्यय, देशी शब्द, तद्धित आदि शब्दों के उदाहरण के साथ इस अध्याय को कलेवर देने का प्रयास किया गया है।

सप्तम अध्याय का शीर्षक सांस्कृतिक अध्ययन है। इसमें सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है यथा- सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के विवेचन में ऐतिहासिक एवं पौराणिक पुरुषों एवं नारियों की जानकारी; भौगोलिक वर्णन में नगर, नदियाँ, वन, द्वीप आदि का विवेचन; सामाजिक जीवन में वर्ण, जाति, पारिवारिक एवं सामाजिक रीति-रिवाजों, प्रथाओं, विश्वास, कला एवं विज्ञान को दृष्टिगत रखते हुए प्रसाधन एवं वस्त्राभूषणों का प्रसङ्गोपात्त वर्णन किया गया है।

इसमें राज्य व्यवस्था के अन्तर्गत राजा, मन्त्रीपरिषद्, राजपुत्र, पुरोहित, राजा का उत्तरदायित्व, शासन व्यवस्था, कर व्यवस्था आदि के वैशिष्ट्य को दर्शाया गया है। अर्थोपार्जन के साधन, वाणिज्य, उद्योग, व्यापार, बाजार व्यवस्था आदि का भी इसमें वर्णन है। वास्तुकला, शिल्पकला, अषि, मषि, कृषि, वाणिज्य के साथ-साथ पुरुषों की बहतर एवं स्त्रियों की चौसठ कलाओं का उल्लेख इसमें प्राप्त होता है। धार्मिक जीवन में श्रमण एवं श्रावक धर्म, इनके व्रत, नियम, धार्मिक विश्वास आदि के बारे में इस कृति के आधार पर प्रकाश डाला गया है।

अष्टम अध्याय— यह “उपसंहार” शीर्षक से युक्त है। इसमें उपर्युक्त सातों अध्यायों को उपसंहारात्मक रूप में प्रस्तुत करते हुए शोध-प्रबन्ध की उपादेयता

एवं उपलब्धि का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार यह 'ज्ञाताधर्मकथाङ्ग का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन' आठ अध्यायों में विभक्त है। इन अध्ययनों में ज्ञाताधर्म की उपलब्धियों का सिंहावलोकन है। यह ग्रन्थ जहाँ एक ओर आत्मधर्म का प्रतिपादन करता है वहीं दूसरी ओर एक सुसंस्कारित समाज एवं राष्ट्र व्यवस्था की संरचना पर प्रकाश डालता है। इसमें जीवन के प्रत्येक पहलू पर सुन्दर व सटीक प्रकाश डाला गया है जिससे इस ग्रन्थ की विशेषताएँ स्वभावतः मूल्यवान हो गई हैं।

उत्तम एवं सुसंस्कारित कुल एवं धार्मिक आस्थाओं वाले स्वजनों का योग विरल ही प्राप्त होता है। सौभाग्य से मेरे दोनों ही परिवार धर्म भावना से ओतप्रोत हैं। मैं वन्दन करती हूँ अपने कुल की सौरभ एवं महासती नानूकंवर जी म.सा. की सुशिष्या साध्वी श्रीराज श्री जी म.सा. को, जिनका आगमिक एवं सैद्धान्तिक उद्बोधन इस दिशा में प्रेरणादायी बना।

इस शोध प्रबन्ध में मेरे आदरणीय, साहित्यकार, इतिहासवेत्ता एवं समालोचक, इन्स्टीट्यूट ऑफ राजस्थान स्टडीज के निदेशक तथा राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर के रजिस्ट्रार डॉ. देव कोठारी जी, जिनके विपुल ज्ञान एवं मार्गदर्शन से यह प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध पूर्ण हो सका, के प्रति कृतज्ञता या आभार प्रकट करने में मेरी सामर्थ्य नहीं है।

पूज्य ससुर श्री जीवनसिंह जी कोठारी, सासू श्रीमती सीतादेवी जी कोठारी, पिता श्री बलवन्त सिंह जी मेहता, मातु श्रीमती माणक देवी मेहता के आशीर्वाद, स्नेह एवं संबल से इस कार्य को सम्पन्न कर सकी अतः इनसे भी सदैव आशीष की अपेक्षा रखती हूँ।

मेरे पति डॉ० सुभाष कोठारी जो स्वयं आगमविद् हैं, के सहयोग एवं मार्गदर्शन का यह सुफल सदैव स्मरणीय रहेगा। यदि उनकी प्रारम्भ से ही प्रेरणा प्राप्त नहीं होती तो इस दुरुह कार्य को पूर्ण करने का मैं साहस भी नहीं कर सकती थी।

इसके अतिरिक्त मैं उन समस्त लेखकों/मनीषियों/चिन्तकों/विचारकों/समालोचकों की आभारी हूँ जिनके ग्रन्थों से इस कार्य को सम्पन्न करने में सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके प्रति भी आभार व्यक्त करना अपना दायित्व समझती हूँ।

इन्स्टीट्यूट ऑफ राजस्थान स्टडीज साहित्य संस्थान के पुस्तकालयाध्यक्ष, कर्मचारियों, आगम संस्थान, उदयपुर पुस्तकालय, जैन विद्या एवं ब्राह्मण विभाग

के पुस्तकालय, वहाँ के कर्मचारियों एवं समाज के अनेक सदस्यों की आभारी हूँ जिनके निरन्तर सहयोग, उत्साहवर्धन एवं संबल से यह कार्य सम्पन्न हो सका। मैं आभारी हूँ जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग के सह आचार्य डॉ० प्रेम सुमन जैन एवं अध्यक्ष डॉ० उदयचन्द्र जैन की, जिन्होंने इस ग्रन्थ को नवीन आयाम देने में अपने महत्वपूर्ण सुझाव दिये।

इस अवसर पर अपनी पुत्री सुश्री साक्षी का स्मरण करना भी अपना कर्तव्य समझती हूँ जिनकी कोमल भावनाओं को सहलाने वाले अमूल्य समय को इस काम में लगाकर मैं उसके साथ पर्याप्त न्याय नहीं कर सकी।

उदयपुर,

१/१/२००३

राजकुमारी कोठारी

विषयानुक्रमणिका

	पृष्ठसंख्या
प्रथम अध्याय : प्राकृत आगम परम्परा एवं ज्ञाताधर्म- कथांग	१-१६
द्वितीय अध्याय : ज्ञाताधर्मकथांग का रचनाकाल, परिचय एवं नामकरण	१७-२८
तृतीय अध्याय : प्राकृत कथा साहित्य का उद्भव एवं विकास	२९-४७
चतुर्थ अध्याय : ज्ञाताधर्मकथांग की विषयवस्तु	४८-७४
पञ्चम अध्याय : ज्ञाताधर्मकथांग का साहित्यिक अध्ययन	७५-११०
षष्ठ अध्याय : ज्ञाताधर्मकथांग का भाषा विश्लेषण	१११-१३८
सप्तम अध्याय : ज्ञाताधर्मकथांग का सांस्कृतिक अध्ययन	१३९-१६८
अष्टम अध्याय : उपसंहार	१६९-१७३
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :	१७४-१८४

प्रथम अध्याय

प्राकृत आगम परम्परा एवं ज्ञाताधर्मकथांग

भारतीय सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण बनाये रखने का श्रेय श्रमण परम्परा के साहित्य को भी जाता है। मानवीय आस्था के मूल्यों से समावेशित इसके सिद्धान्तों में वातरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी, परमदर्शी, समत्वयोगी एवं आप्त-वचनों के अर्थ समाहित हैं। सूत्रकर्ता ने अनादि एवं अनन्त कही जाने वाली शब्द-रचना से गुम्फित अधिकांश आगम सूत्रशैली में निबद्ध है। इसमें जो कुछ भी प्रतिपादित किया गया वह विरोधरहित, सापेक्षदृष्टि व अनेकान्त की गरिमा से मण्डित है तथा स्याद्वाद की शैली पर आधारित पूर्वापर पक्षपात से रहित है। परिवर्तित क्षेत्र-काल आदि भी इसके भावों को किसी भी तरह से प्रभावित नहीं कर पाये हैं। फलतः जो पूर्व परम्परा से चली आ रही थी उसे ही आचार्यों ने ज्यों का त्यों रख दिया। इसीलिए पूर्व परम्परा से आगत मूल सिद्धान्त को आगम कहा गया है।

सूत्रशैली में निबद्ध आगमों में सूत्रों के माध्यम से गम्भीर एवं समीचीन अर्थ को थोड़े शब्दों में रखा गया है। बुद्धि की अल्पता के कारण सूत्रबद्ध शब्द-सापेक्ष को समझ पाना कठिन है। अतः सूत्रकारों की दृष्टि को सर्वज्ञ की वाणी मानकर ही व्याख्याकारों ने सूत्र में अनन्त की दृष्टि को समाहित किया है जिससे वादी-प्रतिवादी सभी को आगम के रहस्य का ज्ञान हो सके ऐसा प्रयत्न किया गया है। इसके मूल में सर्वत्र तत्त्वचिन्तन है। इसमें जो कुछ भी कहा गया वह तर्कसंगत, प्रामाणिक और श्रुततीर्थ से समन्वित है। आगम आप्तवचन का अक्षय और अनादि विपुल भण्डार है। आगम पुण्य, पवित्र, शिव, शान्त एवं अनन्तगुणों का मुख्य द्वार भी है। इसके अक्षरों, शब्दों, वाक्यों आदि में अतिचार भी नहीं है। यह द्रव्यशुद्धि, भावशुद्धि, क्षेत्रशुद्धि और कार्यशुद्धि से संयुक्त है। इसका परम पावन पवित्र स्वरूप समस्त जीवों का उपकार करनेवाला भी है।

विश्व के प्रत्येक धर्म के अपने-अपने पवित्र धार्मिक ग्रन्थ हैं जिनमें उनके आदि पुरुषों, ऋषियों एवं तत्त्ववेत्ताओं के द्वारा प्रतिपादित धार्मिक-सिद्धान्त, आदर्श एवं उपदेश लिपिबद्ध हैं। वैदिक परम्परा में 'वेद', बौद्ध परम्परा में 'त्रिपिटक', ईसाई

परम्परा में 'बाईबिल', पारसी परम्परा में 'अवेस्ता' एवं इस्लाम परम्परा में 'कुरानशरीफ' पावन एवं पवित्र धर्मग्रन्थ माने गए हैं। जैन परम्परा में धर्मग्रन्थों को 'आगम' के नाम से सम्बोधित किया गया है। आगम को न तो वेदों के समान अपौरुषेय माना गया है और न ही किसी ईश्वर का संदेश। आगम उन अर्हन्तों एवं महापुरुषों की वाणी है जिन्होंने अपने तप, त्याग, संयम आदि के द्वारा आत्मज्ञान/केवलज्ञान को प्राप्त किया और उसी के आधार पर जो कुछ भी प्रतिपादित किया, वह सर्वहित के लिए पावन बन गया।

(क) 'आगम' का शाब्दिक विश्लेषण

'आगम' शब्द 'आ' + 'गम्' धातु से निर्मित हुआ है। 'आ' का अर्थ पूर्ण एवं 'गम्' का अर्थ गति, गमन, प्रयोजन, विचार या उत्पत्ति है। आचारांगसूत्र में 'आगम' बोध-ज्ञान, जानने आदि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।^१ व्याख्याप्रज्ञप्ति,^२ अनुयोगद्वारसूत्र, स्थानांगसूत्र^३ एवं प्राकृतकोश ग्रन्थों में 'आगम' शब्द शास्त्र या सिद्धान्त के रूप में प्रयुक्त हुआ है।^४

'आगम' का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ

'आगम्यन्ते परिच्छिद्यन्ते अर्था येन स आगमः।'^५ अर्थात् जो पूर्ण रूप से आए हुए हैं, वे अर्थ ही आगम हैं। जीतकल्प में आगम की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है— 'आगम्यन्ते परिच्छिद्यन्ते अतीन्द्रिया पदार्थाः अनेनेत्यागमः।' अर्थात् जिससे पूर्व परम्परा से आए हुए या प्रतिपादित किए गए अतीन्द्रिय पदार्थ स्पष्ट होते हैं वे आगम हैं।

(ख) आगम के पर्यायवाची शब्द

प्राचीनकाल से लेकर अब तक 'आगम' के कई नाम प्रचलित हुए। प्रारम्भ में इसे सुत्त या सूत्र, सुत या श्रुत कहा जाता था। स्थानांग में आगम-ज्ञाताओं को 'श्रुत-स्थविर' एवं 'श्रुतकेवली' कहा गया है।^६ नन्दीसूत्र में भी 'श्रुत' शब्द का ही प्रयोग मिलता है।^७

१. ".....आगमेता आणवेज्जा....."

आयारो तह आचारचूला- मुनि नथमल, १/५/४, पृ०-६१।

२. व्याख्याप्रज्ञप्ति, मुनि मधुकर-५/३/१९२.

३. स्थानांगसूत्र मुनि मधुकर, ३८८.

४. पाइअ सद्-महण्णवो- पं०. हरगोविन्ददास, पृष्ठ-११.

५. सर्वार्थसिद्धि ५/६.

६. स्थानांगसूत्र, मुनि मधुकर, सूत्र, १५०.

७. नन्दीसूत्र, मुनि मधुकर, सूत्र, ७५.

जैन आगम ग्रन्थों व भाष्य-ग्रन्थों में 'आगम' के लिए सूत्र, ग्रन्थ, सिद्धान्त, प्रवचन, आज्ञा, वचन, उपदेश, प्रज्ञापना, ररूपणा आदि शब्द दिए गए हैं।^१ आगम को ऐतिह्य, आमनाय और जिनवचन भी कहा गया है।^२ धवलाकार^३ ने आगम, सिद्धान्त और प्रवचन को आगम माना है। इसी तरह अन्य सूत्र ग्रन्थों में आगम के विविध नाम दिए गए हैं। आचार्य उमास्वाति ने आगम को श्रुत, आप्तवचन, आगम, उपदेश, ऐतिह्य, आमनाय, प्रवचन एवं जिनवचन कहा है।^४

इस तरह विभिन्न देश काल और परिस्थितियों के अनुसार जैन आगम के अनेक नाम रहे हैं। परन्तु वर्तमान में जैन आगम शब्द ही सर्वाधिक प्रचलन में है।

(ग) परिभाषाएँ

आचार्यों, विद्वानों, लेखकों, ग्रन्थकारों ने आगम की अनेक परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं जिन्हें सम्पूर्ण रूप से यहाँ रेखांकित करना सम्भव नहीं है, परन्तु कुछ उदाहरण के रूप में निम्न परिभाषाएँ द्रष्टव्य हैं—

- (१) सर्वज्ञ प्रणीत उपदेशों का जिस साहित्य में संकलन हो उसको 'आप्तकथन' कहते हैं।^५
- (२) आवश्यकवृत्तिमें आचार्य भद्रबाहु ने 'तव-नियम-नाण-रूक्खं तओ पविट्ठा' कहकर तप, नियम, ज्ञानरूपी वृक्ष पर आरूढ़ होकर अनन्त ज्ञानी केवली भगवान् भव्य-आत्माओं को उद्बोध देने के लिये ज्ञानरूपी फूलों की वर्षा करते हैं और गणधर अपनी बुद्धि पर उन समस्त फूलों को एकत्र कर प्रवचनमाला का जब निर्माण करते हैं तब वह निर्मित प्रवचनमाला आगम कहलाती है।^६
- (३) आवयकनिर्युक्ति एवं धवलाटीका में कहा गया है कि तीर्थंकर केवल अर्थरूप का उपदेश देते हैं और गणधर उसे ग्रन्थबद्ध या सूत्रबद्ध करते हैं, जिन्हें

१. "सूय सुत्त गंथ सिद्धंत सासणे आण वयण, उवदेसे। पण्णवण आगमे या एगट्ठा पज्जवा सुत्ते" अनुयोगद्वारसूत्र, ५१.

विशेषावश्यकभाष्य, गाथा-८९४.

२. तत्त्वार्थभाष्य, १/२०.

३. आगमो सिद्धतो पवयणमिदि एयट्ठो। धवला, १/२०/७,

४. "सूत्र श्रुत, मतिपूर्वद्वयनेक द्वादशभेदम्" तत्त्वार्थभाष्य, १/२०.

५. आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसत्रेदनमागमः॥१॥

उपचारादाप्तवचनं। प्रमाणनयतत्त्वालोक ४/१.

आप्तोपदेशः शब्दः। न्यायसूत्र, १/१/७.

६. आवश्यकवृत्ति, गाथा-८९-९०.

आगम कहा जाता है।^१

- (४) आवश्यकवृत्ति में आचार्य मलयगिरि ने आगम को परिभाषित करते हुए कहा है- जिससे पदार्थों का परिपूर्णता के साथ मर्यादित ज्ञान प्राप्त हो उसे आगम कहते हैं।^२
- (५) विशेषावश्यक भाष्यकार ने प्रतिपादित किया है कि जिससे सही शिक्षा या विशेष ज्ञान प्राप्त होता है, वह शास्त्र है, आगम है या श्रुतज्ञान है।^३
- (६) मूलाचार में आचार्य वट्टकेर ने कहा है- सूत्र गणधर कथित हैं, उन्हें प्रत्येक बुद्धों द्वारा प्रतिपादित किया गया है तथा वही श्रुतकेवलियों द्वारा कथित दशपूर्वी ज्ञान आगम है।^४
- (७) स्याद्वादमन्जरी में आप्त वचन को आगम माना गया है। उपचार से आप्त वचन से उत्पन्न अर्थज्ञान आगम है।^५
- (८) जिससे वस्तुतत्त्व का परिपूर्ण ज्ञान हो वह आगम है।^६
- (९) जिससे पदार्थों का यथार्थ ज्ञान हो वह आगम है।^७
- (१०) जो तत्त्व आचार परम्परा से सुवासित होकर आता है, वह आगम कहलाता है।^८

-
१. 'अत्यं भासइ अरहा, सुतं गंथति गणहरा णिउणं। सासणस्स हियट्ठाए तओ सुतं तित्यं पवत्तइ। आवश्यकनिर्युक्ति, १/९२.
धवला टीका, भाग १, पृ. ६४ व ७२.
२. आ-अभिविधिना सकलश्रुत-विषय-व्याप्ति-रूपेण, मर्यादया व यथावस्थित परूपणा रूपया गम्यन्ते- परिच्छिद्यन्ते अर्थाः येन सः आगमः। आवश्यक (वृत्ति) मलयगिरि.
३. सासिज्जइ जेण तयं सत्यं तं चाऽविसेसियं नाण।
आगम एव य सत्यं आगमसत्यं तु सुयनाणं। विशेषावश्यकभाष्य, गाथा-५५९.
४. सुतं गणहरकहिदं तहेव पतेयबुद्धकहिदं चा।
सुदकेवलिणा कहिदं अभिण्णदसपुव्वकहिदं चा। मूलाचार, ५/२७७.
५. आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसंवेदनमागमः।
उपचारादाप्तवचनं चा।" स्याद्वादमंजरी, अनु०-डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, श्लोक-३८.
६. आसमन्ताद् गम्यते वस्तुतत्त्वमनेने त्यागमः। रत्नाकरावतारिका वृत्ति-५८.
७. आगम्यन्ते मर्यादयाऽव बुद्ध्यन्तेऽर्थाः अनेनेत्यागमः रत्नाकरावतारिकावृत्ति.
८. आगच्छत्याचार्यपरम्पराया वासनाद्वारेणेत्यागमः। सिद्धसेगणिकृति-भाष्यानुसारिणी टीका, पृ०-८७.

(११) प्रमाणन्यतत्त्वालोक में कहा गया है कि कर्मों के क्षय हो जाने से जिनका ज्ञान सर्वथा निर्मल एवं शुद्ध हो गया है ऐसे आप्त पुरुषों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का संकलन ही आगम है।^१

इस प्रकार कुछ विशिष्ट परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि अर्हत्, तीर्थंकर, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी एवं महापुरुषों के प्रामाणिक वचन या उनके वचनों के आधार पर विशिष्ट लब्धिधारी (पूर्वधरों) आचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थ आगम, श्रुत आदि नामों से प्रतिपादित किए जाते हैं।

आगम परम्परा

भगवान महावीर के समय से धर्मग्रन्थों में जिज्ञासा रखनेवाले व्यक्ति अपने गुरुओं से विनयपूर्वक धर्मवाणी का श्रवण करते थे और उन पाठों को कंठस्थ करके स्वाध्याय के माध्यम से सुरक्षित रखते जाते थे। श्रवण एवं स्मरण की यह परम्परा बहुत लम्बे काल तक चलती रही। यद्यपि समय की आवश्यकता के अनुरूप उन्हें लिपिबद्ध किया गया। उस समय शास्त्रों की भाषा पर विशेष ध्यान दिया जाता था, जो भी उच्चारण किया जाता था, वह मात्रा, अनुस्वार, विसर्ग आदि को ध्यान में रखकर किया जाता था। यदि एक भी अक्षर, मात्रा आदि दोषयुक्त होती थी, तो उसे अनर्थ का कारण माना जाता था। जैन परम्परा में सूत्रों की पद संख्या का खास विधान था। तत्कालीन शिक्षा-पद्धति में किस सूत्र का उच्चारण किस प्रकार किया जाय और उच्चारण करते समय किन-किन दोषों से दूर रहना चाहिए इस बात की पूरी जानकारी पाठकों को रहती थी।

इस प्रकार शुद्ध रीति से एकत्रित किए गए श्रुत साहित्य को गुरु अपने शिष्यों को प्रदान करते थे और शिष्य उस ज्ञान को पुनः अपने शिष्यों को प्रदान करते थे। इस तरह यह धर्मशास्त्र स्मरण (स्मृति) के द्वारा ही सुरक्षित रखे जाते थे। इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि वर्तमान में भी शास्त्रों के लिए श्रुत, स्मृति और श्रुति शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जिस प्रकार ब्राह्मण परम्परा में पूर्व के शास्त्रों को श्रुति और बाद के शास्त्रों को स्मृति कहा जाता है। उसी प्रकार जैन परम्परा में सर्वप्राचीन ग्रन्थों को श्रुत कहा जाता है।

आचारांग में 'सूयं में' शब्द का प्रयोग बार-बार आने से यह स्पष्ट है कि यह शास्त्र सुने हुए हैं और बाद में भी सुनते-सुनाते ही चलते आए हैं।^२

१. आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसंवेदनमागमः प्रमाणनयतत्त्वालोक-४/१, २.

२. नन्दीचूर्णि, पृ०-८.

मौखिक परम्परा ही क्यों

प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ और इतिहासकार महोमहापाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा का मत है कि हमारे पूर्वजों को ताड़पत्र, कागज, स्याही, लेखनी आदि का परिचय एवं प्रयोग की विधि का ज्ञान था। जैन शास्त्रों को लिखने का सामर्थ्य भी जैनाचार्यों में था। फिर भी स्मरण रखने का मानसिक भार साधुओं की आचारचर्या एवं साधना पद्धति को ध्यान में रखते हुए उठाया गया। यह विदित है कि लेखन में कागज, स्याही, लेखनी आदि का समावेश होता है और इनके रखने व प्रयोग से हिंसा की सम्भावनाएँ रहती हैं। अतः लेखन नहीं करने में निम्न पहलू उल्लेखनीय रहे—

१. अहिंसा का पालन

जैन साधक मन, वचन, काय द्वारा हिंसा न करने, न करवाने व अनुमोदन न करने की प्रतिज्ञा करते हैं। आचारांग आदि साधुचर्या के मूल ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि साधु ऐसी वस्तु स्वीकार नहीं करते जिसमें थोड़ी-सी भी हिंसा की संभावना होती हो।

२. परिग्रह की संभावना

जैन साधक को हिंसा एवं परिग्रह की संभावना होने से निर्वाण में बाधाएँ उपस्थित होती हैं इस कारण लेखन की उपेक्षा की गई। 'बृहत्कल्पसूत्र' में स्पष्ट उल्लेख है कि पुस्तक रखने से प्रायश्चित्त आता है।

३. आन्तरिक तप

पुस्तकों के रहने से श्रमण धर्म-वचनों का स्वाध्याय कार्य नहीं करते। धर्म-वचनों को कंठस्थ कर उनका बार-बार स्वाध्याय करना एक तप है, पुस्तक रखने से यह तप मन्द पड़ने लग जाते हैं और साधक शुद्ध-अशुद्ध बोलकर एक औपचारिकता मात्र पूरा करने लगते हैं, अतः यह उचित नहीं माना गया।

आगम विच्छेद

महावीर के परिनिर्वाण के पश्चात् श्रमणों के क्रिया-कलापों व आचार-विचारों में निष्क्रियता आने लगी। जैन धर्म सम्प्रदायों में विभाजित होकर अचेलक व सचेलक परम्पराओं में बंट गया। श्रमण अपरिग्रह को छोड़कर परिग्रह धारण करने लगे। बीच-बीच में प्रकृति के प्रकोप के कारण भी धर्मशास्त्रों का यथावत स्वाध्याय करना कठिन होता गया। इस कारण आगम विच्छेद का क्रम शुरू हुआ। इस आगम विच्छेद के बारे में दो मत प्रचलित हैं। प्रथम के अनुसार श्रुतधारक ही लुप्त होने लगे।^१

१. आचारांग-सूत्र, मुनि मधुकर, सूत्र १/१.

जयधवला^१ व धवला^२ के अनुसार श्रुतधारकों के विलुप्त हो जाने से श्रुत विलुप्त हो गया।

श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परम्परा के अनुसार अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी थे, जिनका स्वर्गवास श्वेताम्बर मान्यतानुसार वीर निर्वाण के १७० वर्ष बाद व दिगम्बर मान्यतानुसार वीर निर्वाण के १६२ वर्ष बाद होना माना गया है। इन्हीं के स्वर्गवास के साथ चतुर्दश पूर्वधर या श्रुतकेवली का लोप हो गया और आगम विच्छेद का क्रम आरम्भ हुआ। वीर निर्वाण संवत् २१६ में स्थूलिभद्र स्वर्गस्थ हुए। इसके बाद आर्य वज्रस्वामी तक दस पूर्वों की परम्परा चली, वे वीर निर्वाण संवत् ५५१ (विक्रम संवत् ८१) में स्वर्ग सिधारें।^३

यह भी माना जाता है कि आर्य वज्रस्वामी का स्वर्गवास वीर निर्वाण संवत् ५८४ अर्थात् विक्रम संवत् ११४ में हुआ।^४ दिगम्बर मान्यतानुसार अन्तिम दस पूर्वधर धरसेन हुए और उनका स्वर्गवास वीर निर्वाण ३४५ में हुआ अर्थात् श्रुतकेवली का विच्छेद दिगम्बर परम्परा में श्वेताम्बर परम्परा की अपेक्षा ८ वर्ष पूर्व ही मान लिया गया, साथ ही दस पूर्वधरों का विच्छेद दिगम्बर परम्परा में श्वेताम्बर परम्परा की अपेक्षा २३९ वर्ष पूर्व माना गया।^५

आगम वाचनाएँ

भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद उनके उपदेश मौखिक रूप में सुरक्षित रहे। किन्तु बाद में गणधरों ने उनके उपदेश/वचनों को ग्रन्थों के रूप में प्रस्तुत किया। वर्तमान में जो आगम हमें उपलब्ध हैं उनको वर्तमान स्वरूप प्रदान करने में लम्बा समय लगा है, इसके लिए जैनान्नायकों ने कई आगम वाचनाएँ की हैं। उन वाचनाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

प्रथम वाचना

वीर निर्वाण १६० के आसपास जैन संघ को भंयकर दुष्काल से जूझना पड़ा। जिससे समस्त श्रमणसंघ छिन्न-भिन्न हो गया। दुर्भिक्ष के कारण साधु आहार की तलाश में सुदूर देशों की ओर चले गये। दुष्काल समाप्त होने पर विच्छिन्न श्रुत को संकलित

१. जयधवला, पृ०-८३.

२. धवला, पृ०-६५.

३. शास्त्री, देवेन्द्र मुनि- जैन आगम साहित्य मनन और मीमांसा, पृ०-३९.

४. मालवणिया पं० दलसुख, आगम युग का जैन दर्शन, पृ०-१६.

५. उपासकदशांगसूत्र, मुनि आत्माराम, प०-९.

करने के लिए वीर निर्वाण के १६० वर्ष पश्चात् श्रमण संघ आचार्य स्थूलिभद्र के नेतृत्व में एकत्रित हुआ। इसका सर्वप्रथम उल्लेख तित्थोगालि में प्राप्त होता है। पाटलिपुत्र में प्रथम बार श्रुतज्ञान को व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया। जिससे इसे 'पाटलिपुत्र वाचना' नाम दिया गया। यहाँ एकत्रित श्रमण संघ ने परस्पर विचार संकलन कर ग्यारह अंग संकलित किये।^१ बारहवें अंग दृष्टिवाद का ज्ञान किसी को नहीं था। उस समय दृष्टिवाद के ज्ञाता सिर्फ भद्रबाहु ही थे जो नेपाल की गिरि-कंदराओं में महाप्राण नामक ध्यान की साधना कर रहे थे।^२ उनसे दृष्टिवाद का ज्ञान लेने के लिए श्रमणसंघ नेपाल में भद्रबाहु की सेवा में उपस्थित हुआ और दृष्टिवाद की वाचना देने का निवेदन किया, परन्तु भद्रबाहु ने आचार्य होते हुए भी संघ के दायित्व से उदासीन होकर कहा- मेरा आयुष्य अल्प समय का है, अतः मैं वाचना देने में असमर्थ हूँ।^३ श्रमण संघ क्षुब्ध हो उठा और यह कहकर लौट आया कि संघ की प्रार्थना अस्वीकार करने से आपको प्रायश्चित्त लेना होगा।^४

पुनः एक श्रमण संघाटक ने भद्रबाहु के पास आकर निवेदन कर संघ की प्रार्थना दोहराई तो भद्रबाहु एक अपवाद के साथ वाचना देने को तैयार हुए।^५ उन्होंने कहा कि वे वाचना अपने समयानुसार प्रदान करेंगे। इस पर भद्रबाहु ने स्थूलिभद्र आदि ५०० शिक्षार्थियों को एक दिन में सात बार वाचना देना प्रारम्भ किया। तीन खण्डों में विभाजित इस वाचना के अन्तर्गत प्रथम खण्ड की प्रथम वाचना भिक्षाचार जाते-आते समय, द्वितीय खण्ड की तीन वाचनाएँ विकाल बेला में, तृतीय खण्ड की तीन वाचनाएँ प्रतिक्रमण के बाद रात्रि में देते थे।^६

वाचना प्रदान करने का यह क्रम मन्द होने से मुनियों का धैर्य टूट गया। ४९९ शिष्य वाचना को बीच में ही छोड़कर चले गये, परन्तु स्थूलिभद्र निष्ठा से अध्ययन में लगे रहे और आठ वर्षों में आठ पूर्वों का अध्ययन कर लिया।^७

इस प्रकार दस पूर्वों की वाचना के पश्चात् साधनाकाल पूर्ण हो जाने पर भद्रबाहु

१. उपदेशमाला, विशेषवृत्ति, गाथा-२४.
२. आवश्यकचूर्णि, भाग-२, पृ०-१८७.
३. तित्थोगालि, गाथा-२८-२९.
४. वही, गाथा-२८-२९.
५. वही, गाथा-३५-३६.
६. परिशिष्ट पर्व, सर्ग-९, गाथा-१०.
७. वही, सर्ग-९.

पाटलिपुत्र आए। वहाँ यक्षा आदि साध्वियाँ दर्शनार्थ आयी। वहीं पर स्थूलिभद्र ने सिंह का रूप धारण करके चमत्कार दिखाया। यह बात भद्रबाहु को ज्ञात हुई और उन्होंने आगे वाचना देने से अस्वीकार करते हुये कहा- ज्ञान का अहंकार विकास में बाधक है। आचार्य स्थूलिभद्र द्वारा क्षमा मांगने एवं अत्यधिक अनुनय-विनय के पश्चात् शेष चार पूर्वों की वाचना केवल शब्द रूप में प्रदान की। इस प्रकार पाटलिपुत्र वाचना में दृष्टिवाद सहित अंग साहित्य को व्यवस्थित करने का प्रयत्न हुआ था।

द्वितीय वाचना

आगम संकलन हेतु दूसरी वाचना ईस्वी पूर्व द्वितीय शताब्दी अर्थात् वीर निर्वाण ३०० से ३३० के मध्य में हुई। उड़ीसा के सम्राट खारवेल थे जो जैन धर्म के उपासक थे। उन्होंने उड़ीसा के कुमारी पर्वत पर जैन मुनियों का सम्मेलन बुलाकर मौर्यकाल में जो अंग विस्मृत हो गये थे, उन्हें संकलित कराया। इस वाचना के प्रमुख आचार्य सुस्थित व सुप्रतिबुद्ध थे, ये दोनों सहोदर थे।^१

हितवन्त थेरावली के अलावा अन्य किसी ग्रन्थ में इसका उल्लेख नहीं है, किन्तु खण्डगिरि व उदयगिरि में जो शिलालेख उत्कीर्ण हैं उनसे स्पष्ट होता है कि आगम संकलन हेतु यह सम्मेलन किया गया था।^२

तृतीय वाचना

वीर निर्वाण ८२७-८४० के पूर्व भी एक बार और भयंकर दुष्काल पड़ा, जिसमें अनेक जैन श्रमण परलोकवासी हो गये और आगमों का कण्ठस्थीकरण यथावत नहीं रह पाया। इसलिए इस दुर्भिक्ष की समाप्ति पर वीर निर्वाण ८२७-८४० के मध्य मथुरा में आर्य स्कन्दिल के नेतृत्व में श्रमण संघ एकत्रित हुआ।^३

इस सम्मेलन में मधुमित्र, संघहस्ति, प्रभृति आदि १५० श्रमण उपस्थित थे, परन्तु आचार्य स्कन्दिल ही समस्त श्रुतानुयोग को अंकुरित करने में महामेघ के समान इष्ट वस्तु के प्रदाता थे।^४

जिनदासगणि महत्तर^५ ने लिखा है कि दुष्काल के आघात से केवल स्कन्दिल ही अनुयोगधर बच पाये, उन्होंने ही मथुरा में अनुयोग का प्रवर्तन किया। अतः यह

१. हितवन्त, थेरावली, गाथा-१०.

२. जैन साहित्य का वृहद इतिहास, भाग-१, पृ०-८३.

३. विविधतीर्थकल्प, पृ०-९.

४. प्रभावक चरित्र, पृ०-५४.

५. नन्दीचूर्णि, पृ०-९, गाथा-३२.

वाचना 'स्कन्दिली वाचना' के नाम से जानी जाती है। प्रथम वाचना के समय जैनों का प्रमुख केन्द्र बिहार और दूसरी वाचना के समय केन्द्र उड़ीसा था। परन्तु निरन्तर दुष्कालों के पड़ने से यह केन्द्र बिहार से स्थानान्तरित होकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश हो गया।^१

चतुर्थ वाचना

मथुरा सम्मेलन के समय अर्थात् वीर निर्वाण ८२७-८४० के आस-पास वल्लभी में नागार्जुन की अध्यक्षता में भी एक आगम संकलन का प्रयास हुआ।^२ जो 'नागार्जुनीय वाचना' के नाम से विख्यात है। इसका उल्लेख भद्रेश्वर रचित कहांवली ग्रन्थ में मिलता है।^३ चूर्णियों में भी नागार्जुन नाम से पाठान्तर मिलता है। 'पण्णवणा' जैसे अंगबाह्य सूत्रों में भी इस प्रकार के पाठान्तरों का निर्देश है।^४ आचार्य देववाचक ने भी भावपूर्ण शब्दों में नागार्जुन की स्तुति की है।^५

पंचम वाचना

वीर निर्वाण के ९८० वर्षों बाद लोगों की स्मृति पहले से दुर्बल हो गयी, अतः उस विशाल ज्ञान भण्डार को स्मृति में रखना कठिन हो गया। अतः वीर निर्वाण ९८१ या ९९३ (सन् ४५४ या ४६६) में देवर्धिगण क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में संघ एकत्रित हुआ और स्मृति में शेष सभी आगमों को संकलित कर उसे मूर्त रूप प्रदान किया।^६ पुस्तक रूप में लिखने का यह प्रथम प्रयास था। कहीं-कहीं पर यह उल्लेख भी आता है कि आचार्य स्कन्दिल व नागार्जुन के समय ही आगम लिखित रूप में कर दिये गये थे।^७

वर्तमान में जो आगम उपलब्ध हैं वे देवर्धिगण क्षमाश्रमण की वाचना के हैं और उसके बाद उनमें परिवर्तन व परिवर्द्धन नहीं हुआ, ऐसा माना जाता है,^८ किन्तु शोध की दृष्टि से कुछ ऐसे स्थल भी मिले हैं जो आगमों में इसके बाद

१. नन्दीचूर्ण, पृ०-९.

२. जैन हीरालाल, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ०-५५.

३. मालवणिया दलसुख, जैन दर्शन का आदिकाल, पृ०-७.

४. वही, पृ०-७.

५. योगशास्त्र, प्रकाश ३, पृ०-२०७.

६. स्थानांग सूत्र, मुनि मधुकर, प्रस्तावना, पृ०-२७.

७. योगशास्त्र, पृ०-२०७.

८. दशवैकालिक, भूमिका आचार्य तुलसी, पृ०-२७.

भी प्रक्षिप्त किये गये हैं। उदाहरण के रूप में वर्तमान प्रश्नव्याकरण की विषय वस्तु का उल्लेख नन्दीचूर्ण के पूर्व कहीं भी नहीं मिलता है।

लेखन परम्परा

लिपि का प्रादुर्भाव तीर्थकर महावीर से पूर्व ही हो चुका था। प्रज्ञापनासूत्र में अठारह लिपियों का उल्लेख आता है।^१ भगवतीसूत्र में भी मंगलाचरण के अन्तर्गत ब्राह्मी लिपि को नमस्कार किया गया है।^२

अतः यह स्पष्ट है कि लेखन कला व सामग्री का विकास या अस्तित्व आगम लेखन के पूर्व भी था, किन्तु आगमों के लिखने की परम्परा न होकर कण्ठाग्र करने की परम्परा थी, जिसके कारणों का निर्देश पूर्व में किया जा चुका है। यही परम्परा बौद्ध व वेदों के लिये भी थी इसी कारण इन तीनों में 'श्रुत' 'सुत' व 'श्रुति' शब्द का प्राचीन ग्रन्थों के लिए प्रयोग हुआ है।^३

आगमों को लिपिबद्ध करने का स्पष्ट उल्लेख देवर्धिगणि क्षमाश्रमण के पूर्व प्राप्त नहीं होता है। पूर्व में लेखन की परम्परा नहीं होने से भी आगमों का विच्छेद नहीं हो जाए, एतदर्थ लेखन व पुस्तक रखने का विधान किया गया और बाद में आगम लिखे गए।^४ इस प्रकार आगम लेखन की दृष्टि से ईसा की पांचवीं शताब्दी महत्वपूर्ण है।

वर्गीकरण

जैन आगमों का सर्वप्रथम वर्गीकरण पूर्व एवं अंग के रूप में समवायांग में प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ में पूर्वों की संख्या चौदह^५ व अंगों की संख्या बारह बतलायी गयी है। 'अंग' शब्द जैन परम्परा में आगम ग्रन्थों के लिये प्रयुक्त हुआ है। आचार्य अभयदेव आदि के मतानुसार बारह अंगों के पहले (पूर्व) भी साहित्य निर्मित किये गये थे। कुछ चिन्तकों का मत है कि महावीर के पूर्ववर्ती साहित्य को 'पूर्व' कहा जाता है। किन्तु इतना तो निश्चित है कि "पूर्वों" की रचना द्वादशांगी से पूर्व हुई थी।

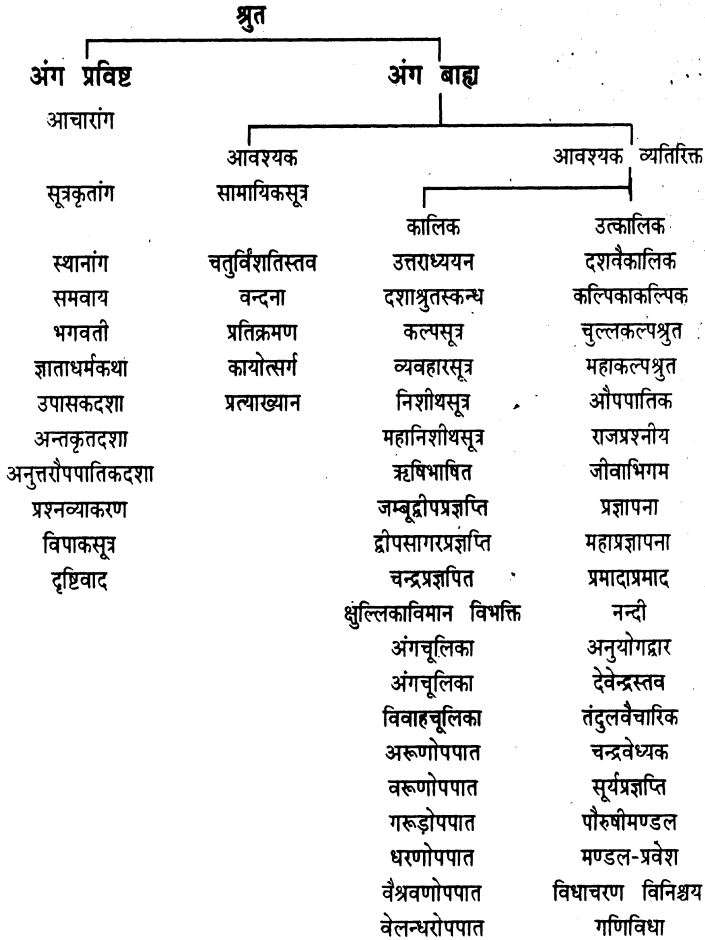
जब तक आचारांग आदि अंग साहित्य का निर्माण नहीं हुआ था तब तक

१. प्रज्ञापनासूत्र, पद-१.
२. भगवतीसूत्र, मंगलाचरण, १/१.
३. शास्त्री, देवेन्द्र मुनि-जैन आगम साहित्य: मनन और मीमांसा, पृ०- ४३.
४. दशवैकालिक चूर्ण, पृ. २१.
५. "चउदश पुव्वा पण्णत्ता तंजहा" समवायांग, समवाय १४.

जैन परम्परा में चौदह पूर्व या दृष्टिवाद के नाम से ही श्रुतज्ञान माना जाता था।

आगमों का दूसरा वर्गीकरण देवर्धगणि क्षमाश्रमण के समय अर्थात् वीर निर्वाण के ९८० वर्ष के आस-पास हुआ जिसमें अंगप्रविष्ट व अंगबाह्य ये दो भेद किये गये।^१

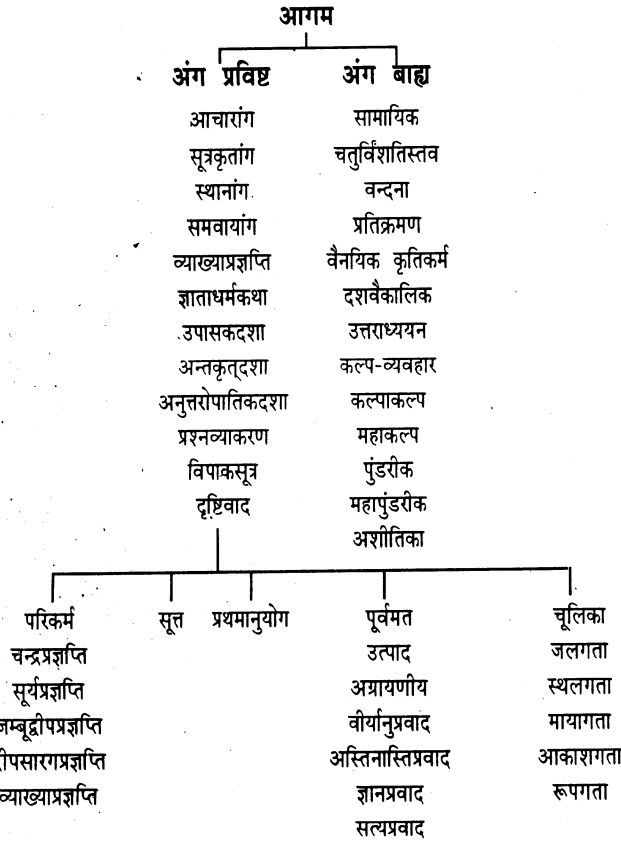
नन्दीसूत्र में आगमों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है-^२



१. "अहवा तं समसाओ दुविहं पण्णत्तं, तंजहा-अंगपविट्ठं अंगबाहिरं च" नन्दीसूत्र-मुनि मधुकर, ७९.
२. नन्दीसूत्र, मुनि मधुकर, पृ०-१६५.

देवेन्द्रोपपात	ध्यानविभक्ति
उत्थानश्रुत	मरणविभक्ति
नागपरितापनिका	आत्मविशौधि
निरयावलिका	वीतरागश्रुत
कल्पिका	संलेखना श्रुत
कल्पावतंसिका	विहारकल्प
पुष्पिका	चरणविधि
पुष्पचूलिका	आतुर-प्रत्याख्यान
वृष्णिदशा	महाप्रत्याख्यान

तत्त्वार्थसूत्र-वृत्ति में दिग्म्बर मतानुसार आगमों का वर्गीकरण इस प्रकार है।^१



१. तत्त्वार्थ-भाष्य, १/२०।

आत्मप्रवाद
 कर्मप्रवाद
 प्रत्याख्यान-प्रवाद
 विधानुप्रवाद
 कल्याण
 प्राणावाय
 क्रियाविशाल
 लोकबिन्दुसार

दिगम्बर परम्परा में मूल आगमों का लोप माना गया है, फिर भी शौरसेनी प्राकृत में रचित कुछ ग्रन्थों को आगम जितना महत्त्व दिया गया है व उन्हें वेद की संज्ञा देकर चार अनुयोगों में विभक्त किया है:—

(क) प्रथमानुयोग

पद्म, हरिवंश व उत्तर पुराण आदि ग्रन्थ।

(ख) करणानुयोग

सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, जयधवला आदि ग्रन्थ।

(ग) चरणानुयोग

मूलाचार, त्रिवर्णाचार, रत्नकरण्डक-श्रावकाचार आदि ग्रन्थ।

(घ) द्रव्यानुयोग

प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, तत्त्वार्थसूत्र, आप्तमीमांसा आदि ग्रन्थ।

एक अन्य दृष्टि से आगमों के सुतागम, अर्थागम और तदुभयागम ये तीन भेद भी अनुयोगद्वारसूत्र में मिलते हैं।^१

आगमों का सबसे उत्तरवर्ती वर्गीकरण अंग, उपांग, मूल व छेद के रूप में माना जाता है। आचार्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थभाष्य में अन्यथा 'हि अनिबद्धअंगोपांगशः समुद्रप्रतरणवददुरध्यवसेयं स्यात्' कहकर अंग के साथ उपांग शब्द का भी प्रयोग किया है।^२ प्रभावकचरित्र जो वि०सं० १३३४ की रचना है, में सर्वप्रथम अंग, उपांग, मूल व छेद के रूप में आगमों का वर्गीकरण देखने को मिलता है।^३ मूलरूप से

१. अनुयोगद्वार सूत्र, ४७०.

२. तत्त्वार्थ-भाष्य १/२०.

३. प्रभावक चरित्र, दूसरा आर्यरक्षित प्रबन्ध.

जो बारह-अंग ग्रन्थ हैं, उन्हीं के अर्थों को स्पष्ट करने के लिये उपांगों की रचना हुई है, ऐसा माना जाता है। मूलसूत्रों के सम्बन्ध में विभिन्न आचार्यों की अलग-अलग धारणाएँ हैं। समयसुन्दरगणि ने दशवैकालिक, ओघनिर्युक्ति, पिण्डनिर्युक्ति व उत्तराध्ययन को मूलसूत्र माना है। डॉ. सारपेन्टियर, डॉ. विन्टरनित्ज और डॉ. ग्यारीनों ने उत्तराध्ययन, आवश्यक, दशवैकालिक व पिण्डनिर्युक्ति को मूलसूत्र माना है।^१

स्थानकवासी व तेरापंथ सम्प्रदाय उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी व अनुयोगद्वार को मूलसूत्र मानते हैं।^२

छेद सूत्रों का प्रथम उल्लेख आवश्यकनिर्युक्ति में हुआ है।^३ सामाचारी शतक में समय-सुन्दरगणि ने दशाश्रुतस्कन्ध, व्यवहार, वृहत्कल्प, निशीथ, महानिशीथ व जीतकल्प को छेद सूत्र माना है। जीतकल्प को छोड़कर बाकी पाँचों का उल्लेख नन्दीसूत्र में भी हुआ है।^४ स्थानकवासी परम्परा में दशाश्रुतस्कन्ध, व्यवहार, वृहत्कल्प व निशीथ ये चार ही छेद सूत्र माने जाते हैं।

जैन आगम साहित्य की संख्या के सम्बन्ध अनेक मतभेद हैं। श्वेताम्बर स्थानकवासी व तेरापंथ सम्प्रदाय बत्तीस आगम मानते हैं। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय पैतालीस आगम मानते हैं। इनमें से ही कुछ चौरासी आगम भी मानते हैं। दिगम्बर परम्परा आगम के अस्तित्व को स्वीकार तो करती है, परन्तु उनके मतानुसार सभी आगम विच्छिन्न हो गये हैं।

इस प्रकार जैन साहित्य में आगमों को प्रमुख व सर्वोच्च सम्मान प्राप्त है। तीर्थंकर और केवलज्ञानियों ने जो अपने प्रत्यक्ष ज्ञान से हेय, ज्ञेय, उपादेय आदि को जैसा देखा वैसा प्रतिपादित किया, जिसे गणधर व अन्य शिष्यों के द्वारा पहले श्रुत रूप में व बाद में लिपि-रूप में संकलित किया गया। इस श्रुत परम्परा के मध्य, काल के प्रभाव से कुछ श्रुत विच्छिन्न भी हुए, परन्तु फिर भी बहुत कुछ शेष रहे। उसी के आधार पर बत्तीस, पैतालीस व चौरासी आगमों की रचना हुई। इन आगमों में श्रमण व गृहस्थ जीवन के प्रत्येक पहलू विशेष रूप से आध्यात्मिकता व धार्मिकता को छूने वाले प्रसंग हैं। व्यक्ति अपना आत्मकल्याण कैसे करे, इसके

१. शास्त्री, देवेन्द्रमुनि- जैन आगम साहित्य: मनन और मीमांसा, पृ. २२.

२. मेहता, मोहनलाल, जैन दर्शन, पृ०-८९.

३. आवश्यकनिर्युक्ति, ७७७.

४. कालियं अणेगविहं पण्णतं, तंजहा उत्तरज्झयणनइं, दसाओ कप्पो, ववहारो, निसीहं, महानिसीहं । नन्दीसूत्र, ८१.

विभिन्न आयाम प्रतिपादित हैं। दिगम्बर परम्परा आगमों को लुप्त मानती है, वे केवल बारहवें अंग दृष्टिवाद के कुछ अंश को मानकर उसी के आधार पर आगम रूप में मान्य उनके ग्रन्थों की रचना हुई ऐसा बताते हैं।

ज्ञाताधर्मकथा अंग आगम साहित्य का प्रथम कथा ग्रन्थ है। यह एक ऐसा आगम है जिसमें संवाद शैली के आधार पर धर्मतत्त्व, नीति, सदाचार, सद्भावना विषयक इच्छानिरोध, अणुव्रत, महाव्रत, शील, संयम, चारित्र, तप, ब्रह्मचर्य आदि के स्वरूप को दृष्टान्तों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। आगमों में यही एक मात्र ऐसा ग्रन्थ है जिसमें उपदेश तत्त्व को सरल कथात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसकी वस्तुस्थिति में जो कुछ भी प्रस्तुत किया गया है वह महावीर समकालीन कहा जा सकता है। यह भी विचारणीय है कि जिस समय लेखन-विधि नहीं थी, उस समय भी नाना प्रकार के मनोरंजन के साधन थे। उन साधनों में कहानी-किस्से भी प्रचलित थे तभी तो ज्ञातृपुत्र महावीर के द्वारा विस्तृत कथा का निरूपण किया गया। यद्यपि कथाएँ संकलित की गईं, परन्तु संकलनकर्ताओं ने उनके ऐतिह्य में कोई परिवर्तन नहीं किया। यही ज्ञाताधर्म की मूल आत्मा है।



द्वितीय अध्याय

ज्ञाताधर्मकथांग का रचनाकाल, परिचय एवं नामकरण

जैन आगम साहित्य में ज्ञाताधर्मकथा का छठा स्थान है। नायाधम्मकहा, ज्ञातृधर्मकथा, ज्ञातृकथा आदि कई नाम ज्ञाताधर्मकथा के प्राप्त होते हैं। विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त ज्ञाताधर्मकथा के नाम की व्युत्पत्ति इस रूप में प्राप्त होती है-

१. तत्त्वार्थभाष्य में कहा गया है कि “ज्ञाताः दृष्टान्ताः तानुपादाय धर्मो यत्र कथ्यते ज्ञाताधर्मकथाः” अर्थात् जिस ग्रन्थ में उदाहरणों के द्वारा धर्म का कथन किया गया हो वह ज्ञाताधर्मकथा है।^१
२. जयधवला में ज्ञाताधर्मकथा का नाम नाथधर्मकथा प्राप्त होता है। नाथ का अर्थ यहाँ स्वामी से लिया गया है। नाथधर्मकथा अर्थात् तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित धर्मकथा।^२
३. आचार्य अभयदेव एवं आचार्य मलयगिरि ने ज्ञाताधर्मकथा में उदाहरण प्रधान धर्मकथाएँ होने के कारण इस ग्रन्थ को ज्ञाताधर्मकथा कहा है। इन आचार्यों का विचार है कि ज्ञाताधर्मकथा के प्रथम अध्ययन में ज्ञात है एवं द्वितीय अध्ययन में कथाएँ हैं।^३
४. जैन आगमों में भगवान महावीर के वंश का नाम ज्ञात था और उनके द्वारा प्रतिपादित कथाओं का वर्णन होने से इस ग्रन्थ का नाम ज्ञाताधर्मकथा पड़ा। ज्ञातृ वंश का उल्लेख आचारांग,^४ सूत्रकृतांग,^५ भगवती,^६

१-२. तत्त्वार्थभाष्य- जैन आगम साहित्य मनन एवं मीमांसा पृष्ठ १३० से उद्धृत.

३. ज्ञातानि उदाहरणानि तत्रधाना धर्मकथा ज्ञाताधर्मकथाः। नन्दीसूत्रं, मुनि पुण्यविजयजी, ९२। पढम-बितिय-सुयखंधमणियाणं णायाधम्मकहाणं नगरादिया भत्रंति, वही

४. आचारांग, श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन-८, उद्देशक ८, सूत्र-४४८.

आचारांग, श्रुतस्कन्ध-२, अध्ययन-१५ सूत्र-१००३.

५. सूत्रकृतांग, उद्देशक १, गाथा-२२. (ब) सूत्रकृतांग, १/६/२.

सूत्रकृतांग, १/६/२४. (द) सूत्रकृतांग, २/६/१९.

६. व्याख्याप्रज्ञप्ति, १५/७९.

उत्तराध्ययन,^१ दशवैकालिक,^२ कल्पसूत्र,^३ विनयपिटक,^४ मज्झिमनिकाय,^५ दीर्घनिकाय,^६ सुत्तनिपात,^७ तिलोयपण्णत्ति,^८ जयधवला,^९ धनञ्जय नाममाला,^{१०} उत्तरपुराण^{११} आदि प्राचीन ग्रन्थों के साथ-साथ प्राकृत के इतिहास के डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री^{१२} डॉ. जगदीश चन्द्र जैन, पं. बेचरदास दोशी^{१३} के ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है।

विभिन्न ग्रन्थों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि जहाँ श्वेताम्बर परम्परा में महावीर के वंश का नाम ज्ञात बताया गया है, वहीं दिगम्बर परम्परा में महावीर के वंश का नाम नाथ प्राप्त होता है। उसी के साथ महावीर का सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास हुआ है। नाथ, नाय, णाय, ज्ञातृ आदि शब्द पूज्यता के द्योतक भी हैं। अतः ज्ञातृकथा का यह ग्रन्थ ज्ञातृ पुत्र महावीर द्वारा उपदिष्ट कथाओं का ग्रन्थ है।

आगमों का रचनाकाल

आचारांग का प्रथम श्रुत स्कन्ध और ऋषिभाषित अशोककालीन प्राकृत अभिलेखों से भी प्राचीन है। ये दोनों ग्रन्थ लगभग ई०पू० पाँचवी-चौथी शताब्दी की रचनाएँ हैं।^{१४} आचारांग की सूत्रात्मक शैली भाव, भाषा आदि की दृष्टि से प्राचीनतम है। सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के छठे अध्याय, आचारांगचूला और कल्पसूत्र में भी

१. उत्तराध्ययन, ६/१७.
२. दशवैकालिक, अध्ययन-५, उद्देशक २, गाथा-४९.
दशवैकालिक, ६/२५. (स) दशवैकालिक, ६/२१.
३. कल्पसूत्र, ११०.
४. विनयपिटक महावग्ग, पृ०-२४२.
५. मज्झिमनिकाय, हिन्दी उपाति सूतन्य, पृ०-२२२.
६. दीर्घनिकाय, सामन्जफल, १८/२१.
७. सुत्तनिपात सुभियसुत्त, पृ०-१०८.
८. तिलोयपण्णत्ति, ४/५५०.
९. जयधवला, पृ०-१३५.
१०. धनञ्जयनाममाला, पृ०-११५.
११. उत्तरपुराण, पृ०-४५०.
१२. शास्त्री, नेमिचन्द्र, प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. १७२.
१३. दोशी, बेचरदास, भगवान् महावीर की धर्मकथाओं का टिप्पण, पृ०-१८०.
१४. जैन विद्या के आयाम, खण्ड-५, डॉ० सागरमल जैन, पृ०-१२-१३.

महावीर की जीवनचर्या का जो उल्लेख है, वे आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के उपधान श्रुत की अपेक्षा परवर्ती एवं विकसित लगते हैं। अर्धमागधी आगमों की प्रथम वाचना, स्थूलभद्र के समय अर्थात् ईसा पूर्व तीसरी शती में हुई थी, अतः यह तो कहा ही जा सकता है कि उस समय तक अर्धमागधी आगम साहित्य अस्तित्व में आ चुका था। इस तरह अर्धमागधी आगम साहित्य के कुछ ग्रन्थों के रचनाकाल की उत्तर सीमा ई०पू० पाँचवी-चौथी शताब्दी है। इसकी अन्तिम वाचना वीर निर्वाण संवत् ९८० में वल्लभी में सम्पन्न हुई। उस वल्लभी वाचना में आगमों को संकलित, सुव्यवस्थित और सम्पादित करके लिपिबद्ध किया गया था। इससे यह आगमों का रचनाकाल सिद्ध नहीं होता। क्योंकि संकलन और सम्पादन का अर्थ रचना नहीं है। वस्तुतः अर्धमागधी आगम साहित्य में विभिन्न काल की सामग्री सुरक्षित है। जिसकी उत्तर सीमा ई०पू० पाँचवी-चौथी शताब्दी या निम्न सीमा ईस्वी सन् की पाँचवी शताब्दी है।

अर्धमागधी आगम विशेष या अंग विशेष के रचनाकाल का निर्धारण एक जटिल समस्या है। उदाहरण के रूप में स्थानांग में सात निह्नवों और नौ गणों का उल्लेख मिलता है जो कि वीर निर्वाण सं. ५८४ तक अस्तित्व में आ चुके थे, किन्तु उसमें बोटिकों एवं उन परवर्ती गणों, कुलों और शाखाओं के उल्लेख नहीं है, जो वीर निर्वाण सं. ६०९ अथवा उसके बाद अस्तित्व में आए। अतः विषय वस्तु की दृष्टि से प्रथम शताब्दी का उत्तरार्ध या द्वितीय शताब्दी का पूर्वार्ध सिद्ध होता है। इतना निश्चित है कि कुछ प्रक्षेपों को छोड़कर अर्धमागधी आगम साहित्य शौरसेनी आगम साहित्य से प्राचीन है। शौरसेनी आगम साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ कसायपाहुडसुत् भी ईस्वी सन् की तीसरी-चौथी शताब्दी से प्राचीन नहीं है।

इस प्रकार आगमों का रचनाकाल ई०पू० पाँचवी शताब्दी से ईसा की पाँचवी शताब्दी तक लगभग एक हजार वर्ष की सुदीर्घ अवधि में व्यापक माना जा सकता है, क्योंकि उपलब्ध आगमों में सभी एक काल की रचना नहीं हैं। आगमों के सन्दर्भ में और विशेष रूप से अंग आगमों के सम्बन्ध में परम्परागत मान्यता तो यही है कि वे गणधरों^१ द्वारा रचित होने के कारण ई०पू० पाँचवी शताब्दी की रचना है। ईसा पूर्व चौथी शती में पाटलिपुत्र की वाचना में जिन द्वादश अंगों की वाचना हुई थी, वे निश्चित रूप से उसके पूर्व ही बने होंगे। डॉ. हर्मन याकोबी ने यह निश्चित किया है कि आगमों का प्राचीन अंश ई०पू० चौथी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर ई०पू० तीसरी शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बीच का है। न केवल अंग आगम, अपितु

१. नियमसार, गाथा-८.

दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प और व्यवहार भी, जिन्हें आचार्य भद्रबाहु की रचना माना जाता है याकोबी और शुब्रिंग के अनुसार आगम ई०पू० चतुर्थ शती के उत्तरार्द्ध से ई०पू० तीसरी शती के पूर्वार्द्ध में निर्मित हैं। पं. दलसुखभाई मालवणिया की मान्यता है कि आगमों का रचनाकाल प्रत्येक ग्रन्थ की भाषा, छंदयोजना, विषय वस्तु और उपलब्ध आन्तरिक और बाह्य साक्ष्यों के आधार पर ही निश्चित किया जा सकता है। आचारांग का प्रथम श्रुतस्कन्ध अपनी भाषा-शैली, विषय-वस्तु, छंदयोजना आदि की दृष्टि से महावीर की वाणी के सर्वाधिक निकट प्रतीत होता है। उसका काल किसी भी स्थिति में ई०पू० चतुर्थ शती के बाद का नहीं हो सकता है। उसके द्वितीय श्रुतस्कन्ध के रूप में जो 'आचारचूला' जोड़ी गयी है, वह भी ई०पू० दूसरी या प्रथम शती से परवर्ती नहीं है। सूत्रकृतांग भी ई०पू० चौथी-तीसरी शती के बाद का नहीं हो सकता, क्योंकि उसके बाद विकसित दार्शनिक मान्यताओं का उसमें कहीं कोई उल्लेख नहीं है।^१ अंग आगमों में तीसरा क्रम स्थानांग का आता है स्थानांग में नौ गणों और सात निहनवों के उल्लेख को छोड़कर अन्य ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे उसे परवर्ती कहा जा सके।

समवायांग, स्थानांग की अपेक्षा एक परवर्ती ग्रन्थ है। इसके प्रारम्भ में द्वादश अंगों का स्पष्ट उल्लेख है। इतना निश्चित है कि यह ग्रन्थ इसमें निर्दिष्ट आगमों के स्वरूप के निर्धारण के पश्चात् ही बना होगा। इसकी भाषा शैली और विषय वस्तु की दृष्टि से इसका वर्तमान स्वरूप ईसा की ३-४ शती से पहले का नहीं है। भगवतीसूत्र में कुछ स्तर अवश्य ई०पू० के हैं, किन्तु समवायांग की भांति भगवती में भी पर्याप्त प्रक्षेप हुआ है। कुछ पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वान इसके प्राचीन एवं परवर्ती स्तरों के पृथक्करण का कार्य कर रहे हैं। उनके निष्कर्ष प्राप्त होने पर ही इसका रचनाकाल निश्चित किया जा सकता है। उपासकदशा अपने वर्तमान स्वरूप में ई०पू० की रचना है। यह ईसा की तीसरी शती से परवर्ती नहीं है। अंग आगम साहित्य में अन्तकृत्दशा, समवायांग और नन्दी की रचना के समय अस्तित्व में आ गया था। अतः इसका वर्तमान स्वरूप ईसा की चौथी-पाँचवी शती का है। बहुत कुछ स्थिति अनुत्तरीपपातिकदशा की भी यही है। यह ग्रन्थ वल्लभी वाचना के समय ही अपने वर्तमान स्वरूप में आया होगा। प्रश्नव्याकरण सूत्र नन्दी के पश्चात् ई० सन् की पाँचवी-छठवीं शती के मध्य ही कभी निर्मित हुआ है।^२

१. जैन विद्या के आयाम, खण्ड ५, डॉ. सागरमल जैन का लेख, पृ. १३-१५.

२. वही, पृ०-१५-१७.

उपांग साहित्य में औपपातिक का कुछ अंश पालि त्रिपिटक जितना प्राचीन है। जीवाजीवाभिगम की विषयवस्तु के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ ई०पू० की रचना होनी चाहिए। प्रज्ञापना सूत्र को स्पष्ट रूप से आर्यश्याम की रचना माना जाता है। आर्यश्याम का आचार्यकाल वीर निर्वाण सं. ३३५-३७६ के बीच माना जाता है। अतः यह ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी की रचना निश्चित है।^१

इस प्रकार उपांग साहित्य में चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ये तीनों प्रज्ञप्तियाँ प्राचीन मानी जाती हैं क्योंकि इनमें ज्योतिष सम्बन्धी जो चर्चा है वह वेदांग ज्योतिष के समान है जो किसी भी स्थिति में ई. पूर्व प्रथम शताब्दी के बाद की नहीं है।

छेद सूत्रों में दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्पसूत्र और व्यवहारसूत्र को स्पष्टतः भद्रबाहु प्रथम की रचना माना गया है। अतः इसका रचनाकाल ई०पू० चौथी-तीसरी शताब्दी के आसपास का ही है। हर्मन जैकोबी, शुब्रिंग आदि पाश्चात्य विद्वानों ने छेदसूत्रों की प्राचीनता को स्वीकार किया है। जीतकल्प आचार्य जिनभद्र की कृति है जिनका समय ईस्वी सन् की सातवीं शताब्दी माना गया है। महानिशीथ आचार्य हरिभद्र की रचना है जिनका काल आठवीं शताब्दी माना गया है।^२

मूल सूत्रों में दशवैकालिक को आचार्य शय्यंभव की रचना माना जाता है जो महावीर के निर्वाण के ७५ वर्ष बाद हुए अतः इसका रचनाकाल ई०पू० पांचवीं-चौथी शताब्दी है। उत्तराध्ययन ई०पू० चौथी-तीसरी शताब्दी की रचना मानी गयी है।^३

प्रकीर्णक साहित्य में नौ प्रकीर्णकों का उल्लेख नन्दीसूत्र में मिलने से इन प्रकीर्णकों का रचनाकाल ईस्वी सन् की चौथी-पांचवीं शताब्दी माना जाता है। आतुर-प्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान और मरणसमाधि आदि की सैकड़ों गाथाएँ मूलाचार और भगवती आराधना में होने से ये सब भी ईसा की चौथी-पांचवीं शताब्दी की रचनाएँ मानी जाती हैं। कुछ प्रकीर्णक वीरभद्र द्वारा रचित होने के कारण नवीं-दसवीं शताब्दी की मानी जाती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपलब्ध आगमों में अधिकांश ग्रन्थ ईस्वी पूर्व के हैं। हमने तो सिर्फ सामान्य रूप से चर्चा की है, परन्तु प्रत्येक आगम ग्रन्थ

१. जैन विद्या के आयाम, खण्ड ५, डॉ. सागरमल जैन का लेख, पृ. १७.
२. जैन विद्या के आयाम, खण्ड ५, पृ०-१७ से उद्धृत.
३. वही, पृ०-१८.

का अलग-अलग स्वतन्त्र रूप से एवं शोधात्मक पद्धति से काल निर्धारण की आवश्यकता आज भी है। जैन विद्या में आगमों का काल निर्धारण करने वाले विषयों पर शोध करने वाले शोधार्थी इस विषय में विशेष प्रकाश डालेंगे ऐसी आशा है।^१

ज्ञाताधर्मकथा का रचनाकाल

ज्ञाताधर्मकथा में भगवान महावीर द्वारा उपदेशित धर्मकथाओं का संकलन है। ज्ञाताधर्मकथा में कुछ कथाएँ अत्यन्त प्राचीन हैं और जिनकी विषय-वस्तु महावीर के युग तक की मानी गयी हैं, परन्तु ज्ञाताधर्मकथा में प्राप्त मल्ली और द्रौपदी के विषय निश्चय ही जैन संघ के विभाजन के बाद के हैं। जिसे प्रथम और द्वितीय शताब्दी तक का माना जा सकता है। इसका दूसरा श्रुतस्कन्ध जरूर कुछ परवर्ती काल का माना गया है।

जैन आगमों का रचनाकाल

अर्धमागधी आगमों में प्रज्ञापनासूत्र, दशवैकालिकसूत्र और छन्द-सूत्रों के अतिरिक्त शेष ग्रन्थों के रचनाकार के सम्बन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। हमें तो इसका कारण यह नजर आता है कि आगमकर्ताओं ने अपना नाम इसलिए ग्रन्थ में नहीं लिखा होगा कि जनमानस आगमों को गणधरों की कृतियाँ ही मानता रहे।

इसे विपरीत शौरसेनी आगम ग्रन्थों में सभी रचनाकारों का स्पष्ट उल्लेख है।^२

पाण्डुलिपि

ज्ञाताधर्मकथा की बहुत-सी पाण्डुलिपियाँ विभिन्न ग्रन्थ भण्डारों एवं जैन शिक्षण संस्थाओं में उपलब्ध हैं। यहाँ हमने कुछ प्रमुख हस्तलिखित प्रतियों के पृष्ठ, संख्या, आकार एवं काल का परिचय देते हुए ग्रन्थ भण्डारों का परिचय देने का प्रयास किया है-

१. ज्ञाताधर्मकथांग- मूल अर्थ सहित, पत्र संख्या ३३५, अपूर्ण, आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर, संस्थान ग्रन्थ संख्या ४०४ है।
२. ज्ञाताधर्मकथांग- मूल अर्थ सहित पत्र संख्या ३६३, संवत् १८०८ चैत्र मास,

१. जैन विद्या के विविध आयाम, पृ०-१७-१८.

२. वही, खण्ड ५, पृ०-३६-३७, डॉ०सागरमल जैन का लेख.

बिकानेर प्रति, आगम संस्थान संग्रहालय, संस्थान ग्रन्थ संख्या ४०५ है।

३. ज्ञाताधर्मकथांग- मूल, पत्र संख्या २०२, आगम, अहिंसा, समता एवं प्राकृत शोध संस्थान संग्रहालय, ग्रन्थाङ्क ५५००, संस्था ग्रन्थ संख्या ४०६ है।
४. ज्ञाताधर्मकथांग- मूल, पत्र संख्या १२१, आगम, अहिंसा, समता एवं प्राकृत शोध संस्थान संग्रहालय, संस्थान ग्रन्थ संख्या ४०७ है।
५. ज्ञाताधर्मकथांग- मूल पत्र संख्या २०९, आगम, अहिंसा, समता एवं प्राकृत शोध संस्थान संग्रहालय, ग्रन्थाङ्क ५२००, संस्थान ग्रन्थ संख्या ४०८ है।

इसके अतिरिक्त जैसलमेर किले में स्थित पाँच हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डारों को श्री जिनभद्रसूरि ज्ञान भण्डार में विलीन कर दिये गये हैं उनमें ज्ञाताधर्मकथांग की जो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं उनका परिचय इस प्रकार है—

१. ज्ञाताधर्मकथांग— सुधर्माकृत मूल ग्रन्थ- प्राकृत भाषा पत्रे- १०६, २७-११-१५-५६ लम्बाई चौड़ाई पंक्ति अक्षर समग्र ग्रन्थ ५४००, प्रति का लेखन काल १७ वीं शती।^१
२. वही, पत्रे १२९, २७-१२-१३-४० ग्रन्थाङ्क ५४०० लेखनकाल १६ वीं शती है।^२
३. वही, पत्रे २३६, साईज २८-१२-११-३८, ग्रन्थाङ्क ५३७५ लेखनकाल १६ वीं शती है।^३
४. वही, पत्रे ९९ साईज २७-११-१५-५६ ग्रन्थाङ्क ५४८५, लेखनकाल १७ वीं शती है।^४
५. वही, पत्रे १३१ साईज २६-११-१३-४२ ग्रन्थाङ्क ५४८५ लेखनकाल १७ वीं शती है।^५

-
१. डूंगरजी यति के भण्डार की प्रति २५६, जिनभद्रसूरि ज्ञान भण्डार जैसलमेर, सूचीपत्र-II, पृ. १२-१४.
 २. लोकागच्छ भण्डार की प्रति-२९.
 ३. लोकागच्छ भण्डार की प्रति-२८.
 ४. तपागच्छ भण्डार की प्रति-३३.
 ५. डूंगरजी यति के भण्डार की प्रति-३६.

२४ ज्ञाताधर्मकथांग का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

६. पत्रे १०४ साईज २६-१०-१५-४० ग्रन्थाङ्क ५५०० लेखनकाल १७ वीं शती है।^१
७. पत्रे १५४ साईज २८-१२-१३-४० ग्रन्थाङ्क ५५३४ लेखनकाल १७ वीं शती है।^२
८. पत्रे १०७ साईज ३४-१४-१३-६८ ग्रन्थाङ्क ५४६४ लेखनकाल वि०सं० १६७२ है।^३
९. पत्रे १३३ साईज ३२-१३-१३-४८ ग्रन्थाङ्क ४९५४ लेखनकाल १६७५ है।^४
१०. पत्रे १८८, साईज ३३-१५-१३-५६ ग्रन्थाङ्क ४९५४ लेखनकाल वि०सं० १६७५-८० है।^५
११. पत्रे १०९ साईज ३४-१४-१३-६४ ग्रन्थाङ्क ५४६४ लेखनकाल वि०सं० १६७५-८० है।^६
१२. पत्रे ११२ साईज ३३-१३-१३-६० ग्रन्थाङ्क ५४६४ लेखनकाल वि०सं० १६७५-८०।^७
१३. लेखक सुधर्मा स्वामी मूलग्रन्थ एवं टब्बार्थ, प्राकृत एवं मरुगुर्जर, ४०९ पत्रे, साईज २७-१२-९-३७ संमग्रग्रन्थ १३९००, लेखनकाल वि०सं० १६९६-१७०० टब्बार्थ के रचनाकार कनकसुन्दर विद्यारत्न के शिष्य थे।^८
१४. लेखक सुधर्मा स्वामी, मूल ग्रन्थ, प्राकृत भाषा में निबद्ध, पत्रे ३१० साईज २६-११-१९-४६ ग्रन्थाङ्क १८२००, लेखनकाल वि०सं० १७८६ है।^९

-
१. लोकागच्छ भण्डार की प्रति-१२८.
 २. तपागच्छ भण्डार की प्रति-६५.
 ३. थारुशाह भण्डार की प्रति-१६४.
 ४. वही-२८४.
 ५. वही-१६५.
 ६. वही-१६८.
 ७. वही-२६८.
 ८. लोकागच्छ भण्डार की प्रति-३०.
 ९. तपागच्छ भण्डार की प्रति-३२.

१५. पत्रे १०३ साईज २७-११-१५-५६ ग्रन्थाङ्क ५३३४ लेखनकाल १८वीं शती है।^१
१६. मूल एवं टब्बा, भाषा प्राकृत एवं मरुगुर्जुर पत्रे ३१५ साईज २६-१३-६-४४ ग्रन्थाङ्क ५३३४ लेखनकाल वि०सं० १९२३ है।^२
१७. पत्रे १८६ साईज २६-११-११-४० ग्रन्थाङ्क १६वें अध्ययन तक, लेखनकाल १७वीं शती है।^३
१८. पत्रे १९, साईज २८-१३-८-३२ दूसरा अध्ययन मात्र, लेखनकाल २०वीं शती है।^४
१९. ज्ञाताधर्मकथांग की वृत्ति आचार्य अभयदेव, भाषा संस्कृत, पत्रे ७५, साईज २६-११-१५-६४, ग्रन्थाङ्क ३७००, लेखनकाल १६वीं शती है।^५
२०. पत्रे ६९ साईज २७-१२-१५-६० ग्रन्थाङ्क ४००० लेखनकाल १७ वीं शती है।^६
२१. पत्रे ८६, साईज २६-१०-१५-४८, ग्रन्थाङ्क ४०००, लेखनकाल १६ वीं शती है।^७
२२. पत्रे ५६, साईज ३५-१५-१९-६५, ग्रन्थाङ्क ४०००, लेखनकाल १६ वीं शती है।^८
२३. पत्रे ९३, साईज ३४-१४-१३-४७, ग्रन्थाङ्क ३७००, लेखनकाल वि०सं० १६७१ का है।^९
२४. पत्रे ८७, साईज ३३-१३-१३-५७, ग्रन्थाङ्क ३७००, लेखनकाल वि०सं० १६७३ का है।^{१०}
२५. पत्रे ८७, साईज ३३-१३-१३-५७, ग्रन्थाङ्क ३७००, लेखनकाल वि०सं० १६७५-८० का है।^{११}

१. तपागच्छ भण्डार की प्रति-३१.

२. डूंगरजी यति के भण्डार की प्रति-४८८.

३. वही-३३७.

४. लोकागच्छ, ३१.

५. डूंगर जी यति भण्डार, २५.

६. तपागच्छ, ७४७.

७. डूंगर जी यति, १११२.

८. तपागच्छ, ६४८.

९. थारुशाह, १६७.

१०. वही, २८७.

११. वही, २८५.

२६ ज्ञाताधर्मकथांग का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

२६. पत्रे ८५, साईज ३४-१४-१३-६०, ग्रन्थाङ्क ३७००, लेखनकाल वि०सं० १६७५-८० है।^१

२७. पत्रे ९३, साईज २६-११-१५-५०, ग्रन्थाङ्क ३८००, लेखनकाल वि०सं० १७०० का है।^२

ज्ञाताधर्मकथांग के प्रकाशित संस्करण

ज्ञाताधर्मकथांग के प्रकाशित संस्करणों का विवरण इस प्रकार है^३—

१. अभयदेवकृत वृत्ति सहित आगमोदय समिति, बम्बई सन् १९६१, आगम संग्रह कलकत्ता, सन् १९७६ सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति, बम्बई, सन् १९५१-१९५२।
२. गुजराती छायानुवाद- पूजाभाई जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद सन् १९३१।
३. हिन्दी अनुवाद- मुनि प्यारचन्द, जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम, वि०सं० १९९४।
४. संस्कृत व्याख्या व उसके हिन्दी-गुजराती अनुवाद सहित, मुनि घासीलाल जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट, सन् १९६३।
५. हिन्दी अनुवाद सहित, अमोलक ऋषि, हैदराबाद, वि०सं० २९४६।
६. गुजराती अनुवाद सहित (अध्ययन १-८) जेठालाल, जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर वि०सं० १९९४।
७. ज्ञाताधर्मकथा, मधुकरमुनि, हजारीमंल स्मृति ग्रन्थमाला, ब्यावरा।
८. ज्ञाताधर्मकथा, पं० शोभाचन्द भारिल्ल, सेठिया जैन ग्रन्थमाला, बीकानेर।

ज्ञाताधर्मकथा का व्याख्या साहित्य

ज्ञाताधर्मकथा के व्याख्या साहित्य में अभयदेवविहित वृत्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका जो विवरण प्राप्त होता है उसके अनुसार यह आगमोदय समिति, मेहेसाणा से सन् १९१९ में प्रकाशित है जिसमें शब्दार्थ की प्रधानता है। इसके प्रथम श्रुतस्कन्ध में ज्ञाता और धर्मकथा का अर्थ समझाकर १९ उदाहरणरूप धर्मकथा

१. थारुशाह, १६६. २अ. डूंगर जी यति २५५.
- २ब. जिनभद्रसूरि ज्ञान भण्डार जैसलमेर, हस्तलिखित पत्रों का सूची पत्र भाग-२, पृ. १२-१४.
३. दोशी, बेचरदास: जैन आगम साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-१, पृ०-२५०.

की नामावली दी गई है। यह ३८०० श्लोक प्रमाण है। इस ग्रन्थ के अन्त में आचार्य अभयदेव ने अपने गुरु का नाम जिनेश्वर बतलाया है। इसी विवरण में निवृत्तिकुलीन द्रोणाचार्य के नाम का भी उल्लेख है। ग्रन्थ के समापन में अणहिलपाटन नगर, वि०सं० ११२० विजयादशमी अंकित है।^१

कृति का स्वरूप

ज्ञाताधर्मकथा प्राकृत भाषा में निबद्ध भगवान महावीर के द्वारा उपदिष्ट है। यह प्राचीन कथाओं का प्रामाणिक एवं प्रतिनिधि ग्रन्थ है। यह बात सर्वविदित है कि कथाओं के माध्यम से व्यक्ति को कठिन से कठिन उपदेशों को आसानी से समझाया जा सकता है। इस अवधारणा पर यह ग्रन्थ खरा उतरता है। जहाँ एक ओर ऐतिहासिक दृष्टि से मेघकुमार, थावच्चापुत्र, मल्ली तथा द्रौपदी की कथाएँ हैं वहीं दूसरी ओर अवान्तर कथाओं की परम्परा के स्रोत के रूप में प्रतिबद्ध राजा, अर्हन्नक व्यापारी रुक्मी स्वर्णकार, चित्रकार आदि की कथाएँ मल्ली कथा की अवान्तर कथाएँ हैं। इसी के साथ अनेक काल्पनिक कथाओं जैसे जिनपाल, जिनरक्षित, तेतलीपुत्र, सुंसुमा, पुण्डरीक आदि का समावेश है।

इसी के साथ-साथ अनेक कथाएँ दृष्टान्त प्रधान हैं यथा—

(१) दो कछुओं की कथा- संयम-असंयम से युक्त, (२) तुम्बे की कथा- कर्मावरण संबंधी, (३) रोहिणी ज्ञात- पंचमहाव्रत सम्बन्धी कथा, (४) शैलक- सम्यक्-मार्ग से विचलित होने सम्बन्धी।

रूपक कथाओं में धन्ना सार्थवाह एवं विजय चोर की कथा, रोहिणी की पांच शाली की कथा, संमद्री अश्वों की कथा को लिया जा सकता है।

पशु कथाओं का ज्ञाताधर्मकथा उद्गम स्थल है। मेरुप्रभ हाथी की अहिंसा भारतीय कथा साहित्य में अलौकिक है।

मूल पाठ का निर्धारण

किसी भी प्राचीन कृति के मूलपाठ का निर्धारण करना हम जैसे अल्पज्ञों के लिए बहुत ही असाध्य एवं अप्रामाणिक है। मूल पाठ के निर्धारण में किसी भी एक प्रति को आदर्श मानकर निर्णय नहीं किया जाता है। इसके लिये मुख्यतः अर्थ मीमांसा, पूर्वापर प्रसंग, पूर्ववर्ती पाठ एवं ताड़पत्रिय हस्तलिखित पाण्डुलिपियों, अन्य आगम ग्रन्थों एवं मूल ग्रन्थ की टीकाओं, वृत्तियों आदि को ध्यान में रखा जाता है क्योंकि पाठ संशोधन में अनेक विचित्र पाठ एवं शब्दों का प्रयोग सामने आता

१. देखें जैन, जगदीशचन्द्र, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, पृ०-३७५ से ३७९.

है जिनका निर्धारण विभिन्न स्रोतों से किया जाता है।

जहाँ तक ज्ञाताधर्मकथा का प्रश्न है आचार्य श्री तुलसी ने अंगसुत्ताणि, भाग-३ में पाठ निर्धारण में निम्न प्रतियों का प्रयोग किया है।

१. ताडपत्रीय (फोटोप्रिंट) जैसलमेर भण्डार से प्राप्त है, जो सम्भवतः १२वीं शताब्दी की है।
२. ज्ञाताधर्मकथा (पंचपाठी) मूल— वृत्ति सहित जो गधेया पुस्तकालय, सरदारशहर की है, संभवतः १४-१५वीं शताब्दी की है।
३. सरदारशहर से प्राप्त यह जीर्णप्रति है। इस पर प्रतिलेखन काल वि०सं० १५५४ अंकित है।
४. यह टब्बा १२ वें अध्ययन से आगे काम में ली गयी है।

मधुकर मुनि ने ज्ञाताधर्मकथा में जावपूर्ति में, अंगसुत्ताणि का ही अनुसरण किया है। हमने भी युवाचार्य मधुकर मुनि द्वारा संपादित ज्ञाताधर्मकथांग को ही आधार मानकर कार्य किया है।

इस प्रकार विषय विवेचन, भाषा, भाव आदि के कारण इस कथाग्रन्थ को प्राकृत साहित्य का प्राचीनतम कथा ग्रन्थ तो माना ही गया है, परन्तु कथा विकास की दृष्टि से भी इसे यथेष्ट प्राचीन कहा जाता है। ज्ञाताधर्मकथा में जो कथाएँ हैं वे सूत्रात्मक नहीं हैं, अपितु कथन, कथोपकथन, चरित्र चित्रण आदि के साथ-साथ महान उद्देश्य को लिए हुए हैं। इसके हृदय में भारतीय समाज की जीती जागती प्रतिमा है जो सदाचरण, सद्व्यवहार आदि के नैतिक गुणों को उजागर करती है। ज्ञाताधर्म की मूल रचनाओं में यह कहीं भी संकेत नहीं है कि कब और कहाँ तथा कैसे लिखी गयी है। परन्तु यथार्थ इसके प्रारम्भिक विवेचन से हो जाता है जिसमें यह दिया गया है कि जो महावीर ने कहा है वही जम्बूस्वामी ने कहा और उन्हीं के अन्य गणधरों द्वारा जो जैसा कहा गया उसे उसी रूप में व्यक्त किया गया। प्रथम अध्ययन की समाप्ति के पश्चात् द्वितीय अध्ययन में जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामी से प्रश्न करते हैं कि भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम ज्ञात अध्ययन का यह अर्थ किया है तो द्वितीय अध्ययन का क्या अर्थ होगा? ऐसा ही कथन सर्वत्र है। इस तरह के कथन से इसकी प्राचीनता अपने आप ही निश्चित हो जाती है कि जो महावीर के वचन थे वही उनके शिष्यों द्वारा ज्ञाताधर्म में प्रतिपादित किए गये हैं।

तृतीय अध्याय

प्राकृत कथा साहित्य का उद्भव एवं विकास

मानव जीवन के विकास के साथ कथा का आविर्भाव हुआ होगा इसमें संदेह नहीं हो सकता है, फिर भी यह अवश्य कहा जा सकता है कि सुख-दुःख को व्यक्त करने के लिये मनोरंजन या हास-परिहास के रूप में कथा अवश्य रही होगी। कथा का आविर्भाव कब, कहाँ और कैसे तथा किसने किया इस प्रश्न का समाधान यही है कि मनुष्य के विचारों से जो भावधारा निकली वही कथा बन गयी।

कथा स्वरूप एवं विश्लेषण

कथा का सामान्य अर्थ निर्वचन है। 'क' 'था' अर्थात् अमुक व्यक्ति था और उसी से कथा का विकास होता चला गया। अतः यह कह सकते हैं कि कथा मानव जीवन के साथ जुड़ी हुई है।^१ कथा शब्द "कथ्" धातु से बना है। 'कथ्' का अर्थ कहना है। अर्थात् जो कहा जाता है या जो प्रतिपादित किया जाता है वह कथा कहलाती है। डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री ने कथा के विषय में लिखा है - कथा भारतीय साहित्य का अत्यन्त प्राचीन अंग है। इनका प्रचलन प्रकृति विषयक रहस्य को समझने और समझाने के निमित्त से हुआ था। तब उन्हें कथा नहीं कहा जाता था। कथा का सबसे पुराना नाम आख्यान मिलता है। वेदों में आख्यानों के विभिन्न उल्लेख मिलते हैं। इन आख्यानों का सम्बन्ध विशेष रूप से अतिमानवीय घटनाओं से युक्त है।^२

वस्तुभेद की अपेक्षा से आख्यान, आख्यायिका तथा कथा नाम प्रचलित हुआ। वस्तुतः इन तीनों का विकास एक ही परम्परा से हुआ है। निर्युक्तिकार यास्क ने आख्यान को इतिहास कहा क्योंकि सर्वप्रथम जो कथाएँ साहित्य रूप में प्रचलित हुईं वे ऐतिहासिक थीं, इसलिए इतिहास और आख्यान दोनों ही एक कहे गए हैं।

१. शास्त्री, देवेन्द्र मुनि, जैन कथा साहित्य की विकास यात्रा, पृ. ६.

प्रकाशक : तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर १९८९.

२. शास्त्री, देवेन्द्रकुमार, भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश कथाकाव्य, पृ. ६५, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली १९७०.

आख्यानों का वास्तविक विकास पुराण और काव्य साहित्य में मिलता है।^१ पुराणों में कथाओं और उपाख्यानों का जो समावेश हुआ है वह मानव जीवन से सम्बन्धित है। अतः कथा आख्यान का एक प्रचलित रूप है।

प्राकृत में कथा के लिए 'कथ' ^२ का प्रयोग हुआ है। ज्ञाताधर्मकथांग में कथा के लिए 'आइक्खया' ^३ शब्द आया है। चार प्रकार के काव्यों में कथ का अपना स्थान है। कथ वार्ता, विवरण आदि के लिए भी प्रयुक्त होता है।

न्यायशास्त्र की दृष्टि से कथा उसे कहा गया है जो प्रवक्ताओं के विचारों का विषय प्रस्तुत करे या वार्ता प्रतिवादियों के पक्ष-प्रतिपक्ष को प्रतिपादित करे वह भी कथा है।^४ महापुराणकार जिनसेनाचार्य ने कथन को कथा कहा है। यह कथन मोक्ष पुरुषार्थ के लिए उपयोगी होने के कारण से धर्म, अर्थ और काम का कथन करता है।

विश्व के सभी विचारकों, लेखकों, दार्शनिकों एवं चिन्तकों का यही मत है कि कथा मानव जीवन के मनोविनोद एवं ज्ञानवर्धन का सबसे सुगम एवं स्वाभाविक साधन है। जिस प्रसंग, घटना या कहानी को व्यक्ति प्रारम्भ से लेकर अन्त तक दत्तचित्त होकर श्रवण करता है और अन्ततः उसी से प्रेरित होकर कुछ ग्रहण करता या सीखता है वही सार्थक कथा है। मानव का सहज आकर्षण भी इसी विद्या पर आधारित है। इसी में मानव जीवन के सत्य की अभिव्यंजना, कलामाधुर्य एवं उत्कण्ठा की सार्वभौमिकता स्पष्ट रूप से झलकती है और यही व्यक्ति को सुसंस्कृत संस्कारों के साथ उल्लास भरी दृष्टि को प्राप्त कराती है।

धार्मिक आचार, आध्यात्मिक तत्त्वचिन्तन, नीति, कर्तव्य तथा गूढ़ से गूढ़ विचारों और गहन से गहन अनुभूतियों को सरलतम रूप से जन जन तक पहुंचाने के लिए भी कथाओं का आश्रय लिया जाता है। तीर्थकरों, गणधरों एवं अन्यान्य आचार्यों ने अपने उपदेशों को हृदयंगम कराने के लिये कथाओं को ही आधार बनाया है। कथा साहित्य की इसी लोकप्रियता के कारण ही डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा

१. शास्त्री, देवेन्द्र कुमार भविसयतकहा तथा अपभ्रंश कथाकाव्य, पृ०-६५, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली १९७०.
२. स्थानांग, ४/४/४३.
३. ज्ञाताधर्मकथा, १/९०.
४. वर्णी जिनेन्द्र-जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष, भाग-२, पृ०-२, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली १९८६.

ने कहा है - 'साहित्य के माध्यम से डाले जानेवाले जितने प्रभाव हो सकते हैं वे रचना के इस प्रकार में अच्छी तरह से उपस्थित किए जा सकते हैं, चाहे सिद्धान्त प्रतिपादन अभिप्रेत हो, चाहे चरित्र चित्रण की सुन्दरता इष्ट हो, किसी घटना का महत्व निरूपण करना हो अथवा किसी वातावरण की सजीवता का उद्घाटन ही लक्ष्य बनाया जाय, क्रिया का वेग अंकित करना हो अथवा मानसिक स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण करना इष्ट हो, सभी कुछ इसके द्वारा संभव है।'^१ इसी प्रकार अमरकोषकार ने प्रबन्ध कल्पना को कथा कहा है।^२

कथा के अंग

(अ) **कथावस्तु**— कथावस्तु का तात्पर्य कथा के थीम, प्लॉट या अवान्तर कथाओं से है।

(ब) **पात्र**— वे व्यक्ति जिनके द्वारा घटनाएं घटित होती हैं या जो इन घटनाओं से प्रभावित होते हैं। पात्रों का प्रयोग चरित्र-चित्रण के लिए किया जाता है।

(स) **संवाद**— संवाद कथावस्तु के विकास एवं पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहयोग प्रदान करते हैं।

(द) **देशकाल**— स्थानीय रंग या प्रादेशिक विवरण के साथ युग की सभ्यता और संस्कृति का निरूपण भी देशकाल में होता है।

(य) **शैली**— शैली द्वारा ही लेखक कथा के समग्र जीवन का चित्रण प्रस्तुत करता है।

(र) **उद्देश्य**— किसी न किसी जीवन की विशिष्ट दृष्टि को सामने रखना कथा का उद्देश्य होता है। अतः जीवन दर्शन के किसी विशेष पहलू पर प्रकाश डालना कथा का उद्देश्य है।^३

कथा का महत्व

हर युग एवं देश की अपनी लोककथाएँ होती हैं। जिस देश की लोक कथाएँ जितनी समृद्ध होती हैं वह देश उतना ही सभ्य एवं सुसंस्कृत माना जाता है। भारत

१. कहानी का रचना विधान, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, सन् १९५६, पृ०-४-५, (प्राकृत साहित्य का इतिहास, डॉ० नेमिचंद जैन, पृ०-४३८)।

२. अमरकोष, १/५/६.

३. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ०-४४०/१.

का कथा साहित्य इस दृष्टि से समृद्ध है, क्योंकि यहाँ की कथाओं, वार्ताओं, आख्यानों, उपमाओं, दृष्टान्तों आदि में शिक्षा के साथ-साथ प्रेरणास्त्रद एवं मनोरंजक तथ्य भी सम्मिलित हैं।

ऋग्वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, महाभारत, रामायण आदि बोधप्रद कथा संग्रह हैं। बौद्धों की जातक कथाएँ कथा साहित्य का अनुपम भण्डार हैं। पैशाची भाषा की गुणाढ्य की बृहत्कथा को कहानियों का अक्षय कोष कहा गया है।

वस्तुतः अल्प ज्ञान से युक्त नर-नारियों के लिए शीघ्रबोध प्रदान कराने में कथा सर्वोत्तम है। यही बोध यदि उन्हीं की भाषा में कराया जाय तो शीघ्र समझ में आ जाता है। महावीर ने उस समय की प्रचलित अर्द्धमागधी में उपदेश देकर उसे सहज गम्य बना दिया।

कथा साहित्य का विकास-क्रम

प्राकृत कथा साहित्य का प्रादुर्भाव आगमों के समय से ही हो चुका था। आगमों में कथाओं, उपमाओं, उदाहरणों एवं हेतुओं द्वारा दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक तथ्यों की सुन्दर व्यंजना उपलब्ध है। इस विशाल साहित्य में प्रेमाख्यान, उपन्यास, दृष्टान्त, उपदेश आदि से सम्बन्धित अनेक कथाएँ उपलब्ध हैं।

प्राकृत कथाओं को निम्न भागों में विभक्त कर उसके विकास-क्रम का आंकलन करना न्यायोचित रहेगा—

(अ) आगम युगीन कथाएँ

आगमों में प्राप्त कथाएँ वस्तुतः धार्मिक एवं नैतिक हैं। बृहत्कथाकोष की भूमिका में कहा गया है कि आगमयुगीन कथाओं की प्रमुख विशेषता उपदेशात्मक एवं आध्यात्मिकता है। इसमें तीर्थकरों एवं उनके अनुयायियों, शलाकापुरुषों व अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवन रेखाएँ, व्याख्यात्मक रूपक, उद्देश्य प्रधान कथाएँ एवं ऐसे सभी पुरुषों के जीवनवृत्त सम्मिलित हैं जिन्होंने अपने उत्तरकालीन जीवन में उच्च पद प्राप्त किया था।^१ डॉ० ए०एन० उपाध्ये ने आगमयुगीन कथाओं की प्रवृत्ति के बारे में बताते हुए कहा कि प्रारम्भ में जो मात्र उपमाएँ थीं, बाद में व्यापक रूप प्रदान करने एवं धर्मार्थ उपदेश देने के निमित्त उन्हें कथात्मक रूप प्रदान किया गया।^२ आगम से उद्धृत कुछ कथात्मक प्रसंग इस प्रकार हैं—

१. बृहत्कथाकोष, भूमिका, पृ०-१८, (द्वारा हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ०-४).

२. वही, पृ०-१८.

आचारांग के छठे अध्याय में बताया गया कि एक कछुआ जिसे शैवाल के बीच में रहने वाले एक छिद्र से ज्योत्स्ना का सौन्दर्य दिखलाई पड़ा और जब वह पुनः अपने साथियों को दिखाने लाया तो वह छिद्र ही नहीं मिला। इससे त्याग मार्ग में निरन्तर सावधानी रखने का संकेत मिलता है जो रूपक कथा के विकास के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है।^१

इसी प्रकार आचारांग के द्वितीय स्कन्ध की तीसरी चूला में महावीर के जीवनवृत्त की कथा का संकेतात्मक रूप है।

सूत्रकतांग के छठे एवं सातवें अध्ययन में आर्द्रकुमार एवं पेढाक पुत्र उदक का गौतम के साथ संवाद है।^२ द्वितीय खण्ड के प्रथम अध्ययन में पुण्डरीक का दृष्टान्त कथा साहित्य का द्वितीय उदाहरण है। सूत्रकतांग में अनेक स्थानों पर प्रतिकों के माध्यम से विश्लेषण किया गया है। स्थानांग, समवायांग, भगवती आदि में पार्श्व एवं महावीर के जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन है। इसके द्वितीय अध्ययन में स्कन्द की कथा है।^३

ज्ञाताधर्मकथा का जैन आगमों में कथा साहित्य की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। दो श्रुतस्कन्धों में विभक्त इस ग्रन्थ के प्रथम श्रुतस्कन्ध में १९ नीतिपरक कथाएँ हैं एवं द्वितीय श्रुतस्कन्ध में दस वर्गों में धर्म कथाएँ हैं।

प्रथम अध्ययन में मेघकुमार का जीवन अहंकार त्याग कर सहिष्णु बनने और आत्मसाधना में लीन रहने का संकेत देता है। इसके द्वितीय अध्ययन में धन्ना और विजय चोर की कथा अंकित है। तृतीय में सागरदत्त और जिनदत्त की कथा है। चौथे में दो कछुओं और दो शृगालों, पांचवें में थावच्चा कुमार एवं सैलग राजश्री, सातवें में धन्य और उसकी चार पुत्रवधुओं की प्रतीक कथा है। आठवें में मल्लीकुमारी, नवें में जिनदक्ष और जिनपाल, बारहवें में दुर्दरदेव, चौदहवें में अमात्य तेतली, सोलहवें में द्रौपदी, उन्नीसवें में पुण्डरीक और कुण्डरीक की कथाएँ हैं। इसके द्वितीय श्रुतस्कन्ध में मानव, देव और व्यन्तर की चमत्कारिक घटनाएँ हैं।^४

उपासकदशांग के दस अध्ययनों में महावीरकालीन दस श्रावकों के दिव्य-जीवन

१. से बेमि से जहा वि कुम्मे हरए, आचारांग, ६/१, पृ०-४३७.
२. सूत्रकतांग, अध्याय, ६-७.
३. भगवती, २/१.
४. ज्ञाताधर्मकथा, अध्ययन १ व २.

कथाओं का वर्णन है।

अन्तकृतदशांग में उन महापुरुषों के जीवन का चरित्र-चित्रण है जिन्होंने अपने कर्मों का क्षय कर मोक्ष प्राप्त कर लिया है।

अनुत्तरौपपातिकदशा में ऐसे व्यक्तियों का चरित्र है, जिन्होंने मोक्ष तो प्राप्त नहीं किया, परन्तु अपनी दिव्य साधना द्वारा अनुत्तर विमान को प्राप्त किया है। अर्थात् इसमें दिव्य आत्माओं के चरित्र का समावेश है।

विपाकसूत्र में शुभ/अच्छे और अशुभ/बुरे फल से सम्बन्धित बीस प्रेरणादायी कथाएँ हैं।

औपपातिकसूत्र में पुनर्जन्म से सम्बन्धित कथाएँ हैं। इसी में महावीर और गौतम के प्रश्नोत्तर कथात्मक रूप में हैं।

राजप्रश्नीय में प्रदेशी और केशी के दृष्टान्त हैं।

कल्पिका अजातशत्रु के दस भाइयों और चेटक राजा के बीच युद्ध का वर्णन करनेवाला आगम है।

कल्पन्तसिका में राजपुत्रों की कथाएँ हैं जो सत्कर्म के कारण स्वर्ग प्राप्त करते हैं।

पुष्पचूला में पुष्पक विमानों से आनेवाले देवी-देवताओं की कथाएँ हैं।

वृण्हदशा में वृण्ह कुमार की दीक्षा का प्रसंग है।

निरयावलीसूत्र कोणिक, श्रेणिक और चलना के जीवन से सम्बन्धित कथाएँ में हैं।

उत्तराध्ययन में भावपूर्ण और शिक्षापूर्ण कथाओं का संग्रह है। इस ग्रन्थ में कपिल,^१ हरिकेश,^२ चित्रसम्भूत,^३ श्रीकृष्ण, अरिष्टनेमी और राजीमती,^४ चोर^५, विजयघोष,^६ जयघोष और शकट^७ की कथाएँ हैं।

दृष्टिवाद में १२० अक्रियावादियों, ८४ क्रियावादियों, ६७ अज्ञानवादियों, ३२

१. उत्तराध्ययन, अध्ययन ८.

२. वही १२.

३. वही १३.

४. वही २२.

५. वही ४/३.

६. वही २५/४४.

७. वही २७/२.

वैनयिकों का तर्कपूर्ण खण्डन है।^१ इसमें स्वमत स्थापना और परमत खंडन में भी कथोपकथन का सहारा लिया गया है।

शौरसेनी साहित्य के ग्रन्थों में कथा

भावपाहुड में बाहुबलि^२, मधुपिंगल^३, वशिष्ठमुनि,^४ बाहुमुनि,^५ दीपायन,^६ शिवकुमार,^७ भव्यसेन^८ एवं शिवभूति^९ के भावपूर्ण कथानकों का उल्लेख मिलता है।

तिलोयपण्णत्ति में ६३ शलाकापुरुषों के जीवन चरित्रों की प्रामाणिक सामग्री प्राप्त होती है।^{१०}

इस प्रकार जैन आगमों में प्रसंगानुसार अनेक कथाएं प्राप्त होती हैं। ये कथाएँ नदी की मुख्य धारा के प्रवाह से किनारे पर उगे हुए फूलों के पौधों की तरह हैं। इस तरह की छोटी-मोटी कथाओं ने अंग साहित्य के छूटे अंग को पूरा ही कथामय बना दिया है। इसमें धार्मिक आचार, आध्यात्मिक तत्त्व-चिन्तन, नीति और कर्तव्य को सफलतापूर्वक प्रतिपादित किया गया है जिससे सैद्धान्तिक पक्ष का व्यवहारिक-निरूपण होता है। इसी कारण इसे जैन उपासक, व्रती, तत्त्वज्ञ, श्रमण आदि आत्मशोधन और परिमार्जन के लिए आधार बनाते हैं। इसमें सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन की विकृतियों, परम्पराओं और मान्यताओं को उभार कर उन्हें सुलझाने का प्रयास किया गया है। अतः यह कह सकते हैं कि ये कथाएँ तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती हैं।

आगमों के प्रत्येक अंश में व्यक्ति के जीवन-मूल्यों का जो भी दृष्टान्त-उदाहरणों के द्वारा दिये गये हैं वे अनुपम एवं सराहनीय कहे जा सकते हैं। प्राकृत आगम के समस्त वाङ्मय में जो कुछ भी कथन है वह जंबूस्वामी, गौतम गणधर के प्रश्नों से प्रारम्भ होता है और उसका उत्तर महावीर द्वारा दिया जाता है। ऐसा संवादात्मक प्रयोग अन्यत्र नहीं है। ज्ञाताधर्मकथा तो कथा विकास का प्रथम सोपान है अतः इसके

१. कौत्कल काणोविद्ध.....स्थूणादीनां। हरिभद्र के प्राकृत साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ०-१६.
२. भावपाहुड, ४४.
३. वही ४५.
४. वही ४६.
५. वही ४९.
६. वही ५०.
७. वही ५१.
८. वही ५२.
९. वही ५३.
१०. तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थ, अधिकार, गाथा ५१५-१४९७.

चित्रण में आधुनिक उपन्यासिक शैली के साथ तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

(ब) टीकायुगीन कथाएँ

प्राकृत कथाओं के टीकायुगीन कथा साहित्य उपमाओं, रूपकों और प्रतीकों पर आधारित हैं। निर्युक्तियों में निजन्धरी कथाएँ मात्र कथात्मक संकेत प्रदान करती हैं। कथा साहित्य की दृष्टि से निर्युक्तियों में उतनी सामग्री नहीं है जितनी कि भाष्यों, चूर्णियों व टीकाओं में हैं। आवश्यकचूर्णि और दशवैकालिक की कथाएँ तो इतनी लोकप्रिय हुई कि उनका अलग प्रकाशन हो चुका है। प्राकृत कथा साहित्य की दृष्टि से आवश्यकचूर्णि, सूत्रकृतांगचूर्णि, निशीथचूर्णि और दशवैकालिकचूर्णि आदि समृद्धशाली हैं। आवश्यकचूर्णि में ऐतिहासिक कथाओं में प्रमुख रूप से राजा शालिवाहन की नहन्योवाहन पर विजय, ^१ महावीर की प्रथम शिष्या चन्दनबाला, ^२ श्रेणिक और चेलना का विवाह, ^३ कूटनीतिज्ञ चाणक्य^४ आदि का वर्णन है। अर्द्धऐतिहासिक में रानी मृगावती का कौशल, ^५ राजा उदयन और प्रद्योत शका युद्ध^६ आदि का उल्लेख है। धार्मिक कथाओं में वल्कलचीरी, ^७ ऋषिकुमार, धूर्त वणिग, ^८ व्यवसायी कृतपुण्य^९ एवं लौकिक कथाओं में लालच बुरी बलाय, ^{१०} पंडित कौन, ^{११} चतुर गेहक, ^{१२} चतुराई का मूल्य, ^{१३} पढ़ो और गुनो भी, ^{१४} आदि कथाएँ समाहित हैं। दशवैकालिकचूर्णि में ईर्ष्या मत करो, ^{१५} अपना-अपना पुरुषार्थ, ^{१६} और गौदड़ की राजनीति^{१७} से युक्त लोककथाएँ हैं।

निशीथचूर्णि में अन्याय के प्रतिकार के लिए कालकाचार्य^{१८} की कथा आयी है। सूत्रकृतांगचूर्णि में आर्द्रक कुमार^{१९} की कथा, हस्ति तापस^{२०}, निराकरण कथा,

- | | |
|---------------------------------------|-----------------------|
| १. आवश्यक चूर्णि २, पृ. २०१ | २. वही, पृ. ३१६-२०. |
| ३. वही, पृ. १६४. | ४. वही, पृ. ५६३-५६५. |
| ५. वही, पृ. ६७-९१ | ६. वही, पृ. १६६. |
| ७. वही, पृ०-४५६. | ८. वही, पृ०-५३१. |
| ९. वही, पृ०-४६७. | १०. वही, पृ०-१६९. |
| ११. वही, पृ०-५२२. | १२. वही, पृ०-५४४. |
| १३. वही, पृ०-५७-६०. | १४. वही, पृ०-५५३. |
| १५. वही, पृ०-९८. | १६. वही, पृ०-१०३-१०४. |
| १७. वही, पृ०-१०४. | |
| १८. निशीथ-चूर्णि उद्देशक १०, पृ० ५७१. | |
| १९. सूत्रकृतांग चूर्णि, पृ०-४१४-४१५. | २०. वही, पृ०-४४१. |

अर्थलोभी वृणिक की कथा^१ आदि कई कथाएँ वर्णित हैं। व्यवहारभाष्य एवं बृहत्कल्प भाष्य में प्राकृत कथाएँ बहुलता से उपलब्ध हैं। व्यवहारभाष्य में भिखारी का सपना,^२ छोटे बड़े काम कैसे कर सकते हैं,^३ कार्य की सच्ची उपासना^४ प्रभृति तथा बृहत्कल्प भाष्य में अकल बड़ी या भैस,^५ बिना विचारे काम,^६ मूर्ख बड़ा या विद्वान^७ वैद्यराज या यमराज,^८ शम्भ,^९ सच्चा भक्त,^{१०} जमायी की परीक्षा^{११} एवं रानी चेलना^{१२} आदि कथाएँ वर्णित हैं। इसी तरह के प्रयोजनों को सिद्ध करनेवाली उत्तराध्ययन की सुखबोधनी टीका में लगभग १२५ छोटी बड़ी कथाएँ हैं।

इस प्रकार टीकायुगीन कथाओं की वर्णनात्मक विशेषताएँ ही आगमों की कथा से उन्हें अलग करती हैं। आगमों की टीका ग्रन्थों की कथाओं को पूर्ण विवेचित किया गया है जिससे कथाएँ विस्तार एवं भाव को प्राप्त हुई हैं तथा विषयों के चयन, निरूपण और सम्पादन में विविधता भी आयी है, साथ ही कथाओं में संक्षिप्तता एवं उद्देश्य के प्रति सजगता का समावेश भी हुआ है।

निर्युक्तियों और चूर्णियों में ऐतिहासिक, अर्द्ध-ऐतिहासिक, धार्मिक और लौकिक कथाएँ उपलब्ध होती हैं। इनके भाष्य ग्रन्थों में अधिकांश लोक कथाएँ और उपदेशप्रद नीति कथाएँ हैं। इस प्रकार टीका साहित्य कथा और आख्यानों का अक्षय भण्डार कहा जा सकता है। आगमों के मूल में जो कुछ भी था उसे व्याख्याकारों ने अधिक रोचक बना दिया है।

(स) स्वतन्त्र कथा साहित्य

प्राकृत कथा साहित्य के विकास की तीसरी सीढ़ी स्वतन्त्र लेखकों द्वारा कथा साहित्य के निर्माण के रूप में प्राप्त होती है। इन कथाओं की विशेषता यह है कि कथाकार इसमें कथात्मक दायित्व के निर्वाह की चिन्ता से चिन्तित रहता है। इस युग की मुख्य कथाओं में वसुदेवहिण्डी, समराइच्चकहा, तरंगवती, पउमचरियं आदि हैं। तरंगवती कथा आज अनुपलब्ध है फिर भी इसके उल्लेखों से ज्ञात होता है कि यह एक धार्मिक उपन्यास था जिसकी ख्याति लोकोत्तर कथा के रूप में

- | | |
|-----------------------------------|------------------------------------|
| १. सूत्रकृतांग-चूर्णि, पृ०-४५२. | २. व्यवहारभाष्य, उद्देशक-३, पृ०-८. |
| ३. व्यावहारभाष्य, पृ०-७. | ४. वही, पृ०-५१. |
| ५. बृहत्कल्पभाष्य पीठिका, पृ०-५३. | ६. बृहत्कल्प भाष्य पीठिका, पृ०-५६. |
| ७. वही, पृ०-११०. | ८. वही, पृ०-१११. |
| ९. वही, पृ०-५६-५७. | १०. वही, पृ०-२२३. |
| ११. वही, पृ०-२२३. | १२. वही, पृ०-५७. |

बहुत अधिक थी। वसुदेवहिण्डी का विश्व कथा साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इन कथाओं में मुख्य रूप से निम्न विशेषताएं पायी जाती हैं—

१. इन कथाओं में सर्वप्रथम हमें चरित्र का कथात्मक उत्कर्ष प्राप्त होता है।
२. इस युग की कथाओं में संकलन की प्रवृत्ति और लोक कथाओं को अभिजात्य साहित्य के रूप में प्रकट करने की परम्परा का प्रचलन प्राप्त होता है।
३. मनोविनोद, भयानक और प्रेम सम्बन्धी अनेक दृश्यों को प्रस्तुत करना इन कथाओं की विशेषता है।
४. स्थापत्य की एक स्थिर और सुस्पष्ट दृष्टि उस युग की कथाओं में दर्शित होती है।
५. वर्तमान कथाओं में व्यापकता, विभिन्नता, मानव प्रकृति का परिचय, वर्णन-सौन्दर्य, भाषा और शैली की सरलता इन कथाओं की देन है।
६. छन्द, अलंकार आदि के तत्त्व एवं रस की योजना का समावेश इन कथाओं में है।
७. सरल, अकृत्रिम और सुन्दर शैली में प्रस्तुतीकरण के कारण इन कथाओं का मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है।
८. कथाओं के मध्य में धर्म-तत्त्व नमक की उस चुटकी के समान है जो सारे भोजन को स्वादिष्ट और सुखमय बना देती है।
९. प्राकृत कथाएं समसामयिकता को लिए हुए आज भी जीवंत बनी हुई हैं।
१०. प्राकृत कथाओं में प्रकृति का सौन्दर्य एवं पर्यावरण की भीनी-भीनी सुगंध भी है।
११. प्राकृत कथाएँ अन्तर्जगत का साकार रूप लिए हुए हैं।
१२. प्राकृत कथाओं में लोक-तत्त्व, लोकजीवन, लोक रीति-नीति आदि की सापेक्षता से आध्यात्मिक सत्यार्थ को उद्घाटित करने की शक्ति विद्यमान है।

प्राकृत की कथाएँ मौलिकता से जुड़ी हुई कभी भी प्राचीनता को प्राप्त नहीं होने वाली हैं। इसलिए इनमें जीवन का सत्यार्थ है और समाज का उदारीकरण भी।

(द) हरिभद्रयुगीन प्राकृत कथा साहित्य

इस युग में कथा साहित्य का जितना विकास हुआ है उतना अन्य युग में

नहीं। कथानकों की विविधता एवं शिल्प और रूप की दृष्टि के साथ अभिनव प्रयोग इस युग की विशेषता थी। कथा या आख्यायिकाओं में धर्मकथा और प्रबन्ध काव्य के गुणों का समावेश भी इस युग में प्रारम्भ हो चुका था। इस युग में अलंकृत भाषा शैली, श्लेषमय समास पदावली, प्रसंगानुकूल कर्कश शब्दों का व्यवहार, दीर्घकाय वाक्य एवं अनूठी कल्पनाओं का प्रचलन अधिक था।

इस युग की प्रमुख कथाएँ समराइच्चकहा और धूर्ताख्यान के साथ-साथ टीकाओं और चूर्णियों में भी प्राप्त होती हैं। हरिभद्र ने मूलरूप से १२५ ग्रन्थों की रचना की है। जिनमें कथाओं के रूप में समराइच्चकहा और धूर्ताख्यान बहुत ही प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनकी कथाओं में धर्म, दर्शन आदि के चित्रण के साथ लोक व्यवहार का स्वरूप भी प्राप्त होता है। समराइच्चकहा की आधारभूत प्रवृत्ति प्रतिशोध की भावना है जिसमें सदाचारी नायक और दुराचारी प्रतिनायक के जीवन संघर्ष की घटनायें कई जन्मों तक चलती हैं।

धूर्ताख्यान एक व्यंग्य प्रधान रचना है जिसमें पुराणों में वर्णित असम्भव और अविश्वसनीय बातों का प्रत्याख्यान पाँच धूर्तों की कथाओं द्वारा किया गया है। भारतीय कथा साहित्य में इस लाक्षणिक शैली का प्रयोग अन्यत्र शायद ही प्राप्त हो। इस प्रकार नवीन शैली में कथाओं के माध्यम से हरिभद्र ने असम्भव, मिथ्या और अकल्पनीय निन्द्य आचरण की ओर ले जाने वाली बातों का निराकरण कर स्वस्थ, सदाचारी और सम्भव आख्यानों का निरूपण किया है।

हरिभद्र उत्तरयुगीन प्राकृत कथा साहित्य

हरिभद्र के बाद कथा साहित्य अपनी पूर्ण क्षमता के साथ विकसित होकर एक समृद्ध और पूर्ण साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। इस युग में प्राकृत कथाएँ चार श्रेणियों में लिखी गयीं।

१. उपदेशात्मक कथा साहित्य।
२. आख्यायिका कथा साहित्य- कथा के पश्चात् उपदेश प्रदान करनेवाला साहित्य।
३. धार्मिक उपन्यास- प्रेम कथा को अन्य कथा के जाल में बाँधकर नायक-नायिका का मिलन, सुखमय जीवन और अन्त में उनका जैन धर्म में प्रवेश कराना।
४. चरित्रात्मक कथा साहित्य- महापुरुषों की जीवन गाथाओं की ऐतिहासिक और काल्पनिक रंग में उपस्थित करना। इस युग में मूलतः उद्योतनसूरि की कुवलयमालाकहा, शीलंकाचार्य का चउपन्न-महापुरुष- चरित्र, धनेश्वरसूरि का

सुरसुन्दरी-चरित्र एवं निर्वाण लीलावती कथा, कथाकोष-प्रकरण, जिनचन्द्र की संवेग रंगशाला, महेश्वरसूरि की नागपंचमी कथा, चन्द्रप्रभ महत्तर की श्री विजयचन्द्र केवली चरित्र, गुणचन्द्र का महावीर चरित्र, देवप्रभ का श्री पार्श्वनाथ चरित्र एवं कथारत्न कोष, नेमिचन्द्र का महावीर चरित्र, रयणचूडारायचरित्र, नेमीचन्द्रसूरि का आख्यानकमणिकोष, सुमत्तिसूरि का जिनदत्त-आख्यान, गुणचन्द्रसूरि का नरविक्रमचरित्र, रत्नशेखरसूरि का श्रीपाल कथा, जिनहर्षसूरि का रत्नशेखरनृप कथा, वीरदेवगणि की महीपाल कथा, परमचन्द्रसूरि के शिष्य की प्राकृत कथा संग्रह मुख्य कथाएँ हैं।

इस प्रकार ईसा की चौथी शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक प्राकृत कथा साहित्य का निरन्तर विकास होता रहा, जो समाज, संस्कृति और लोकतत्त्वों से परिपूर्ण है।

प्राकृत कथा साहित्य की प्रवृत्तियाँ, उपलब्धियाँ एवं नवीन दृष्टिकोण

१. प्राकृत कथा साहित्य से संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दी की प्रेम कथाओं का विकास हुआ है। ज्ञाताधर्मकथा में मल्ली की कथा प्रेमकथा है, तरंगवती प्रेमाख्यान है। लीलावती कथा अपने युग की सर्वश्रेष्ठ प्रेम कथा है। प्रेम-प्रसंग से सम्बन्धित अनेक कथाएँ निर्युक्ति और भाष्यों में हैं। इस प्रकार प्राकृत कथाओं में प्रेम का उद्भव, भेंट, स्वप्नदर्शन, गुण-श्रमण आदि की विभिन्न स्थितियाँ दिखलायी गयी हैं।
२. प्राकृत कथाओं को रोचक बनाने के लिए गद्य-पद्य दोनों का प्रयोग हुआ है। संस्कृत की चम्पू विद्या का विकास इन्हीं कथाओं से मानना उचित है।
३. गुणाढ्य की बृहद्कथा एवं हरिभद्र के धूर्ताख्यान को लोक कथाओं का विश्वकोष कहा जा सकता है। अतः लोक कथाओं के विकास और प्रसार में प्राकृत कथाओं का उल्लेखनीय स्थान है।
४. पशु-पक्षी की कथा का विकास भी प्राकृत कथाओं से हुआ है। ज्ञाताधर्मकथा में कुएँ का मेढक, जंगल के कीड़े, दो कछुए आदि कथाएँ स्वयं भगवान महावीर के मुख से कहलायी गयी हैं।
५. प्राकृत कथाओं में इस लोक की समस्याओं का चिन्तन, परलोक की समस्याओं का समाधान, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण बहुत सुन्दर ढंग से किया गया है।
६. प्राकृत कथाओं में सिद्धान्तों का समावेश मध्य में किया गया है।

७. प्राकृत कथाओं में दान, शील, तप और सद्भाव रूप धर्म का निर्देश है।
८. इन कथाओं में धर्म, सम्प्रदाय, राष्ट्र, वर्ण आदि का चित्रण आचार, विचार, व्यवहार, सिद्धान्त, आदर्श, शिक्षण, संस्कार, रीति-नीति, राजतन्त्र, वाणिज्य व्यापार, आदि के रूप में भारत के सांस्कृतिक इतिहास की प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है।
९. इन कथाओं में उच्च, मध्यम व निम्न तीनों ही वर्गों को सम्मिलित कर सर्वसाधारण तक पहुंचने का प्रयास किया गया है।
१०. इन कथाओं में चामत्कारिक घटनाओं, कार्य व्यापारों, व्यक्तित्व निर्माण, लोक कल्याण के साथ मनोरंजक तत्वों का भी समावेश किया गया है।
११. प्राकृत कथाओं में संवाद शैली का विशिष्ट प्रयोग किया गया है। सूत्रकृतांग के छठे और सातवें अध्ययन में आर्द्रकुमार के गोशालक के साथ वार्तालाप में इस शैली का प्रयोग है। उत्तराध्ययन में ऐसे अनेक भावपूर्ण आख्यान हैं।

कथा का वर्गीकरण

कथा साहित्य चौथी शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक निरन्तर विकसित होती रही है। इस लम्बी दीर्घकालीन कालावधि में कथाओं के विभिन्न रूप हमें प्राप्त होते रहे हैं। दशवैकालिक में कथाओं के तीन भेद अकथा, कथा व विकथा प्राप्त होते हैं।^१

अज्ञानी जीव एवं मिथ्यादृष्टि जिस कथा को कहते हैं वह संसार को बढ़ाने वाली होने के कारण अकथा कहलाती है।

तप, संयम, दान व शील युक्त व्यक्ति लोक-कल्याण के लिए जिस कथा को कहता है, वह कथा कहलाती है। कुछ विद्वानों से इसे सत्कथा कहा है।^२ प्रमाद, कषाय, राग, द्वेष, चोर एवं समाज को विकृत करनेवाली कथा विकथा कहलाती है।

दशवैकालिक में विषय की दृष्टि से कथा के चार भेद किये गये हैं—

अर्थ-कथा, काम-कथा, धर्म-कथा और मिश्र-कथा।^३

१. “अकहाकहा य विकहा अबिज्ज पुरिसंतर पप्प” दशवैकालिक गाथा २०८-२११.
२. जिनसेन का महापुराण प्रथम पर्व, श्लोक १२०.
३. अत्यकहा कामकहा धम्मकहा चेव मिसिया य कहा। एतो एक्केक्कावि य णोगविहा होइ नायव्वो॥ दशवैकालिक गाथा-१८८.

अर्थ-कथा

व्यक्ति की आर्थिक समस्याओं और उसके समाधान को कथा के माध्यम से व्यक्त करना अर्थ-कथा है।^१

काम-कथा

रूप, सौन्दर्य, युवावस्था, वंश आदि विषयों की शिक्षा कथा के माध्यम से प्रदान करना काम-कथा है।^२

धर्म-कथा

क्षमा, मार्दव, आर्जव, तप, संयम, सत्य, शौच, अकिंचन, ब्रह्मचर्य, अणुव्रत, दिग्ब्रत, देशब्रत, अनर्थदण्डब्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, भोग-परिभोग, अतिथि-संविभाग, अनुकम्पा तथा अकाम निर्जरा का जहाँ वर्णन हो वह धर्मकथा है।^३

दशवैकालिक में धर्मकथा के भी चार भेद किये गये हैं—

आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेगिणी और निर्वेदिणी।^४

मिश्र-कथा

जिन कथाओं में अर्थ, काम और धर्म इन तीनों का सम्मिश्रण पाया जाये वह मिश्रकथा कहलाती है। दशवैकालिक में भी कहा गया है कि जिस कथा में धर्म, अर्थ, काम इन तीन पुरुषार्थों का निरूपण हो वह मिश्र कथा है।^५

समराइच्चकहा एवं लीलावईकहा में पात्रों के आधार पर कथा के तीन भेद किये गये हैं—

१. **दिव्य**— जिनमें दिव्य लोक के व्यक्तियों के क्रियाकलाप से कथानक या कथावस्तु का निर्माण होता है वे दिव्य कथाएँ कहलाती हैं।

२. **मानुषी**— पूर्ण मानवता से युक्त व्यक्ति के उत्थान, पतन एवं विभिन्न समस्याओं का उल्लेख जिस कथा में होता है वह मानुषी कथा कहलाती है।

३. **दिव्य-मानुषी**— मनुष्य एवं देवों से सम्बन्धित प्राकृत भाषा में कही जानेवाली मनोहर एवं सरस कथा दिव्य-मानुषी कथा कहलाती है।^६

४. भाषा के आधार पर कथाओं के (१) संस्कृत, (२) प्राकृत, (३) मिश्र

१. दशवैकालिक, गाथा-१८९.

२. वही, गाथा-१९२.

३. समराइच्चकहा, पृ. ३.

४. दशवैकालिक गाथा १९३-१९५.

५. वही गाथा २६६.

६. लीलावईकहा गाथा ३६.

तीन भेद किए गए हैं।^१

५. उद्योतनसूरि ने स्थापत्य के आधार पर पाँच भेद किए हैं। (१) सकल-कथा, (२) खण्डकथा, (३) उल्लाप-कथा, (४) परिहास-कथा और (५) संकीर्ण कथा।^२

६. हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन में कथाओं के १२ भेद किए हैं— (१) आख्यायिका, (२) कथा, (३) आख्यान, (४) निदर्शन, (५) प्रवहिका, (६) मन्यल्लिका, (७) मणिकुल्या, (८) परिकथा, (९) खंडकथा, (१०) सकलकथा, (११) उपकथा और (१२) बृहत्कथा।^३

७. डॉ० ए०एन० उपाध्ये ने वर्ण व विषय की शैली के आधार पर कथाओं को पाँच भागों में विभक्त किया है।^४

- (१) प्रबन्ध शैली में विशिष्ट पुरुषों के चरित्र।
- (२) तीर्थंकर या विशिष्ट पुरुषों में किसी एक का विस्तृत चरित्र।
- (३) प्रेम प्रसंगों से युक्त कथाएँ।
- (४) अर्द्ध-ऐतिहासिक कथाएँ।
- (५) उपदेशप्रद कथायें।

इस प्रकार उपरोक्त वर्गीकरण से यह स्पष्ट होता है कि प्राकृत-कथा-साहित्य विभिन्न वर्गों में विभक्त है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि चरित्र काव्यों को भी कथा साहित्य में समाविष्ट किया गया है क्योंकि इन चरित्रों में कथा तत्व की मात्रा बहुत अधिक होती है। चरित्र व्यक्ति के समग्र कथानक को प्रस्तुत करता है। इसलिए चरित्र भी कथा है ऐसा कहा जा सकता है।

प्राकृत कथा साहित्य की सामान्य विशेषताएँ

किसी भी साहित्य के निर्माता का मूल उद्देश्य उसके लक्ष्य तक पहुंचना होता है। अगर वह साहित्य लक्ष्य पूर्ति में साधक बन जाता है तो साहित्य सफलता को प्राप्त करता है। प्राकृत कथाओं का भी मूल लक्ष्य सरल, सहज व स्वाभाविकता से युक्त मनोरंजक कथा को कहते हुए धर्म एवं आध्यात्म की ओर अग्रसर करना है।

१. लीलावर्षकहा गाथा ३६.

२. कुवल्यमालाकथा, अध्ययन-७, पृ०-४,

३. हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, अध्ययन-८, सूत्र-७-८.

४. बृहत्कथाकोष, भूमिका पृ०-३५.

आचार्य उद्योतनसूरि ने कुवलयमाला में प्राकृत कथा साहित्य की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहा है —

“सालंकारा सुहया ललिय-पया मउय-मंजु संलावा।

सहियाण देइ हरिसं उव्वूढा णव बहू चेवा।।

सुकई-कहा-हय-हिययाण तुम्ह जइ विहुण लग्गए एसा।

पोढा-रयाओ तह विहु कुणई विसेसं णव-बहुव्वा।।”

अर्थात् सुन्दर अलंकारों से विभूषित, सुस्पष्ट, मधुरालाप और भावों से नितान्त मनोहर तथा अनुरागवश स्वमेव शय्या पर उपस्थित अभिनव वधू की तरह सुगम, कलाविधा सम्बन्धी वाक्य-विन्यासों के कारण सुश्राव्य, मधुर-सुन्दर शब्दावली से गुम्फित, कौतूहल युक्त सरस और आनन्दानुभूति उत्पन्न करने वाली कथा होती है।^१

इस प्रकार प्राकृत कथाएँ सभी को हर्ष उत्पन्न करती हैं। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

१. प्राकृत कथाओं में अनेकानेक स्थलों पर कथाओं का प्रारम्भ प्रश्नोत्तर के रूप में हुआ है। लीलावईकहा में पत्नी, पति को सांयकालीन मधुर वेला देखकर स्नेहील कथा कहने का आग्रह करती है।^२ प्राकृत के प्रायः सभी चरित्र काव्यों में यही शैली प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए जम्बूचरियं^३ नेमिचन्दसूरि का महावीर-चरित्र^४ एवं रयणचूडरायचरित^५ लिया जा सकता जिसमें एक श्रोता महावीर के चरित्र को पूछता है और ज्ञानी या वक्ता उस चरित्र का उद्घाटन करता है।

२. **पूर्व जन्मों का उल्लेख**— प्राकृत कथाओं में कथाकार कथा कहता है, वहीं अचानक से पूर्व जन्म का घटनाक्रम जोड़ देता है, जिससे कथा में गति आ जाती है। आजकल धारावाहिकों एवं चलचित्रों में फ्लैश बैक दिखाया जाता है वही पद्धति कथाओं में प्राप्त होती है।

प्राकृत कथाओं में केवली या अन्य ज्ञानी नायक को धर्मदेशना देते हैं। उस धर्मदेशना को सुनते ही नायक को पूर्वजन्म का ज्ञान हो जाता है। इसी तरह राजा

१. कुवलयमाला कहा, पृ. ४, अध्ययन ८.

२. लीलावईकहा गाथा २४, “जोणहाउरियं कोस.....छप्पओ”

३. जम्बूचरित्र, गाथा, २५-२९.

४. महावीरचरित्र गाथा, ९९-१००.

५. रयणचूडचरित्र, पृ०-२.

रत्नशेखर की कथा में किन्नर-मिथुन के वार्तालाप से राजा को पूर्वजन्म की पत्नी रत्नावती का स्मरण हो जाता है।^१ तरंगवती कथा में भी हंस-मिथुन दर्शन से पूर्वजन्म का ज्ञान होने का वर्णन आया है।^२ इसी प्रकार कुवलयमालाकहा में कुवलयचन्द्र को अतीत का स्मरण हो आता है और वह उसी आधार पर कुवलय की खोज करता है।

३. भूत और वर्तमान का सम्मिश्रण— प्रायः सभी प्राकृत कथाओं में अतीत और वर्तमान दोनों की घटनायें प्राप्त होती हैं। तरंगवती कथा में उद्यान में विचरण करती हुई नायिका हंस-मिथुन को देखकर अतीत का स्मरण करने लगती है और अपने प्रेमी की तलाश में निकल पड़ती है। महावीर चरित्र में नेमिचन्द्र ने तीनों कालों के संयोग को दिखलाया है। लीलावईकहा में भी लीलावती एवं उसकी सखी भूत एवं वर्तमान के भाव स्मरण को लेकर उनकी (अपने प्रियतम की) खोज में निकल पड़ती है।

४. कथाओं का सम्मिश्रण— प्राकृत साहित्य में उपन्यास की तरह अवान्तर कथाओं का भी सम्मिश्रण है जिनमें वसुदेवहिण्डी, समराइच्चकहा, कुवलयमालाकहा, एवं लीलावईकहा आदि कथाओं के नाम उल्लेखनीय हैं।

५. उद्देश्य प्रधानता— प्राकृत कथाएँ निरुद्देश्य या केवल क्षणिक मनोरंजन के लिए नहीं लिखी गयी हैं। इसमें मानव जीवन के विभिन्न दृष्टिकोणों को परखने की चेष्टा की गयी है। साहित्यकार से अगर असावधानी हो जाय तो कथाप्रवाह रुक जाता है अतः लेखक को सावधानी की विशेष आवश्यकता रहती है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण कुवलयमाला में देखने को मिलता है जहाँ गरिमामय पदावली एवं अभिन्न वर्णनों का अद्भूत सामञ्जस्य बना है।

६. व्यंग्य का अनुमिति द्वारा प्रकटीकरण— प्राकृत कथाओं में किसी बात को स्वयं न कहकर व्यंग्य के माध्यम से प्रकट किया गया है। कुवलयमाला में राजा दृढवर्मा को महेन्द्र की प्राप्ति पुत्र प्राप्ति का संकेत है। समराइच्चकहा में गुणसेन के महल के नीचे से मुर्दा निकलना वैराग्य प्राप्ति का संकेत है।

७. स्थापत्य कला का प्रयोग— ज्ञाताधर्म की कथाओं में नगर, ग्राम, सरोवर, प्रासाद, ऋतु, वन, पर्वत आदि का विवेचन बहुत ही सुन्दरता से किया गया है। जैसे राजप्रासाद की स्थापत्य कला प्रसिद्ध होती है उसी प्रकार प्राकृत कथाओं

१. रयणसेहरनिवकथा, पृ०-६.

२. तरंगवतीकथा, पृ०-१७-१८, गाथा ५८-६८.

की वर्णन प्रणाली में भी स्थापत्य होता है।

८. **इतिवृत्तात्मक प्रक्रिया का आलम्बन**— ज्ञाताधर्म की कथाओं में जिज्ञासा, आश्चर्य एवं रोमांच है, फिर कथा नई करवट लेती है जो उत्साह, दुःख, सुख, प्रेम आदि के साथ आगे बढ़ती है जिससे पाठक के भाव एवं वृत्तियों को बल मिलता है। कथाओं के अन्त में चरित्र का उत्कर्ष एवं जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों का विकास होता है। अधिकांश प्राकृत कथाकारों ने सहज पद्धति से कथाएँ लिखी हैं। इनमें कोई भी रंग भरने का प्रयास नहीं किया गया है। चरम बिन्दु का तो प्राकृत की प्रत्येक कथा में प्रायः अभाव पाया गया है।

९. **विविधताओं का समावेश**— प्राकृत कथाकारों ने वर्णन के रूप में निम्न बातों का ध्यान दिया है।

- (अ) संक्षिप्त और प्रसंगोचित वर्णन।
- (ब) मूल कथा के साथ अन्य कथाओं का समावेश।
- (स) कौतूहलपूर्ण घटनाएँ।
- (द) आदर्श चरित्रों की स्थापना के साथ धर्म-तत्त्व का वर्णन।
- (य) सरस वाक्यावली का समावेश।
- (र) पौराणिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों का वर्णन।

१०. **मंडनशिल्प का प्रयोग**— प्राकृत कथाओं में नगर, देश, राजभवन आदि के वैभव का वर्णन बहुत सुन्दर ढंग से किया गया है।

११. **कथा के विभिन्न अंगों का स्थापत्य**— शरीर के विभिन्न अंगों की तरह कथा के विभिन्न अंगों को सुव्यवस्थित करना कथा में रस एवं चमत्कार उत्पन्न करता है। वसुदेवहिण्डी^१ में कथा के छः एवं पउमचरियं में कथा के सात अंग बताये गये हैं।

१२. **पात्रों की बहुलता**— प्राकृत कथाओं में विभिन्न वृत्तियों वाले मानव और मानवेतर पात्र प्राप्त होते हैं। मानवेतर पात्रों में देव, दानव और तिर्यच सम्मिलित हैं जबकि मानव-पात्रों में नर-नारी, बालक, बालिका, राजपुरुष, पुरोहित, मंत्री, सामान्य नागरिक, उत्कृष्ट समाज आदि सभी का समावेश है।

१३. **कथाओं की विशालता**— प्राकृत की बहुत-सी कथाएँ इतनी बड़ी

१. कथोत्पत्ति: प्रस्तावना, मुख, प्रतिमुख, शरीर और उपसंहार। वासुदेवहिण्डी, पृ०-१.

है कि उन्हें उपन्यास कहा जा सकता है जिसके निम्न कारण हैं—

- (अ) साधारण कथाओं की अपेक्षा इतिवृत्त विशाल होना।
- (ब) भाषा-प्रवाह विलक्षण।
- (स) लयात्मकता।
- (द) दर्शन, विवेक, वृत्त, चरित्र, शील, दान सम्बन्धी विशेषताएँ।

१४. भाग्य एवं संयोग— प्राकृत कथाओं में स्पष्ट किया गया है कि भाग्य ही सब कुछ है। व्यक्ति का अपना कुछ नहीं। जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों के प्रभाव से जो होता है वह होना ही था। भाग्यवाद पर आधारित इन कथाओं में संयोग-वियोग को आधार माना गया है।

इस प्रकार प्राकृत कथाओं की विशेषताएँ बहुत ही सारगर्भित हैं। यही कारण है कि ये सरल, सहज, रोचक हैं जो सीधे हृदय पर प्रहार करती हैं। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को अलंकृत वाणी में अभिव्यंजित करना प्राकृत कथाओं का कार्य है। अलंकार एवं रस योजना भी इसमें सम्मिलित हैं।



चतुर्थ अध्याय

ज्ञाताधर्मकथांग की विषयवस्तु

विषयवस्तु के स्रोत

जैन साहित्य के प्राचीनतम आयाम आगम हैं जिसमें जावन का समरसता का सार है। इसमें ज्ञातृपुत्र महावीर द्वारा उपदिष्ट/प्ररूपित धर्मकथाओं का निरूपण होने से इस ग्रन्थ का नाम ज्ञाताधर्मकथांग पड़ा है।^१ इसकी गणना जैनागम साहित्य के प्राचीन अंग आगमों में की गयी है। ज्ञाताधर्मकथांग को प्राकृत में 'नायाधम्मकहाओ' तथा संस्कृत में 'ज्ञातृधर्मकथा/ज्ञाताधर्मकथा' नाम से भी जाना जाता है।^२ यह ग्रन्थ दो श्रुतस्कन्धों में विभक्त है- प्रथम श्रुतस्कन्ध में उन्नीस कथांश है एवं द्वितीय श्रुतस्कन्ध में दस वर्ग है। नन्दीसूत्र में कहा गया है कि इसके द्वितीय श्रुतस्कन्ध की प्रत्येक वर्ग की धार्मिक मर्म से संबंधित ५००-५०० आख्यायिकाएँ हैं और एक-एक आख्यायिका में ५००-५०० उप-आख्यायिकाएँ हैं और एक-एक उप-आख्यायिका में ५००-५०० आख्यायिकोपख्यायिकाएँ हैं, पर वे सभी कथाएँ आज उपलब्ध नहीं हैं। ज्ञाताधर्मकथांग के वर्तमान संस्करणों के प्रथम श्रुतस्कन्ध में उन्नीस कथाएँ तथा द्वितीय श्रुतस्कन्ध में दो सौ छः कथाएँ निरूपित हैं।^३ ज्ञाताधर्मकथांग की कथाएँ आध्यात्मिक, समुत्कर्ष, आत्मा-परमात्मा, समत्वदर्शन, ज्ञान-विज्ञान और कर्म जैसे दार्शनिक पहलुओं को व्यक्त करती हैं। इसमें उल्लेखित उदाहरण प्रधान रूप से नीतितत्त्व, जीवन-मूल्य, सद्विचार, सदाचरण, सद्बोध, सद्-ज्ञान, समता, समभाव, ज्ञानदर्शन एवं चारित्र के उत्कृष्ट मार्ग को प्रशस्त करती हैं।

ज्ञाताधर्मकथांग की विषय वस्तु

ज्ञाताधर्मकथांग अंग आगम साहित्य का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें मुख्य रूप से भगवान महावीर द्वारा देशित उन कथाओं का संकलन है जो समय-समय पर उन्होंने अपने शिष्यों को कर्तव्य बोध कराने के लिये प्ररूपित किया था। इसकी

१. जैन जगदीशचन्द्र, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ८०.
२. ज्ञाताधर्मकथांग, मुनि मधुकर, आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राज०), पृ०-४.
३. वही, भूमिका, आचार्य देवेन्द्रमुनि शास्त्री, पृ०-६

अधिकांश कथाएँ शिक्षाप्रद, नीतिपरक, पर्यावरण सुरक्षा एवं प्राणी जगत की रक्षा से सम्बन्धित हैं।

इस आगम के प्रारम्भ में मंगलाचरण नहीं है। कथाकार ने 'पठमं अञ्जयणं उक्खित्तणाए' ऐसा शीर्षक देकर ही समय, काल, चम्पानगरी, उसकी सीमा, वैभव, शासक आदि का सांकेतिक निरूपण करने के पश्चात् भगवान महावीर के प्रथम शिष्य सुधर्मास्वामी के विषय में - उनकी जाति, कुल, रूप, विनय, तप, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणों का सांगोपांग निरूपण किया है। आर्य सुधर्मा सम्बन्धी विवेचन मात्र उनके गुणों की प्रशंसा से सम्बन्धित नहीं हैं अपितु कथाकार उनके जीवन्त स्वरूप को आगे की कथानकों में भी उपस्थित करना चाहता है ऐसा परिलक्षित होता है। कथानक के मूल में राजा की जिज्ञासा है कि जम्बूस्वामी किस प्रकार के हैं? इस प्रश्न के उत्तर को इस रूप में व्यक्त किया गया है कि आर्य सुधर्मास्वामी साधक की भूमिका पर विचरण करते हुए संयम और तप की पराकाष्ठा की ओर अग्रसर होना चाहते हैं। उनकी तपोसाधना का परिणाम जम्बूस्वामी के रूप में उपस्थित होता है। वे आर्य सुधर्मा के ज्येष्ठ शिष्य थे जो काश्यप गोत्रीय थे। उनके गोत्र, संस्थान, संहनन, वर्ण, तप, गुण, संस्कार, ध्यान आदि के पश्चात् कथाकार स्वयं यह कथन करता है कि छोटे अंग के दो श्रुतस्कन्ध कहे गये हैं (१) ज्ञाता और (२) धर्मकथा। ज्ञाता या ज्ञात अध्ययनों का उल्लेख निम्न है—

१. उत्क्षिप्त ज्ञात, २. संघाट, ३. अंडक, ४. कूर्म, ५. शैलक, ६. रोहिणी, ७. मल्ली, ८. माकन्दी, ९. चन्द, १०. दावद्रववृक्ष, ११. तुम्ब, १२. उदक, १३. मंडूक, १४. तेतलीपुत्र, १५. नन्दीफल, १६. अमरकंका (द्रौपदी), १७. आकीर्ण, १८. सुंसुमा और १९. पुण्डरीक-कुण्डरीक।

१. उत्क्षिप्तज्ञात

यह अध्ययन राजा श्रेणिक से सम्बन्धित है। राजगृह नगर में राजा श्रेणिक राज्य करता था, उसका सम्पूर्ण वैभव महाहिमवन्त पर्वत के समान फैला हुआ था। उसकी दो रानियाँ थीं- नन्दा और धारिणी। नन्दा से अभयकुमार का जन्म होता है जो अतिशय बुद्धिशाली था। साम, दाम, दण्ड, भेद आदि की नीति में निपुण तथा औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी एवं पारिणामिकी बुद्धि में प्रवीण था।

राजा श्रेणिक की द्वितीय रानी धारिणी देवी थी जो अत्यन्त रूपवान, कमनीय, प्रियदर्शना एवं चौसठ कलाओं से परिपूर्ण थी। वह रात्रि में स्वप्न दर्शन करती है। प्रातः उठते ही राजा श्रेणिक के पास जाकर निवेदन करती है कि हे राजन! मैंने

जो स्वप्न देखे हैं उनका फल क्या है? श्रेणिक ने स्वप्नों का समाधान करते हुए कहा है- हे देवानुप्रिय! तुमने जो स्वप्न देखे हैं वे कल्याणकारी हैं। स्वप्नों के फल को सुनकर वे हर्षित हुईं। तत्पश्चात् कुलदेवता का पूजन करती हुई गर्भ को धारण किया और प्रसन्नमना दोहद को प्राप्त हुईं। दोहद की पूर्ति अभयकुमार द्वारा करायी गई। निश्चित समय पर रानी धारिणी ने पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम मेघकुमार रखा गया। वह भी धीरे-धीरे वृद्धि को प्राप्त हुआ और यौवनावस्था में ७२ कलाओं में निपुण होकर राजकुमार पद पर प्रतिष्ठित हुआ।

मेघकुमार युवावस्था को प्राप्त होने पर जन-जन का प्रिय बन गया। उसका बाग्दान राजकुल की आठ राजकन्याओं के साथ हुआ और वह कामभोगों को भोगता हुआ राजगृह के सुन्दर प्रासाद में रहने लगा। एक दिन राजगृह में श्रमण भगवान महावीर का आगमन हुआ। कंचुकी ने यह सूचना कुंवर को दी। कुंवर तीर्थ वन्दना हेतु वहाँ गये तथा महावीर की देशना सुनकर चारित्रधर्म की ओर अग्रसर हो गये। धर्म श्रवण से उनके मन में निर्ग्रन्थ बनने के भाव जागृत हुए और उन्होंने तत्काल माता-पिता के पास आकर अपने संकल्प का उनसे निवेदन किया। मेघकुमार की धर्म के प्रति रुचि देखकर माता-पिता दीक्षा देने में बाधक नहीं बने। उन्होंने सहर्ष आज्ञा दे दी। माता तो माता ही हीती है चाहे वह किसी की क्यों न हो। पुत्र के गृहत्याग पर शोक करती ही है, परन्तु मेघकुमार के भावों के सामने माता धारिणी नम्रीभूत हो गई और दीक्षा के लिए अनुमति दे दी।

मेघकुमार के जीवन की यह अपूर्व घटना थी। कथाकार ने इस कथा में इनके तीन जन्मों का अपूर्व दर्शन कराया है। इसमें मेघकुमार के पूर्व के दो भवों का भी उल्लेख है। तीसरा भव मेघकुमार का था। पूर्व के प्रथम भव में मेघकुमार जंगली हाथी की पर्याय में था। हाथी जंगल की आग की चपेट में आ गया। प्राण रक्षा के लिए इधर-उधर भटकता हुआ सरोवर के पास पहुँचा। गर्मी, भूख, प्यास से व्याकुल था, अतः पानी पीने के लिए सरोवर में उतरा। अधिक कीचड़ होने के कारण उसमें फँस गया। बाहर निकलने का प्रयास किया, परन्तु निकलने में समर्थ नहीं हो पाया। विवश, लाचार एवं असहाय अत्यन्त वेदना को प्राप्त हुआ। उसी समय एक दूसरा हाथी वहाँ आया। कीचड़ में फँसे हाथी को देखकर उसे पूर्व वैर का स्मरण हो आया। उसका क्रोध बढ़ गया और उसने आर्त परिणामों से युक्त होकर जंगली हाथी की पीठ पर नुकीले दाँतों से प्रहार किया। फलतः उसने अत्यन्त वेदनायुक्त होकर प्राण त्याग दिये और पशुगति को प्राप्त हुआ अर्थात् पुनः हाथी के रूप में जन्म लिया।

इसके अनन्तर पुनः उसी जंगल में भयंकर दावानल का प्रकोप हुआ जिससे पशु पक्षी एवं वन की वनस्पतियाँ सभी नष्ट होने लगीं। पशु गति को प्राप्त मेरुप्रभ प्राणरक्षा हेतु इधर-उधर जंगल में भागने लगा। उसके साथ अन्य हाथियों का समूह भी इधर-उधर व्याकुल होकर दौड़ने लगा। उन्हें जलता हुआ देखकर जाति स्मरण हो गया। अर्थात् लेश्याविशुद्धि, शुभ अध्यवसाय और शुभ परिणाम आदि के कारण उसी दावानल के समीप वर्षायुक्त स्थान को बनाया जिससे मेरुप्रभ के साथ जंगल की सम्पदाओं और अन्य प्राणियों की भी रक्षा हुई। पुनः दावानल का प्रकोप हुआ। इस बार बचाव का स्थान मेरुप्रभ ने पहले से ही बना रखा था, अतः मेरुप्रभ उसी ओर भागा। जंगल सभी जानवर मेरुप्रभ के पीछे भागे। अचानक मेरुप्रभ के शरीर में खुजली उत्पन्न हुई और उसने जैसे ही शरीर खुजलाने के लिए पैर उपर उठाया कि एक खरगोश नीचे आ गया।

मेरुप्रभ हाथी ने सोचा कि यह खरगोश पंचेन्द्रिय जीव है, इसके नीचे अन्य कई जीव भी होंगे। अतः प्राणी रक्षा के भाव से युक्त होकर मेरुप्रभ ढाई दिन तक खड़ा रहा जिसके परिणामस्वरूप वह हाथी मनुष्य आयु बन्ध को प्राप्त हुआ।

सौ वर्ष की आयु पूर्ण करके वही जीव धारिणी के गर्भ में आया और वही शिशु के रूप में मेघकुमार के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मेघकुमार उपदेश सुनकर संयम मार्ग की ओर अग्रसर हो जाता है तथा दीक्षा ग्रहण कर तपश्चरण करने लगता है। अन्त में समाधिमरण को प्राप्त करके सिद्ध गति को प्राप्त होता है।

प्रस्तुत अध्ययन में मूलतः निम्न शिक्षाप्रद तथ्यों को इंगित करता है—

१. तत्त्व जिज्ञासा और अनगार धर्म के प्रति श्रद्धा।
२. पुत्र का माता-पिता के प्रति कर्तव्यभावा।
३. स्वप्नफल आरोग्य, कल्याण और मंगलदायी।
४. कला व्यक्ति को महान एवं श्रेष्ठ बनाता है।
५. युवकों की कलाएँ ७२ मानी गयी हैं और नारियों की कला ६४ मानी गयी हैं।
६. कला का मूल उद्देश्य मूक पशुओं की रक्षा का है।
७. इसमें वनस्पति रक्षा, जीव रक्षा, मानवीय रक्षा, मानसिक रक्षा, शारीरिक रक्षा आदि का भाव है।

२. संघाट

द्वितीय अध्ययन में मन, वचन और काय की एकाग्रता पर विशेष बल दिया गया है। इसमें राजगृह नामक नगर का वर्णन है। इसी नगर में गुणशील नामक चैत्य को नाना प्रकार के वृक्षों, लताओं, बेलों आदि से समृद्ध बताया गया है। राजगृह नगर जो धन-धान्य आदि से सम्पन्न था। धन्य सार्थवाह इसी नगर का निवासी था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था।

राजगृह में विजय नामक चोर रहता था। वह पापी, चाण्डाल, क्रूर स्वभावी, विश्वासघाती एवं सप्त व्यसनों से युक्त था।

भद्रा ने देवी-देवताओं की उपासना से पुत्र रत्न की प्राप्ति की। जिसका नाम देवदत्त रखा। वह धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। दास-दासियाँ उसे खिलाने लगीं। एक पंथक उसे बाहर ले जाकर स्वयं बालकों के साथ खेलने लगा। उसे यह ध्यान नहीं रहा कि जिस पुत्र की मैं रक्षा कर रहा हूँ वह मेरे मालिक का है। इसी बीच विजय चोर उस स्थान पर आया उसने देवदत्त को देखा जो आभूषणों से लदा हुआ था। उसका अपहरण कर लिया। उसकी खोज की गई। परन्तु वह नहीं मिला, क्योंकि उस बालक के वस्त्र आभूषण आदि उतारकर चोर ने उसे कुएँ में डाल दिया था।

नगर रक्षकों ने उसकी खोज की। विजय चोर के पैरों के निशानों का अनुसरण करते हुए वे मालुकाकच्छ में पहुंचे जहाँ बालक देवदत्त के आभूषणों को पहचाना गया। विजय चोर को बन्दी बनाकर करागृह में डाल दिया गया। इधर धन्य सार्थवाह राजकीय अपराध में पकड़ लिया गया। विजय चोर और धन्य सार्थवाह को एक दूसरे से बाँध दिया गया। भद्रा की पत्नी भद्रा भोजन लेकर धन्य सार्थवाह के पास आयी और भोजन देकर घर चली गई। कुछ समयोपरान्त धन्य सार्थवाह मल-मूत्र से पीड़ित हो गया और विजय चोर भूख से व्याकुल। दोनों की गम्भीर स्थिति हो गयी। दया भाव से प्रेरित हो धन्य सार्थवाह अपने पुत्र के घातक को जानते हुए भी भोजन देने के लिए तैयार हो गया। उसने अपने भोजन में से कुछ हिस्सा विजय चोर को दे दिया। यह बात भद्रा को जैसे ही ज्ञात हुई वह अत्यन्त कुपित हो गई।

धन्य सार्थवाह को बन्दीगृह से मुक्त कर दिया गया। सभी ने उसका आदर सत्कार किया परन्तु भद्रा खिन्न मन से उसे देखती रही अर्थात् वह पति का न आदर कर सकी और न सत्कार। यह रहस्य धन्य सार्थवाह को ज्ञात हुआ तो उसने कहा कि मैंने जो कुछ भी किया धर्म समझ कर, तप जान कर, उपकार भाव रखकर

एवं सहचर बनकर ही किया। इसके बिना मैं क्या कर सकता था। इस पर वह प्रसन्न हुई और प्रायश्चित्त कर अपने कार्य में लग गयी।

बुरे कर्म का फल बुरा होता है। अर्थात् जैसी करनी होती है वैसा ही फल व्यक्ति को मिलता है। विजय चोर को अधमगति प्राप्त होती है और धन्य सार्थवाह अपने जीवन को धन्य करता हुआ जिनशासन में रत हो जाता है। उसी के परिणाम स्वरूप वह निर्ग्रन्थ प्रवचन में रुचि करता है और स्वर्ग को प्राप्त होता है।

प्रस्तुत अध्ययन में मनोभाव को विशेष रूप से दर्शाया गया है जो व्यक्ति संकल्पशील होता है वह निश्चय ही ज्ञान, दर्शन और चारित्र मार्ग की ओर अग्रसर होता है। ऐसा व्यक्ति ही उपकारी का उपकार करता है और एक-दूसरे में रक्षा भाव को भी उत्पन्न करता है। कर्म परिणाम कृत कार्यों से ही होता है।

३. अडंक

तृतीय अध्ययन में श्रद्धा और अश्रद्धा के परिणाम को व्यक्त किया गया है। चम्पानगरी में सुभूमिबाग नामक बगीचा था जो सभी ऋतुओं के पुष्प एवं फूलों से सम्पन्न एवं रमणीय रहता था। उसी के वन भाग में एक मयूरी रहती थी जो समय समय पर अण्डों का प्रसव करती थी। चम्पानगरी में दो सार्थवाह पुत्र प्रीतिपूर्वक रहते थे। उसी नगरी में देवदत्ता नामक गणिका भी निवास करती थी। उसके साथ सार्थवाह पुत्र बगीचे में आते थे और सुखपूर्वक गणिका के साथ विचरण करते थे। देवदत्ता गणिका और दोनों सार्थवाह पुत्र विचरण करते हुये मालुकाकच्छ में गये। वहाँ वृक्ष की डाली पर स्थित मयूरी के अण्डों को देखा। उन्हें देखकर वे दोनों अपने क्रीड़ा करने योग्य जानकर उन्हें घर ले आये।

सागरदत्त का पुत्र मयूरी के अण्डे को देखा और देखकर शंकित हा गया कि यह अण्डा निपजेगा कि नहीं? उसके फल की आकांक्षा करने लगा कि कब इससे अभीष्ट फल की प्राप्ति होगी? इन सब विचारों से युक्त मयूरी के अण्डों को वह हिलाने-चलाने लगा। तब उसे वह अण्डा खोखला दिखाई पड़ा। वह खिन्न हो गया, सोचने लगा कि मेरे खेलने का प्रयोजन ही निष्फल हो गया।

उधर जिनदत्त नामक सार्थवाह पुत्र अण्डे को बढ़ते हुए देखकर प्रसन्न होता है और मयूर संरक्षकों को बुलवाता है। मयूरी के अण्डे फूट पड़ते हैं, चूजे बड़े होते हैं तब वह उन्हें नृत्यकला में प्रवीण कराता है। जब वह कला में प्रवीण हो जाता है तो जिनदत्त अत्यन्त प्रसन्न होता है। चम्पानगरी में उस मयूर शिशु की

प्रसिद्धि होती है।

प्रस्तुत अध्ययन में श्रद्धा और विश्वास की जीत होती है। अश्रद्धा और अविश्वास परास्त होता है। जो व्रती साधना में लीन होकर तत्त्व श्रद्धान करते हैं वे नाना प्रकार की कलाओं में निपुण हो जाते हैं और वही तप, संयम आदि के मार्ग पर चलते हुये जीव रक्षा में सहायक बनते हैं। अश्रद्धालु संसार के चक्र में फंसकर दुःख ही भोगते हैं।

४. कूर्म

चतुर्थ अध्ययन में दो कछुओं और दो शृगालों के परिणामों का सुन्दर विवेचन है। कथाकार ने वाराणसी नगरी के वैभव को व्यक्त करने के पश्चात् गंगा नदी के मृतगंगातीर नामक तालाब के सौन्दर्य का अत्यन्त ही रमणीय विवेचन किया है। वाराणसी नगर का यह तालाब कमल-कमलिनियों से परिपूर्ण तथा जलचर जीवों से युक्त था।

मृतगंगातीर का एक बड़ा भाग मालुकाकच्छ था। उस कच्छ में दो पापी शृगाल रहते थे। वे दिन में छिपे रहते थे और रात्रि को मांस की इच्छा से बाहर निकलते थे। एक दिन वे दोनों पापी शृगाल मृतगंगातीर के किनारे आए। वहाँ आहार की खोज करने लगे तभी उनकी दृष्टि दो कूर्मकों पर पड़ी। कूर्मकों की दृष्टि भी शृगालों पर पड़ी। वे दोनों डर गए। भागने में असमर्थ किनारों पर ही शरीर में हाथ, पैर और गर्दन को छिपाकर निश्चल, निस्पंद एवं मौन पूर्वक पड़े रहे। दोनों पापी शृगाल शीघ्रता से वहाँ आए उन्होंने कछुओं को इधर उधर घुमाया, पलटा, चलाया, नाखूनों एवं दाँतों से घायल करना चाहा पर वे घायल नहीं हुए। दोनों ही शृगाल थके हुए मालुकाकच्छ की ओर चले गए।

शृगाल चालाक होते हैं। यह जगत प्रसिद्ध है। उन दोनों कछुओं में से एक यह बोध नहीं कर पाया कि शृगाल चालाक होते हैं। उसने सबसे पहले अपने छिपे हुए अंग में से पैर को बाहर निकाला। शृगालों की दृष्टि उसी ओर थी। उन्होंने तत्परता से उस कछुए के पैर को नाखूनों से जकड़ लिया और दाँतों से तोड़कर उसे खा लिया। इसके बाद उसको फिर इधर-उधर पलटा। एक के बाद एक पैर एवं ग्रीवा आदि को उन्होंने छिन्न-भिन्न करके खा लिया।

दूसरा कछुआ निश्चल पड़ा रहा उसे निर्जीव जानकर पापी शृगाल मृतगंगातीर से चले गए। उन्हें बहुत दूर गया हुआ जानकर दूसरे कछुए ने अपनी ग्रीवा को बाहर निकाला, इधर-उधर देखा फिर क्रमशः हाथ-पैर निकालकर शीघ्र गति से तालाब के अन्दर की ओर चला गया। इस तरह वह अपने प्राणों की रक्षा कर सका।

कथा में प्रतीकात्मक अभिव्यंजना है। संसार में पापियों की कोई कमी नहीं। शृगाल दो थे इसलिए दो ही पापियों का उल्लेख किया गया है। कछुए के शरीर की बनावट ऐसी होती है कि उसकी पीठ पर बन्दूक की गोली भी लग जाए तो भी कुछ नहीं होता। दूसरी बात यह भी है कि कछुए शरीर को सुरक्षित रखने में अत्यन्त निपुण होते हैं। दोनों ने निपुणता दिखलायी भी।

कथाकार ने निपुण व्यक्ति को भी कभी-कभी त्रुटि करते हुए देखा होगा इसलिए उसने एक कछुए को इस तरह प्रस्तुत किया कि वह सर्वस्व समाप्त हो गया और दूसरे की इस तरह प्रस्तुत किया कि उससे जीवन की वास्तविकता का बोध होता है।

जो व्यक्ति पूर्णता को चाहता है वह संयत होता है और जो व्यक्ति पूर्णता को जानकर उसकी उपेक्षा करता है वह असंयत होता है। जो साधक या व्यक्ति नियम लेकर इन्द्रिय निग्रह करते हैं वे संयत कछुए की तरह अपने जीवन को सुरक्षित करते हैं और जो इन्द्रियों के प्रति उदासीन रहते हैं वे जीवन को नष्ट कर देते हैं। संयत रहना जीवन का मंगलकार्य है और असंयत रहना संसार का कारण है।

५. शैलक

पंचम अध्ययन में थावच्चापुत्र, शुक परिव्राजक एवं शैलक मुनि का वर्णन है। द्वारका नामक नगरी थी। उस नगरी में थावच्चा नामक एक सम्पन्न महिला रहती थी। उसके थावच्चापुत्र नाम का इकलौता पुत्र था। एक समय द्वारका नगरी में तीर्थंकर अरिष्टनेमि का आगमन हुआ। थावच्चापुत्र भी भगवान के दर्शनार्थ वहाँ पहुँचा। वहाँ धर्म को सुनकर उसके हृदय में वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ। माता ने बहुत समझाया किन्तु उसके न मानने पर माता ने उसे दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति प्रदान कर दी।

द्वारका नगरी के राजा वासुदेव कृष्ण थे। जब थावच्चापुत्र की माता श्री कृष्ण से अपने पुत्र की दीक्षा हेतु उसके लिए छत्र, मुकुट और चामर लेने के लिए जाती है तो स्वयं कृष्ण उसकी दीक्षा सत्कार करने को कहते हैं। परन्तु वे थावच्चापुत्र की परीक्षा हेतु उसके घर पर जाते हैं। थावच्चापुत्र परीक्षा में सफल होता है। भगवान् अरिष्टनेमि की अनुमति प्राप्त कर थावच्चापुत्र एक हजार अणगारों के साथ चारित्र्य मार्ग की ओर अग्रसर होता है।

शैलकपुर नामक नगर में शैलक नाम का राजा था। उसकी रानी कलावती

थी और उनका पुत्र मंडुक था। शैलक के पाँच सौ मंत्री थे। जो शासन का संचालन करते थे। उसने श्रावक के व्रतों को ग्रहण कर लिया।

उसी समय शुक नामक परिव्राजक का आगमन हुआ। शुक की धर्मदेशना सुनकर कई श्रावक सांख्यमत में रुचि रखने लगे। सुदर्शन नामक व्यक्ति भी परिव्राजक धर्म की ओर अग्रसर हुआ।

थावच्चापुत्र का अणगार रूप में उसी नगर में आगमन हुआ जहाँ सुदर्शन भी शौच धर्म को महत्त्व दे रहा था। थावच्चा एवं सुदर्शन का आपस में विवाद होता है। थावच्चा मिथ्यादर्शन का निषेध करता है और उपदेश देता है कि जो व्यक्ति जीव, अजीव आदि तत्त्वों पर श्रद्धान करता है वह सच्चे धर्म का उपासक होता है।

शुक परिव्राजक पुनः उस नगरी में आता है जहाँ उसका सच्चा श्रावक सुदर्शन भी रहता था। उसने उस शुक परिव्राजक को सम्मान नहीं दिया। यह सब उसे ज्ञात हुआ तो वह भी थावच्चा के समीप आया और बोध प्राप्त करके मुनि पद धारण कर लिया। शैलक राजा भी मुनि पद पर प्रतिष्ठित होकर धर्मध्यान करने लगे परन्तु कर्मयोग से शैलक रोग से पीड़ित हो गये। चिकित्सकों को बुलाया गया उन्होंने मद्यपान आदि अभक्ष सेवन को कहा और वे उसमें आसक्त हो गये। शैलक को छोड़कर अन्य साधु धर्ममार्ग पर चलते रहे परन्तु शैलक नहीं। पुनः राजा शैलक को बोध प्राप्त हुआ और परिव्राजक मत एवं अभक्ष भक्षण छोड़कर संयममार्ग की ओर लग गये।

संसार में जो व्यक्ति जन्म लेता है वह संसार की मोह माया से नहीं बच सकता। उसे नाना प्रकार के मत-मतान्तर का भी सामना करना पड़ता है परन्तु जो श्रमण या साध्वी, श्रावक या श्राविका सच्चे धर्म के स्वरूप को समझकर तत्त्व श्रद्धान करते हैं वे मुक्तिपद को प्राप्त करते हैं। शैलक अध्ययन में मूलतः शिथिलाचार पर विवेचन किया गया है जो व्यक्ति अपने मार्ग से विचलित हो जाता है वह मद्यपान जैसे निन्दनीय कार्य में भी लग जाता है, परन्तु जो व्यक्ति धर्म के प्रति आस्थावान होता है वह कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी धर्म चेतना को प्राप्त कर लेता है।

६. तुम्बक

छठा अध्ययन गुरुता और लघुता के विषय को प्रतिपादित करता है। यथार्थ में तुम्बक कड़ुवी होती है। वह सूखकर हल्की हो जाती है। व्यक्ति सूखे हुए तुम्बक

का सहारा लेकर गहरे जल से भी पार हो जाता है। तुम्बक की लघुता ही पार करने में समर्थ होती है।

कथाकार ने तुम्बक को आत्मा का प्रतीक माना है। वह शुद्ध, निर्मल, पवित्र एवं उर्ध्वगमन स्वभाव वाली होती है। परन्तु वही आत्मा बाह्य राग, द्वेष, मोह आदि आवरणों से आवृत होकर गुरुता को प्राप्त होती है। जिस तरह तुम्बक मिट्टी के आठ लेपों से भारी होकर पानी में जाते ही नीचे की ओर चली जाती है। उसी तरह आत्मा भी राग, द्वेष आदि मिट्टी के लेपों से लिप्त होकर नीचे की ओर चली जाती है।

जीव की दशा ऐसी ही है जो तुम्बक की भाँति मिट्टी के लेप से लिप्त होकर नीचे की ओर चला जाता है परन्तु जैसे-जैसे वह बोध प्राप्त करता है वैसे-वैसे कर्मों से हटकर अपने स्वभाव को प्राप्त हो जाता है।

७. रोहिणी ज्ञात

सप्तम अध्ययन में राजगृह नगर का वर्णन है। उस नगर में धन्य नामक सार्थवाह रहता था। वह पूर्ण समृद्धशाली था। उसकी पत्नी का नाम भार्या था। उसके चार पुत्र थे धनपाल, धनदेव, धनगोप एवं धनरक्षिता। उन चारों की पत्नियों के नाम इस प्रकार थे- उज्जिका, भोगवती, रक्षिका और रोहिणी।

एक बार धन्य सार्थवाह ने अपने सभी स्वजनों, मित्रों आदि के समक्ष अपनी पुत्रवधुओं की परीक्षा लेने की सोची। इस तरह सोचकर धन्य सार्थवाह ने चारों पुत्रवधुओं को पाँच चावल के दाने दिए यह कह कर कि जब मैं तुमसे यह चावल के दाने माँगू, तुम मुझे लौटा देना। वह यह ज्ञात करना चाहता था कि कौन पुत्रवधु किस प्रकार उनके द्वारा दिये गये चावल की रक्षा करती है, सार सम्भाल करती है या बढ़ाती है?

पहली पुत्रवधु उज्जिका ने उन पाँच चावल के दानों को कचरों में फेंक दिए, ऐसा सोचकर कि जब ससुर जी ये दाने माँगेंगे तो कोठार में जो चावल का ढेर पड़ा है उसमें से दे दूंगी।

दूसरी पुत्रवधु भोगवती उन चावल के दानों को खा गई तथा तीसरी पुत्रवधु रक्षिका ने सोचा कि सबके सामने ये पाँच चावल के दाने हमें दिए हैं इसका कोई न कोई कारण होना चाहिए ऐसा सोचकर उसने इन दानों को एक डिबिया में बन्द करके उसकी सार सम्भाल करने लगी।

चौथी पुत्रवधु रोहिणी ने सोचा मैं इन चावल के दानों का संरक्षण, संगोपन करूँ और इनकी वृद्धि करूँ। इस हेतु पीहर के कुछ व्यक्तियों को बुलाकर उन्हें आवश्यक निर्देश देकर वे पाँच चावल के दाने दे दिए।

पाँच वर्ष पश्चात् धन्य सार्थवाह ने वापिस सभी स्वजनों व मित्रों को बुलाया। उन्हीं के सम्मुख चारों पुत्रवधुओं से एक-एक करके वे चावल के दाने माँगे।

पहली ने उन्हें कचरों में फेंक दिए तो धन्य सार्थवाह ने उसे घर में साफ सफाई रखने का कार्य सौंपा। दूसरी पुत्रवधु उज्झिका वे दाने खाई थी इसलिए धन्य सार्थवाह ने उसे भोजनशाला सम्बन्धी जो-जो कार्य होते हैं वो सौंपे। तीसरी रक्षिका ने उन दानों को डिबिया में रखकर पाँच वर्ष तक समय-समय पर उसे सम्भालती रही अतएव उसे अर्थव्यवस्था की सुरक्षा हेतु नियुक्त किया। जब चौथी पुत्रवधु रोहिणी से वे पाँच दाने माँगे गए तो उसने कहा उनको लाने के लिए मुझे बहुत से वाहन की आवश्यकता पड़ेगी। वे खेत में बोये गये हैं। धन्य सार्थवाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसे गृहस्वामिनी का पद दिया।

इस कथा में रोहिणी का जीवन ज्ञातिजनों सम्बंधियों, परिजनों, स्वजनों आदि के सामने विशेष योग्यता का सूचक बनकर आता है जो ईस बात की साक्ष्य प्रस्तुत करता है कि इस जगत में जो कुछ भी लिया जाए उसे विधिवत लेकर ऋण एवं ब्याज सहित चुकाना चाहिए तभी व्यक्ति की महानता है और इसी से उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

मूलतः इस अध्ययन में चार बहुएं संसार के चार गुणों को व्यक्त करती हैं। जो संसार में रहता है उसे परिवार के साथ भी मधुर सम्बन्ध रखने होते हैं। उन मधुर सम्बन्धों की जानकारी गुणों के कारण ही प्राप्त होती है। यथा—

- (१) श्रुत वचन सुनकर उन पर ध्यान नहीं देना यह उपेक्षित भावना का सूचक है। इसलिए कथाकार ने उज्झिका नाम दिया।
- (२) श्रुत श्रवण कर जो जीवन में उतारता है तथा उसका उपयोग नहीं करता है वह भोगवती है अर्थात् भोगवादी दृष्टिकोण वाला है।
- (३) जो श्रुत श्रवण करके जीवन में उतारता है और उतारने के बाद उसकी सुरक्षा करता है वह रक्षक दृष्टिकोण वाला है।
- (४) जो श्रुत श्रवण करके जीवन में उतारता है सुरक्षित करता है और उसे प्रचार एवं प्रसार के माध्यम से जन-जन में रोपित-प्रतिपादित करता है

वह सभी तरह से योग्य समझा जाता है।

इन चार प्रकार के विचार वाले व्यक्ति इस जगत में होते हैं। पाँच धान्य एक ओर जहाँ अक्षय निधि का उदबोध कराते हैं वहीं दूसरी ओर पाँच महाव्रतों का भी बोध कराते हैं जिस तरह से धान्य अक्षय होने पर ही अंकुरित होते हैं वृद्धि को प्राप्त होते हैं और फल देते हैं उसी तरह साधक द्वारा ग्रहण किए गए पंचमहाव्रत अक्षय अर्थात् सम्पूर्ण सुरक्षा के भावों से युक्त होते हैं। महाव्रतों में किंचित भी दोष आने पर साधक परम पद को प्राप्त करने की अपेक्षा उसके दुष्प्रभाव से अधोगति को भी प्राप्त हो सकता है। इसलिए ग्रहण किए गए व्रतों की पूर्ण सुरक्षा आवश्यक है।

८. मल्ली

आठवाँ अध्ययन महाविदेह क्षेत्र से प्रारम्भ होता है। महाविदेह क्षेत्र के वीतशोका के राजा का नाम बल था। धर्मदेशना सुनकर उन्होंने मुनिधर्म स्वीकार कर लिया था।

उनके पुत्र का नाम महाबल था। उसके छह राजा परम मित्र थे। उन्होंने निश्चय किया था कि सुख में, दुःख में विदेश यात्रा में तथा दीक्षा में सभी अवसरों पर हम एक-दूसरे के साथ ही रहेंगे।

धर्मबल स्थविर की धर्मदेशना सुनकर महाबल में वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसने दीक्षित होने की बात छहों मित्रों को बताई। छहों मित्रों ने भी महाबल के साथ दीक्षित होने का संकल्प किया। दीक्षित होने के पश्चात् सातों अनगारों ने एक ही प्रकार की तपस्या करने की सोची। परन्तु महाबल अपने मित्रों से छिपाकर, कपट करके अधिक तप करते थे। इसके परिणाम स्वरूप छह मुनियों को तो न्यून बत्तीस सागरोपम की आयु प्राप्त हुई तथा महाबल मुनि को पूर्ण बत्तीस सागरोपम की स्थिति प्राप्त हुई। साथ ही सभी को तीर्थकर नामकर्म का बन्ध हुआ।

छहों मुनि अलग-अलग राजकुलों में राजकुमारों के रूप में उत्पन्न हुए तथा महाबल का मिथिला के राजा कुंभ की रानी प्रभावती की कोख से कन्या रूप में जन्म हुआ। तीर्थकर का जन्म पुरुष रूप में होता है परन्तु मल्ली कुमारी का जन्म स्त्री रूप में होना जैन इतिहास में आश्चर्यजनक एवं अद्भुत घटना है।

मल्ली कुमारी के जीव के प्रति पूर्व जन्म के साथी का जो अनुराग था वह अलग-अलग निमित्त पाकर जागृत हो गया और वे छहों राजकुमार मल्ली से विवाह करने के लिए मिथिला आ गए।

मल्ली कुमारी ने अवधिज्ञान के साथ जन्म लिया था। इस कारण वह यह जान गई थी कि छहों राजकुमार उस पर आसक्त हो गए हैं। उसने प्रतिकार की भी तैयारी कर ली।

मल्ली कुमारी ने अपने जैसी एक प्रतिमा बनवाई। वह प्रतिमा ऐसी लगती थी मानो स्वयं मल्ली कुमारी ही हो। वह प्रतिमा खोखली बनायी गयी और उसके मस्तक पर एक छेद किया गया। रोजाना उस छेद में कुछ भोजन डालकर फिर ढक्कन बन्द कर दिया जाता था जिससे वह भोजन प्रतिमा में जाकर सड़ता रहे। तत्पश्चात् मल्ली ने अपनी उस हमशकल प्रतिमा को एक खुले स्थान पर रखवा दिया और चारों ओर कमरों का निर्माण करवा दिया। इन गृहों में बैठने वाला प्रतिमा को स्पष्ट रूप से देख सकता था परन्तु अगल-बगल के कमरे में बैठनेवाले एक-दूसरे को नहीं देख सकते थे।

छहों राजा एक साथ मिथिला पहुंचकर अपने-अपने दूतों द्वारा मल्ली की मांग करने लगे। इस पर क्रोधित मिथिला नरेश ने सभी दूतों को अपमानित कर राजसभा से निकाल दिया। अपने दूतों के अपमान से अपमानित सभी राजाओं ने मिथिला पर आक्रमण कर दिया। कुम्भ राजा भी इस अन्याय के प्रतिकार हेतु सेना सहित तैयार हो गये। छः राज्यों की सेना के समक्ष कुम्भ राजा कब तक टिकते। उन्होंने परास्त होकर नगरी में प्रवेश कर द्वार बंद करवा दिया। छहों राजा भी मिथिला को घेर कर बैठ गये। इधर मल्ली प्रातः पिता के दर्शनार्थ उपस्थित हुई और पिता द्वारा उचित आदर सत्कार नहीं प्राप्त कर पूछा- हे पिताजी! आज आप दुःखी एवं चिन्तित क्यों हैं? पिता ने उपरोक्त सभी वृत्तान्त कह सुनाये तब मल्ली ने कहा- इसमें चिन्ता की बात नहीं है। सभी राजाओं को सन्ध्याकाल में महल में अलग-अलग द्वार से बुलाकर कन्या देने की सूचना भिजवा दीजिए, पुत्री की बुद्धि पर विश्वस्त होकर राजा कुम्भ ने सभी राजाओं को दूतों द्वारा अलग-अलग द्वारों से बुलाकर उस मूर्ति रूपी मल्ली के चारों ओर निर्मित कमरों में बिठाया। मूर्ति को साक्षात् मल्ली समझकर सभी राजा लालायित हो रहे थे। उसी समय मल्ली ने वहाँ आकर ढक्कन हटा दिया। सभी राजाओं की उस मूर्ति से निकली दुर्गन्ध से स्थिति नाजुक होने लगी तब मल्ली ने सबको शरीर की नश्वरता का उपदेश देकर विरक्त किया एवं सभी को दीक्षा हेतु प्रेरित कर स्वयं भी दीक्षित होने की इच्छा प्रकट की। सभी ने इसका अनुमोदन किया। मल्ली ने वर्षादान देकर सामायिक चारित्र ग्रहण किया। कुछ समय पश्चात् उन छहों राजाओं ने भी संयम अंगीकार कर लिया और मल्ली भगवान की सेवा में विचरण करने लगे। अन्त में सभी निर्वाण को प्राप्त हुए।

यह दिव्य साधना के गुणों को चित्रित करने वाला अध्ययन है जो नारी मल्लिकी की तरह उत्कृष्ट तप करती है वह निश्चित ही संसार से जन्म, जरा और मरण जैसे दुःखों को नष्ट करके मुक्ति पथ की अनुगामिनी बनती है।

९. माकन्दी

नवें अध्ययन में 'एगे जिए, जिया पंच' अर्थात् एक आत्मा पर विजय प्राप्त करने पर शेष पाँचों इन्द्रियों को आसानी से जीता जा सकता है। इसमें यही उपदेश प्रतिपादित है। चम्पा नगरी में माकन्दी सार्थवाह एवं भद्रा भार्या के दो पुत्र जिग्पालित एवं जिनरक्षित थे। युवावस्था में दोनों पुत्र व्यापार हेतु ग्यारह बार लवण समुद्र की यात्रा करने के पश्चात् बारहवीं बार पुनः यात्रा करने के लिए रवाना हुए। सैकड़ों योजन समुद्र में चलने के पश्चात् समुद्री तूफान में सभी जहाज नष्ट हो गए। किसी तरह दोनों सार्थपुत्र लकड़ी के पट्टे के सहारे रत्नद्वीप पर पहुँचे। उस द्वीप पर एक अति पापिनी भयंकर देवी का निवास था। अवधिज्ञान से उस देवी ने जब दोनों पुत्रों को देखा तो समीप आकर उन्हें अपने साथ भोग भोगने का निमन्त्रण दिया। उसकी आज्ञा को शिरोधार्य कर दोनों पुत्र विपुल भोग भोगने लगे। एक बार लवण समुद्र के अधिपति देव द्वारा इस देवी को समुद्र की सफाई हेतु नियुक्त किया गया। देवी ने कार्य पर जाने के पूर्व दोनों सार्थवाह पुत्रों को दक्षिण दिशा में जाने का निषेध करते हुए अन्य सभी दिशाओं में आमोद-प्रमोद करने का आदेश दिया।

मानव स्वभाव है कि जिस चीज का निषेध होता है व्यक्ति उसी ओर जाने को उत्सुक होता है। इसी प्रवृत्ति के वशीभूत होकर कुछ समय पश्चात् वे दोनों उत्सुकतावश दक्षिण दिशा में पहुँचे। कुछ दूरी पर उन्हें एक करुण क्रन्दन करते हुए एवं सूली पर चढ़े हुए पुरुष से भेंट हुई। उसने बताया कि इसी देवी ने मुझे ग्रहण कर विपुल भोग भोगने हेतु साथ रखा एवं एक छोटे से अपराध के लिये मुझे यह दण्ड दिया है।

सार्थपुत्रों ने जब उसकी असह्य वेदनापूर्ण घटनाक्रम को सुना तो उनका हृदय अनिष्ट की आशंका से भयभीत हो गया। घबराकर उन्होंने उस पुरुष से वहाँ से निकलने का उपाय पूछा। वृद्ध पुरुष ने कहा पूर्व दिशा की ओर एक अश्वधारी शैलक नाम का यक्ष रहता है। वह यक्ष विशिष्ट तिथियों को निश्चित समय पर किसे तारूँ किसे पालूँ यह घोषणा करता है। दोनों भाई शीघ्रता से पूर्व दिशा में जाकर उस यक्ष से तारने व पालने का अनुनय-विनय करने लगे।

शैलक ने एक शर्त के साथ उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया कि लवण

समुद्र से जब मैं तुम्हें ले जा रहा होऊं तब उस देवी द्वारा अनेक प्रलोभन दिए जाने पर भी तुम विचलित नहीं होओगे तो मैं तुम्हें सुरक्षित स्थल पर पहुंचा दूंगा।

दोनों शैलक के पीठ पर आरूढ़ होकर लवण समुद्र से जब जा रहे थे तब अवधिज्ञान से जानकर देवी ने तीव्र गति से इनका पीछा करते हुए अनेक प्रलोभनों और करुणाजनक शब्दों का प्रयोग किया।

जिनपालित तो उस विलाप से अविचल रहा परन्तु जिनरक्षित के मन में उस देवी के प्रति मोह जाग उठा। शर्त के अनुसार यक्ष ने जिनरक्षित को अपनी पीठ से गिरा दिया और जिनपालित को सुरक्षित चम्पानगरी पहुंचा दिया। जिनपालित अपने घर में प्रवेशकर माता-पिता से मिला एवं सम्पूर्ण घटनाक्रम को सुनाया।

कुछ समय पश्चात् जिनपालित ने चम्पानगरी में भगवान महावीर के आगमन पर उनसे प्रतिबोधित हो संयम ग्रहण किया और एक मास का अनशन कर देवरूप में उत्पन्न हुआ।

माकन्दी में वनखण्ड के बचाने का जो भाव है वह आधुनिक पर्यावरण की अपूर्व शिक्षा देता है। इसी अध्ययन में मनुष्य की मानसिक स्थिति का जो बोध कराया गया है वह भी मानसिक प्रदूषण, वाचिक प्रदूषण एवं शारीरिक प्रदूषण की दशाओं को व्यक्त करता है। जो व्यक्ति इन तीनों से प्रदूषित होता है वह कहीं भी किसी भी तरह से बच नहीं पाता है। उसकी विकल्प युक्त क्रियाएं उसे इस पार से उस पार ले जाने में भी समर्थ नहीं होती हैं। परन्तु जो व्यक्ति आज्ञा, वचन और निर्देश का पालन करके कार्य करता है वह उपद्रवों से रहित होकर विचरण करता है। कर्मयोग से अशुभ वर्गणा कभी-कभी प्रभावशाली बन जाती है पर उसका प्रभाव क्षणिक असाता उत्पन्न करके पुनः साताकर्म की ओर ले जाता है। चिन्तनशील व्यक्ति तिरता है, विकल्पयुक्त सहारा पाकर भी बेसहारा हो जाता है, यही इस अध्ययन का मूल उद्देश्य है।

१०. चन्द्र

दशम अध्ययन में कथाकार ने जीवों के विकास और पतन को चन्द्रमा के दृष्टान्त द्वारा प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार चन्द्रमा कृष्णपक्ष में अत्यन्त काला होता है उसी तरह व्यक्ति के विचार अत्यन्त प्रदूषित होते हैं। विचार प्रदूषित होने से क्षमा, शील, संयम, तप, ज्ञान, ध्यान, ब्रह्मचर्य आदि के योग में उसकी प्रवृत्ति नहीं होती।

परन्तु इसके विपरीत जो व्यक्ति शुक्ल पक्ष के चन्द्र की तरह है वह कान्ति, प्रभा, सौम्यता, क्षमा, दया, करुणा, तप, संयम आदि के भावों से युक्त निरन्तर पूर्णता को प्राप्त करता है। यदि वह इनको धारण करता है तो वह दूज के चाँद से लेकर क्रमशः पूर्णिमा के चाँद की तरह पूर्ण बनकर समग्र कलाओं से इस आभामण्डल को मण्डित करता है।

यह चन्द्र अध्ययन आध्यात्मिक गुणों के विकास की यात्रा का विवेचन करता है तथा यह बताता है कि आध्यात्मिक गुणों के विकास के लिए चन्द्रमा की भाँति सद्गुरु का समागम करना चाहिए जिससे चारित्र की वृद्धि हो सके।

११. दावद्रव

ग्यारहवें अध्ययन में कथाकार ने कथा न प्रस्तुत करके दृष्टान्त शैली के माध्यम से आराधक और विराधक के गुणों का विवेचन किया है। दावद्रव नामक एक वृक्ष है जो कृष्ण वर्ण का है उसके पत्ते, फल आदि अत्यन्त रमणीय हैं। यह समुद्र के किनारे होता है। यह वृक्ष पत्ते, फल आदि से रहित होकर भी खड़ा रहता है। वह वायु के प्रचण्ड वेगों को भी सहन करता है फिर भी उसका कुछ नहीं बिगड़ता है। इसी तरह जो व्यक्ति सम्यक् प्रकार से गुणों की आराधना करते हैं वे उपसर्गों में भी स्थिर रहते हैं, परन्तु जो किंचित् भी व्रत के विराधक होते हैं वे किसी भी प्रकार से स्थिर नहीं रह सकते हैं।

१२. उदक

बारहवें अध्ययन में बताया गया है कि ज्ञानी पुरुष की दृष्टि तलस्पर्शी होती है, वह वस्तु के बाह्य एवं आन्तरिक दोनों ही दृष्टियों पर विचार करता है।

चम्पानगरी में जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था। वह जिनमत का जानकार नहीं था। उसके मंत्री का नाम सुबुद्धि था जो जीव-अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता था।

एक बार जितशत्रु नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साथ भोजन कर रहा था, उस भोजन की जितशत्रु ने बहुत प्रशंसा की। उसके साथ-साथ अन्य सार्थवाहों ने भी प्रशंसा की, परन्तु मंत्री सुबुद्धि बिल्कुल चुप रहा। राजा के दो-तीन बार पूछने पर उसने जवाब दिया कि पुद्गलों के परिणामन अनेक प्रकार के होते हैं कभी अशुभ पुद्गल शुभ एवं कभी शुभ पुद्गल अशुभ रूप में परिणमित होते हैं। अतः इस स्वादिष्ट भोजन में विस्मय एवं प्रशंसा रूप कुछ भी नहीं है। राजा को यह बात बुरी तो लगी पर वक्त के हिसाब से चुप रहा।

एक दिन राजा जितशत्रु एवं मंत्री सुबुद्धि घूमने शहर के बाहर निकले। नगर के बाहर एक गन्दे पानी की बड़ी खाई थी। राजा ने उस खाई की दुर्गन्ध से नाक बंद कर लिया और उस बदबुदार पानी का वर्णन करने लगे, परन्तु सुबुद्धि इस बार भी वस्तु के स्वरूप के संबंध में कहा तो राजा ने कहा कि सुबुद्धि! तुम्हारा कथन असत्य है, तुम दुराग्रह एवं वैमनस्यता के शिकार हो। सुबुद्धि ने राजा को सन्मार्ग पर लाने का निश्चय किया। एक दिन उसने उसी खाई का पानी मंगाकर विशिष्ट विधियों द्वारा ४९ दिनों में अत्यन्त शुद्ध एवं स्वादिष्ट बनाया और उसे राजा के पास भेजा।

राजा को पानी बहुत स्वादिष्ट लगा पूछने पर मंत्री ने कहा कि राजन् ये वही खाई का पानी है जिसको देखकर आपने नाक बंद कर दी थी।

जब राजा ने स्वयं उस विधि से उस पानी को बनाकर देखा तो सुबुद्धि की मति पर विश्वास हो गया। तत्पश्चात् राजा मंत्री से जिनवाणी श्रवण कर श्रमणोपासक बन गया।

यह अध्ययन सत्य और असत्य, इष्ट और अनिष्ट इन दो तथ्यों पर प्रकाश डालता है। साथ ही अणुव्रती को निर्देशित करते हुये कहता है कि जो व्यक्ति श्रावक के गुणों को स्वीकार कर लेता है उसका अंतरंग जीवन पूरी तरह परिवर्तित हो जाता है।

१३. दर्दुरज्ञात

तेरहवें अध्ययन में आसक्ति को अधःपतन का कारण माना गया है। एक बार भगवान महावीर राजगृह पधारे। वहाँ दर्दुरावतंसक नामक विमान में दर्दुर नामक देव अपने परिवार सहित आये और सूर्याभदेव के समान नाट्यविधि दिखलाकर चले गये। ऐसा देखकर गौतम ने महावीर भगवान से पूछा कि दर्दुरदेव ने वह नृत्य देवऋद्धि कैसे प्राप्त की तथा किस प्रकार उसके समक्ष आई? इस पर भगवान महावीर ने उन्हें सारा वृत्तान्त सुनाया।

राजगृह नामक नगर में गुणशील नामक चैत्य था। वहाँ के राजा का नाम श्रेणिक था। वहाँ पर नन्द नामक मणियार रहता था। जब मैं राजगृह गया तो नन्दमणियार भी मेरे दर्शनार्थ गुणशील चैत्य में आया। वहाँ उसने धर्म को सुना और श्रावक धर्म को स्वीकार कर लिया।

एक बार ग्रीष्म ऋतु में उसने पौषधशाला में अष्टम भक्त की तपश्चर्या की। इस दौरान वह भूख व प्यास से व्याकुल हो गया और सोचने लगा कि उसे पौषध

अवस्था में नहीं होना चाहिए था। उसने एक बावड़ी व बगीचा आदि बनाने का सोचा और अगले दिन पौषध पूर्ण कर राजा श्रेणिक के पास गया। उनकी अनुमति प्राप्त कर उसने एक सुन्दर बावड़ी बनवाई, बगीचे लगवाए, चित्रशाला, भोजनशाला, चिकित्साशाला तथा अलंकारशाला का निर्माण करवाया। बहुत से व्यक्ति इन सबका उपयोग करने लगे तथा सभी नन्द मणियार की प्रशंसा करने लगे। लोगों के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर नन्द बहुत खुश होने लगा। नन्द को उस बावड़ी के प्रति बहुत आसक्ति हो गई थी।

कुछ समय पश्चात् नन्द मणियार के शरीर में सोलह प्रकार के रोग उत्पन्न हो गए। उसने यह घोषणा करवा दी कि जो उसके एक रोग को भी शान्त कर देगा वह उसे विपुल धन-सम्पत्ति देगा। अनेक वैद्य, चिकित्सक आदि आए एवं नानाविध औषधियों का प्रयोग किया परन्तु सभी उपाय निरर्थक सिद्ध हुए। कोई भी उनका रोग उपशान्त नहीं कर सका। कालान्तर में नन्द अत्यन्त दुःखित होकर बावड़ी में आसक्ति के कारण मरकर उसी बावड़ी में मेढ़क के रूप में उत्पन्न हुआ।

नन्द के मरणोपरान्त उस बावड़ी पर स्नान करने वाले बार-बार नन्द की प्रशंसा करते थे। बार-बार नन्द की प्रशंसा सुनकर उस मेढ़क को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया और अपने अज्ञान एवं व्रतों की स्वलना हेतु पश्चात्ताप करने लगा। उसने पुनः उन पूर्व भव के व्रतों को पालना प्रारम्भ कर दिया।

एक दिन राजगृह में भगवान महावीर का पर्दापण हुआ। यह सुनकर मेढ़क भी महावीर के दर्शन हेतु उत्कृष्ट भावों को लेकर बावड़ी से निकलकर समवसरण में जाने लगा। परन्तु रास्ते में श्रेणिक राजा जो अपने दल सहित महावीर के दर्शनार्थ जा रहे थे उनके एक अश्व के पैरों के नीचे आने से कुचल गया। अब मृत्यु निश्चित है जानकर उसने प्रत्याख्यान किया और मृत्योपरान्त देवयोनि को प्राप्त हुआ।

शास्त्र में उल्लेख है कि वह वहाँ से आयुष्य पूर्ण कर मुक्त अवस्था को प्राप्त हुआ। मूलतः इसमें जलचर जीव के संरक्षण की बात कही गयी है। दर्दुर अर्थात् मेढ़क जल में रहता है उसकी सीमा जल तक ही होती है परन्तु वह जलचर जीव भी पुण्य भोग से धर्म के प्रति आस्थावान हो जाता है जिसके फलस्वरूप वह भक्तिगुण से युक्त हो महावीर के समवसरण की ओर जाता है, रास्ते में प्राणान्त हो जाता है। इसमें तिर्यन्व के उत्कृष्ट विचारों की बात कही गयी है। साथ ही आसक्ति को पतन का कारण बताते हुए यह समझाया गया है कि सद्गुरु के समागम से आत्मिक गुणों की वृद्धि होती है। इसलिए आर्तध्यान और रौद्रध्यान से रहित धर्मध्यान

तथा शुक्लध्यान पूर्वक ग्रहण किए हुए व्रतों का पालन करना चाहिए।

इस अध्ययन में विविध प्रकार के वृक्षों से वनखण्ड के रमणीय दृश्यों को भी प्रस्तुत किया गया है और आर्त परिणामों के कारण उत्पन्न होने वाले श्वास, कास-खांसी, ज्वर, दाहजलन, कुक्षि-शूल, कूरव का शूल, भगंदर, अर्श-बवासीर, अजीर्ण, नेत्रशूल, मस्तकशूल, भोजन विषयक अरुचि, नेत्रवेदना, कर्णवेदना, कंडू-खाज, दकोदर-जलोदर और कोढ़^१ रोगों का विवेचन इस बात की प्रामाणिकता को सिद्ध करता है कि जो व्यक्ति जन सेवा, दया, दान, परोपकार आदि से रहित आर्त परिणामों वाला होता है वह इसी भव में विविध रोगों को निमंत्रण देता है।

इसी क्रम में चिकित्सा पद्धति, शास्त्रकोष आदि के वैशिष्ट्य को प्रतिपादित किया गया है। रोग का उपसंहनन कैसे हो इसकी समीक्षा भी की गयी है, अतः यह अध्ययन जहाँ जलचर जीव के संरक्षण को महत्त्व देता है वहीं पर मनुष्य के रोगों की शिक्षा एवं उपचार पर भी प्रकाश डालता है।

१४. तेतलिपुत्र

चौदहवें अध्ययन में तेतलिपुत्र का जीवन वृत्तान्त उल्लेखित है। तेतलिपुर के राजा नाम कनकरथ था व उसके मंत्री का नाम तेतलिपुत्र था। तेतलिपुर में ही एक स्वर्णकार रहता था जिसकी पुत्री पोट्टिला थी। तेतलिपुत्र उसी देखकर उस पर अनुरक्त हो गया एवं पत्नी के रूप में उसकी मांग की। स्वर्णकार ने भी सहमति दर्शायी एवं शुभ अवसर पर दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ।

कुछ समय तक तो दोनों में बहुत प्रेम, स्नेह बना रहा परन्तु किसी कारण से तेतलिपुत्र को पोट्टिला से नफरत हो गयी और वह उससे बोलना बन्द कर दिया। पोट्टिला बहुत दुःखी एवं उदास रहने लगी तो एक दिन तेतलिपुत्र ने उससे कहा- तुम मेरी भोजनशाला से अतिथियों, श्रमणों, गरीबों को दान देती हुई निश्चिंतता से रहो ताकि तुम्हारा समय आराम से बीते। वह तेतलिपुत्र के निर्देश का पालन करती हुई स्वस्थ रहने लगी।

एक दिन पोट्टिला की दानशाला में सुव्रता नामक आर्या अपने शिष्या समुदाय के साथ उपस्थित हुईं। पोट्टिला ने उन्हें स्नेह आदर से दान देने के उपरान्त अपनी व्यथा कही कि पूर्व में मुझे पति का सुख प्राप्त था अब नहीं। कृपा कर मुझे अपने पति का सुख पुनः प्राप्त करने का कोई उपाय बताइये।

१. सासे कासे जोर दाहे, कुच्छिसूले भगंदरे अरिसा अजीरए दिडि- मुद्धसूले अगारए अच्छिवेयणा कन्नवेयणा कंडू दउदरे कोठे। ज्ञाताधर्मकथांग १३/२१, गाथा १.

साध्वियों ने कहा हम ब्रह्मचारिणी साध्वियाँ हैं। हमारे लिए तो यह सुनना भी निषिद्ध है। हम तो धार्मिक क्रिया-कलापों में संलग्न रहते हैं। तुम भी चाहों तो धर्म श्रवण कर सकती हो।

पोट्टिला के मन में भी उपरोक्त बातें सुनकर धार्मिक भावों का उदय हुआ और उसने तत्क्षण श्राविका धर्म स्वीकार कर लिया। इससे उसके मन में शान्ति की अनुभूति हुई और मन में धार्मिक आस्था बढ़ने लगी। एक दिन उसने तेतलिपुत्र से कहा मुझे संयममार्ग में जाने की आज्ञा प्रदान करें। तेतलिपुत्र ने कहा यदि तुम देवरूप में उत्पन्न होकर मुझे प्रतिबोधित करने का वचन दो तो मैं दीक्षा हेतु अनुमति देता हूँ।

पोट्टिला देव रूप में तेतलिपुत्र को प्रतिबोधित करने की प्रतिज्ञा लेकर दीक्षित हो गयी। शुद्ध संयम का पालन कर वह आयुष्य पूर्ण कर देवता के रूप में उत्पन्न हुई।

इसी बीच राजा कनकरथ की मृत्यु हो गयी। राजा कनकरथ अपने पुत्रों को कहीं राज्य हथिया न लें यह सोचकर सभी पुत्रों को विकलांग कर देता था। चूँकि मंत्री तेतलिपुत्र था अतः सभी परिजन एवं नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति उसके पास आये और राजलक्ष्णों से युक्त किसी विश्वासपात्र कुमार को राजा बनाने हेतु आग्रह किया। इस पर तेतलिपुत्र ने एक पूर्व रहस्य पर पर्दा उठाते हुए कहा कि मैंने राजा कनकरथ एवं रानी पद्मावती के एक पुत्र का गुप्त रूप से पालन-पोषण किया है। उस कनकध्वज का आप राज्याभिषेक करें। सभी ने मंत्री की बात को सम्मान देते हुए कनकध्वज का राज्याभिषेक किया।

रानी पद्मावती ने अपने पुत्र को बुलाकर तेतलिपुत्र का सदैव आदर, सम्मान, सत्कार करने की प्रतिज्ञा करवायी। राजा तेतलिपुत्र का बहुत सम्मान करने लगा।

इधर-पोट्टिलदेव ने प्रतिज्ञा के अनुरूप तेतलिपुत्र को प्रतिबोधित करने के अनेक प्रयत्न किये परन्तु वे सफल नहीं हुये, कारण कि राजा द्वारा उसे अत्यन्त सम्मान प्राप्त हो रहा था। तब देव ने राजा को तेतलिपुत्र के विरुद्ध कर दिया। राजा एवं परिवारजनों द्वारा अपमानित तेतलिपुत्र ने अनेक उपयोग द्वारा आत्महत्या करने का प्रयत्न किया परन्तु देव लीला के कारण वह सफल नहीं हो सका। इस अवसर पर देव द्वारा प्रतिबोधित हुआ और उसे जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हो गया।

कालान्तर में संयम अंगीकार कर देहत्याग किया और देवरूप में उत्पन्न हुआ।

मूलतः इस अध्ययन का उद्देश्य पाँच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत आदि श्रावकों के बारह व्रतों का वर्णन करके संयम साधन का निरूपण करना है।

१५. नन्दीफल

पन्द्रहवें अध्ययन में इन्द्रियों से सावधान रहने की शिक्षा दी गई है। चम्पानगरी में धन्य सार्थवाह नामक व्यापारी रहता था। एक बार उसने व्यापार हेतु अहिच्छत्रा जाने का निश्चय किया तथा उसने नगर में यह घोषणा करवायी कि जो-जो व्यापार हेतु अहिच्छत्रा जाना चाहे वह मेरे साथ चले। उसकी सभी आवश्यकता पूर्ति में करूँगा, व्यापार हेतु पैसा दूँगा एवं हर संभव सहायता करूँगा।

रास्ते में आने वाले कष्टों, उपसर्गों, परिस्थितियों को सामने रखकर तदनुसार व्यवस्था कर धन्य सार्थवाह अपने सहयोगियों के साथ खाना होकर एक विशाल अटवी में रात्रि विश्राम हेतु रुका। उस अटवी में वृक्ष के फल विषैले थे एवं आवागमन नहीं था। धन्यसार्थ ने उन फलों को देखते ही किसी से फल न खाने की चेतावनी दे दी। परन्तु कुछ ऐसे भी थे जो उन दूर से मनोहर दृष्टिगत होने वाले फलों को खाने का लोभ संवरण नहीं कर सके और मृत्यु को प्राप्त हो गये। जो बच्चे वे सकुशल अपने घर लौटे।

यह अध्ययन नन्दीफल के वृक्षों के संरक्षण पर विशेष बल देता है। नन्दीफल नामक वृक्ष विष वृक्ष के रूप में प्रसिद्ध है। जो व्यक्ति इसका मूल कन्द, छाल, पत्र, पुष्प, फल आदि खाता है या इसकी छाया में ठहरता है वह अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है। यह संकेत इस बात को सिद्ध करता है कि वृक्षों की कई प्रकार की प्रजातियाँ होती थीं उनमें कुछ विषवृक्ष भी होते थे। जिस तरह विषवृक्ष के पत्तों के भक्षण से जीवन दुःखमय बन जाता है उसी तरह इष्ट मनोगत भावों को न छोड़नेवाला व्यक्ति दुःखी होता है।

१६. अमरकंका

सोलहवें अध्ययन में साधारण लाभ से दारुण कर्मों के बंध का वर्णन है। महासती द्रौपदी के पूर्व भव से इस अध्ययन का प्रारम्भ होता है। चम्पानगरी में नागश्री नामक एक ब्राह्मणी रहती थी। एक बार नागश्री ने अपने परिवार के लिए तुम्बे का शाक बनाया। चखने पर ज्ञात हुआ कि वह अत्यन्त विषाक्त है। पारिवारिक उपालम्भ से बचने के लिए उसने उस सब्जी को छिपाकर दूसरी सब्जी बना दी। इसी बीच धर्मरुचि नामक अणुगार एक माह की तपस्या के बाद पारणे के निमित्त नागश्री ब्राह्मणी के घर आए। महाकपट एवं नागश्री नाम को सार्थक करनेवाली उस

दुष्टा ने उस ऋड़वे तुम्बेवाले विषाक्त शाक को उस महातपस्वी मुनिराज को बहरा दिया।

धर्मरुचि अनगार उस शाक को गुरुचरणों में ले गये एवं पारणे की अनुमति माँगी। गुरु उसकी गन्ध से ही समझ गये कि यह विषयुक्त हो गया है। उन्होंने उसे जमीन में दफन करने/गाड़ देने का निर्देश दिया। धर्मरुचि गुरु आज्ञा के पालनार्थ एकान्त में गये और वहाँ एक बूंद जमीन पर डालकर प्रतिक्रिया देखने लगे। सब्जी की सुगन्ध से सैकड़ों चीटियाँ आकर्षित होकर आयीं और उसको चखते ही मृत्यु को प्राप्त हो गयीं। यह हृदय विदारक दृश्य मुनि के कोमल हृदय को दहला गया। उन्होंने सोचा इस शाक को पटकने से सैकड़ों जीवों की हत्या हो जायेगी अतः अच्छा यही है कि मैं इसे अपने ही पेट में डाल दूँ यह सोचकर मुनि ने वह आहार स्वयं कर लिया और शांत भाव से समाधि को प्राप्त हो गये।

प्रसिद्ध उक्ति है कि 'पाप छिपाये ना छिपे।' नागश्री के पाप की चर्चा नगर भर में फैल गयी। परिवारजनों ने नागश्री को घर से निष्कासित कर दिया। सोलह रोगों से आक्रान्त हो वह नरक में उत्पन्न हुई। लम्बे जन्म-मरण के पश्चात् पुनः वह एक सेठ के घर में सुकुमालिका नाम से कन्या के रूप में उत्पन्न हुई। पाप फिर भी उसके पीछे पड़े रहे। वह किसी के स्पर्श के योग्य नहीं रही, क्योंकि उसका शरीर अत्यन्त तीक्ष्ण एवं अग्नि के समान गर्म रहता था। विवाहोपरान्त पति द्वारा त्याग दी गयी। पुनः उसका दूसरा विवाह एक भिखारी से करवाया गया, उसे अपार संपत्ति प्रदान की गयी, परन्तु प्रथम रात्रि को ही भिखारी उसे छोड़कर भाग गया।

पुत्री के भाग्य एवं पूर्व में बंधे कर्मों के फल को देखकर सेठ ने उसे एक दानशाला खुलवाकर प्रतिदिन दान देने को कहा। सुकुमालिका प्रतिदिन अतिथियों, श्रमणों आदि को दान देने लगी।

एक दिन कुछ साध्वियों का उस दानशाला में आगमन हुआ। सुकुमालिका ने पोट्टिला की तरह पति हेतु याचना की। साध्वियों ने धर्मतत्त्व बताया और उसे धर्ममार्ग पर आरूढ़ कराया।

मगर पूर्वजनित कर्मों से उसका मन साफ नहीं हुआ। वह आर्थिका बनने के बाद भी स्वच्छन्द भ्रमण करती हुई शिथिलाचारिणी हो गयी। एक दिन उसने एक वेश्या को पांच पुरुषों के साथ क्रीड़ा करते हुए देखा। सभी पुरुष उस वेश्या की सेवा-सुश्रुषा कर रहे थे। उसी वक्त सुखभोग की लालसा से वशीभूत होकर वह संकल्प कर बैठी कि अगर मेरी तपस्या में फल हो तो मैं भी इसी प्रकार पाँच

पतियों का सुख प्राप्त करूं।

कालान्तर में एक-दो जन्मों के बाद पांचाल नरेश के यहाँ कन्या के रूप में द्रौपदी नाम से उसका जन्म हुआ। उचित वय एवं स्वयंवर में उसने अर्जुन आदि पाँच पाण्डवों का चयन किया। द्रौपदी पाण्डवों के साथ हस्तिनापुर में विपुल सुख भोगने लगी।

एक बार नारद जी भ्रमण करते हुए हस्तिनापुर पहुंचे। द्रौपदी के सिवाय सभी ने उनका आदर सत्कार किया। नारद इस पर कुपित होकर अमरकंका में राजा पद्मनाभ के पास पहुंचे एवं द्रौपदी के लावण्य की प्रशंसा की। पद्मनाभ राजा ने प्रेरित होकर देवी की सहायता से द्रौपदी का अपहरण करवा दिया। पद्मनाथ ने द्रौपदी को भोग हेतु निमंत्रित किया जिस पर द्रौपदी ने ६ माह का समय मांगा। इसी बीच पाण्डव श्रीकृष्ण को लेकर अमरकंका पहुंचे। पद्मनाभ को युद्ध में परास्त किया और द्रौपदी का उद्धार किया।

कुछ समय उपरान्त द्रौपदी के पाण्डुसेन नामक पुत्रोत्पन्न हुआ। पाण्डुसेन के युवा होने पर पाण्डवों ने उसे राज्य देकर दीक्षा अंगीकार कर ली। द्रौपदी ने भी पति का अनुसरण किया और अन्त में स्वर्ग को प्राप्त हुई।

इस अध्ययन में मुख्य रूप से निम्न तथ्यों को प्रकाशित किया गया है-

१. इसमें ब्राह्मणों की उचित शिक्षा का समावेश है जो ब्राह्मण होता था वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों का ज्ञाता होता था।
२. तत्कालीन समाज की नारियाँ समस्त कलाओं में प्रवीण होती थीं। नागश्री, रूपश्री, यक्षश्री, सुकुमारिका, द्रौपदी आदि इसी बात का संकेत करती हैं।
३. नारी में सदाचार, शील, संयम की प्रबलता है।
४. धर्मरुचि मुनि की जीवों के प्रति आस्था प्रशंसनीय है।
५. शीलरक्षा एवं समर्पण का भाव समाहित है।
६. गृहीतव्रतों का संरक्षण एवं संवर्धन की भावना से संवृद्ध है।

द्रौपदी के इस अध्ययन में नारी के विविध रूपों का वर्णन है। प्रायः सभी नारियाँ ब्रह्मरक्षिका हैं। वे शिथिलाचार से परे उत्कृष्ट जीवन को अपनाना चाहती हैं।

१७. आकीर्ण

सत्रहवें अध्ययन में उत्तम जाति के अश्वों के माध्यम से विषयों और इन्द्रियों के वश में नहीं रहनेवालों का वर्णन किया गया है।

हस्तशीर्ष नगर के व्यापारी जहाजों से विदेशों में व्यापार निमित्त जाते रहते थे। एक बार समुद्री तूफान में पड़कर वे कालिक द्वीप पर पहुंच गये वहाँ अपार स्वर्ण-चांदी लेकर पुनः लौट आए। वहीं पर उत्तम अश्वों को देखा जिसकी चर्चा कनककेतु के समक्ष अद्भुत एवं आश्चर्यजनक वस्तु के रूप में की गई है।

राजा ने उन व्यापारियों को पुनः उस द्वीप पर जाकर उन घोड़ों को लाने का आदेश दिया। व्यापारियों ने वहाँ जाकर विभिन्न विषय लोलुप सामग्री बिखेरकर अनेक अश्वों को पकड़ लिया। जो उस लोभ में नहीं पड़े वे बच गये।

सारांश रूप में कहा गया है कि जो विषयों में लिप्त होते हैं वे पराधीन बनते हैं एवं शेष स्वाधीन बने रहते हैं। “पराधीन सपनेहुँ सुख नहीं।”

जैन आगमों में दृष्टान्तों की बहुलता है। यहाँ पर भी कथाकार ने ताड़वृक्ष, सारसपक्षी, चक्रवाक, हंसपक्षी एवं विविध प्रकार के अश्वों को प्रस्तुत करके अनेक माध्यमों से यह सिद्ध किया है कि विषय-लोलुपता ही बन्धन का कारण है और विषयों से विमुक्ति विशुद्ध परिणामों का सूचक है।

१८ सुंसुमा

अट्टारहवें अध्ययन में संसार की असारता को प्रतिपादित किया गया है। सुंसुमा एक छोटी बालिका है जिसका लालन-पालन बड़े प्यार से किया जाता है। उस बालिका को एक चिलात अत्यन्त श्रद्धा के साथ खेलाया करता था परन्तु वह अत्यन्त नटखट, दुष्ट एवं उदण्ड था। इसी कारण उसे घर से बाहर निकाल दिया गया। फलतः वह चिलातपुत्र इस कारण स्वच्छन्द प्रवृत्ति वाला हो गया। वह दुर्व्यसनों से युक्त जीवन व्यतीत करने लगा। अचानक उसे सिंह गुफा में चोरों के सरदार से मिलन हो गया। चिलात चोर पल्ली में साथ रहता हुआ साहसी, निर्भीक एवं चौर्यकला में प्रवीण हो गया। चोर पल्ली के सरदार विजय की मृत्यु होने के पश्चात् स्वयं चोरों का सेनापति बन गया।

चिलातपुत्र के मन में प्रतिशोध की भावना स्थित थी। इसलिए उसने धन्य सार्थवाह के घर को लूट लिया और सुंसुमा का अपहरण कर भागने लगा, चोरों के साथ भागता हुआ अंग नगर रक्षकों के द्वारा चिलातपुत्र देखा गया।

नगर रक्षकों ने निरन्तर पीछा करके चिलातीपुत्र को पकड़ लिया। धन सम्पत्ति देकर उसने नगर रक्षकों से पिण्ड छुड़ाया और सुंसुमा को लेकर भागने लगा। नगर रक्षक धन लेकर वापस लौट गये परन्तु पुत्री मोह से धन्य सेठ अपने पुत्रों सहित उसका पीछा करता रहा। कोई उपाय नहीं देख चिलातपुत्र ने सुंसुमा का गला काट दिया और धड़ को वही छोड़ भाग गया परन्तु उस भयानक अटवी में वह भी भूख-प्यास से मर गया।

इधर धन्य सेठ एवं पुत्रों ने मृत सुंसुमा को देखकर बहुत विलाप किया। कुछ देर बाद उन्हें भयंकर भूख-प्यास का अनुभव हुआ। जोश-जोश में इतनी दूर आ गये की कहीं भी पानी व भोजन का नामोनिशान तक नहीं मिला। प्राणों का संकट उपस्थित हो गया।

तब धन्य सार्थवाह ने किंचित विचार कर कहा-तुम मेरा वध कर मेरे मांस से अपनी भूख एवं रक्त से प्यास बुझालो और सकुशल राजगृह पहुंचो। परन्तु पुत्रों ने इसे स्वीकार नहीं किया। सभी ने अपने लिए यह प्रस्ताव रखे परन्तु तब यह हुआ कि मृत सुंसुमा के शरीर से भूख प्यास बुझाकर राजगृह पहुंचा जाय। यही करके सभी यथासमय राजगृह पहुंचे एवं कालान्तर में प्रव्रज्या अंगीकार की।

शास्त्रकार कहते हैं कि धन्य सेठ ने सुंसुमा के शरीर का उपयोग भोजन रूप या किसी शरीरपोषण या रस हेतु न करके सिर्फ राजगृह पहुंचने हेतु किया उसी तरह मुनि आहार आसक्ति या शरीर के लिए न करके लक्ष्य तक पहुंचने के लिए करता है। शास्त्र इसे अनासक्ति का सर्वोच्च उदाहरण मानता है।

१९. पुण्डरीक

उन्नीसवें अध्ययन में संसार की असारता एवं उतार-चढ़ाव का बताया गया है। पुण्डरीकिणी नगर में राजा महापद्म के पुण्डरीक एवं कण्डरीक ये दो पुत्र थे। एक बार धर्मघोष मुनि के उपदेश से प्रभावित होकर महापद्म पुण्डरीक को राज्य देकर दीक्षित हो गये। कालान्तर में किसी स्थविर मुनियों के आगमन से कण्डरीक भी दीक्षित हो गये। देश-देशान्तर भ्रमण एवं रुखा-सूखा आहार करने से कण्डरीक रोगाक्रान्त हो गये। भ्रमण करते हुए जब वे पुनः पुण्डरीकिणी नगर में आये तो संसारी भाई ने सेवा सुश्रुषा करके उन्हें पुनः स्वस्थ किया। परन्तु सेवा सुश्रुषा से कण्डरीक सुविधा भोगी होकर वहीं रहने लगे। पुण्डरीक के कहने पर लज्जावश विहार तो कर गये और कुछ दिन बाद राजप्रासाद की वाटिका में आ गये। मोह एवं संसार में आसक्ति देखकर पुण्डरीक ने उन्हें राज्य सौंप दिया और स्वयं उनका

वेश धारण कर साधु बन गये। पुण्डरीक ने प्रतिज्ञा की कि स्थविर मुनिराज के दर्शन के उपरान्त ही आहार- पानी ग्रहण करूंगा।

कण्डरीक अपने पथ से भटकने के कारण सातवीं नरक में उत्पन्न हुआ एवं पुंडरीक सर्वोच्च देवगति को प्राप्त हुआ। उत्थान एवं पतन का यह सर्वोच्च उदाहरण है।

इस प्रकार प्रथम श्रुतस्कन्ध के १९ अध्ययन आध्यात्म के सार पर बल देते हैं। इन अध्यायों में विविध दृष्टान्तों द्वारा अहिंसा, सत्य, इन्द्रिय विजय, कर्मपरिणति, पंच महाव्रत, तीन गुप्ति, पंच समिति, सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, मुक्तिसाधना, वैराग्य, के कारण, राग से विराग आदि आध्यात्मिक तत्त्वों का अत्यन्त ही सरल शैली में वर्णन किया गया है। कथा वस्तु की वर्णन शैली अत्यन्त रोचक एवं उत्साहवर्धक है।

ऐतिहासिक दृष्टि भी इसमें समाहित पर्याप्त चिन्तन भी प्राप्त होते हैं। इसकी शैली, रचना-प्रक्रिया कला प्रेमियों के लिए रस प्रदान करने वाली है तथा आधुनिक कहानीकारों के लिए जीवन निर्माण के प्रेरणायुक्त तत्त्वों को समायोजित करने वाली है।

द्वितीय श्रुतस्कन्ध

ज्ञाताधर्मकथा के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में दस वर्ग हैं। इन अध्ययनों का विस्तृत विवरण नहीं दिया गया है। केवल सभी के नाम, पूर्वभव के नाम, उनके माता-पिता, नगर आदि का उल्लेख करके शेष वृत्तान्त पिछले वर्ग के अनुसार जानो, ऐसा विवेचन कर दिया गया है। यथा—

प्रथम वर्ग में चमरेन्द्र की अग्रमहिषियों का वर्णन है।

द्वितीय वर्ग में वैरोचरेन्द्र की अग्रमहिषियों का वर्णन है।

तृतीय वर्ग में दक्षिण दिशा के नौ भवनवासी देवों की अग्रमहिषियों का वर्णन है।

चतुर्थ वर्ग में उत्तर दिशा के इन्द्रों की अग्रमहिषियों का वर्णन है।

पंचमवर्ग में दक्षिण दिशा के वाणव्यंतर देवों की अग्रमहिषियों का वर्णन है।

षष्ठ वर्ग में उत्तर दिशा के वाणव्यंतर देवों की अग्रमहिषियों का वर्णन है।

सप्तम वर्ग में ज्योतिष-केन्द्र देवों की अग्रमहिषियों का वर्णन है।

अष्टम वर्ग में सूर्य और इन्द्र की अग्रमहिषियों का वर्णन है।

नवम वर्ग एवं दसम वर्ग में वैमानिक निकाय के सौधर्म एवं ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियों का वर्णन है।

इन सबका वर्णन इनके पूर्वभव के रूप में है जिसमें ये महिला रूप में उत्पन्न हुईं, दीक्षा अंगीकार की, परन्तु चारित्र से च्युत हो गयी और अंतिम समय में दोषी की आलोचना किये बिना ही मरण को प्राप्त हो गयीं।

ये सभी पुनः मनुष्य भव प्राप्त कर सिद्ध बुद्ध एवं मुक्त होंगी।

इस प्रकार द्वितीय श्रुतस्कन्ध में जो दस वर्ग हैं उनसे साधक की भूमिका का बोध होता है क्योंकि साधक की श्रेणियाँ अर्थात् वर्ग महाव्रतों के कारण ही विभाजित किए जाते हैं। इसलिए द्वितीय श्रुतस्कन्ध में काली नामक एक देवी थी जो केवल कल्प प्राप्त करके अवधिज्ञान को प्राप्त हुई थी। काली के इस विवेचन से महाव्रती के लिए यह शिक्षा दी गयी है कि व्यक्ति महाव्रतों का पालन करके विधिवत कर्मों का क्षय कर सकता है और उसी से निर्वाण प्राप्त हो सकता है। इसी तरह रजनी, विद्युत, मेघा आदि के प्रसंग से धर्म के स्वरूप को प्रतिपादित किया गया है।

इसके द्वितीय वर्ग में सूंभा, निसुंभा, रम्भा, निरम्भा और मदना की सांसारिक नाट्य क्रियाओं से यह शिक्षा दी गयी है कि जो व्यक्ति आत्म-कल्याण करना चाहते हैं वे उपासना को सर्वोपरि बनायें। इसी के तृतीय वर्ग में नय और निक्षेप का संकेत करके तत्त्वज्ञान का बोध कराया गया है। चतुर्थ वर्ग से सिद्धि प्राप्ति का हल बतलाया गया है। पंचम वर्ग में बत्तीस देवियों के नामों का उल्लेख दिव्य कन्याओं के रूप में किया गया है, अतः जो व्यक्ति दिव्य होना चाहता है वह दिव्य गुणों का ध्यान करे तभी दिव्य बन सकता है। इसी तरह के छठे, सप्तम, अष्टम, नवम और दशम वर्ग में यही कथन किया गया है कि जो दुःख का अन्त करता है वह सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होता है।



पञ्चम अध्याय

ज्ञाताधर्मकथांग का साहित्यिक अध्ययन

‘साहित्य’ शब्द सहित-यत् इन दो शब्दों के योग से निर्मित है। ‘सहित’ शब्द में ‘यत्’ प्रत्यय लगने पर साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति होती है। जिसका अर्थ शब्द एवं अर्थ का सहभाव होना है। दूसरे शब्दों में जो गद्य या पद्य जीवन और सत्य में से किसी एक रूप का यथार्थ एवं प्रतिबोधित सजीव चित्रण करता है वह ‘साहित्य’ है। ज्ञाताधर्मकथा जैन कथा साहित्य का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। कथा मानव जीवन के सत्य एवं सौंदर्य को प्रकट करती है। कथा के द्वारा ग्रन्थ में आर्कषण उत्पन्न होता है एवं यथार्थ बोध संहज गम्य हो जाता है। कथा के साहित्यिक स्वरूप को—

१. कथानक, २. चरित्रचित्रण, ३. कथोपकथन, ४. देशकाल, ५. भाषा-शैली एवं
६. उद्देश्य इन छः भागों में बांटा जा सकता है। ज्ञाताधर्मकथांग में उपलब्धता की दृष्टि से इनका विवेचन निम्न प्रकार है—

१. कथानक

कथानक ‘कथ’ धातु से बना है। इसका अर्थ है ‘जो कुछ कहा जाए’ या ‘कथा का छोटा रूप’ या ‘सारांश’। साहित्य में कार्य-व्यापार की योजना को भी कथानक कहते हैं। सभी कथाओं को कथानक नहीं कहा जा सकता। इन दोनों में अन्तर यह है कि कथा में घटनाओं की प्रमुखता रहती है जिसमें श्रोता या पाठक यह जानने को उत्सुक रहता है कि ‘हाँ फिर आगे क्या हुआ?’ और कथानक में कार्यकारण सम्बन्ध मुख्य होता है। इसमें श्रोता या पाठक यह जिज्ञासा करता है ‘यह कैसे और क्यों हुआ?’ कथानक का आधार कहानी है और कहानी में घटनाओं का संकलन होता है। ज्ञाताधर्मकथा में राजा, नायक, मंत्री, राजपुरुष, नेता, पशु-पक्षी आदि कथानकों को लेकर कथा लिखी गई है, अतः उसके आधार पर हम कथानकों को निम्न रूप में विभाजित कर सकते हैं—

- | | |
|---------------|------------------|
| १. सामाजिक | २. ऐतिहासिक |
| ३. राजनीतिक | ४. मनोवैज्ञानिक |
| ५. यथार्थवादी | ६. अतियथार्थवादी |

- | | |
|------------------------------|---------------------------|
| ७. प्रकृतिवादी | ८. मनोविश्लेषणात्मक |
| ९. आंचलिक | १०. सर्वकल्याणकारी |
| ११. रोमांचकारी | १२. ग्रामीण समस्या प्रधान |
| १३. मध्यवर्गीय चित्रण प्रधान | १४. वर्ग संघर्ष युक्त |
| १५. क्रांतिकारी | १६. आध्यात्मिक |
| १७. धार्मिक | १८. पारिवारिक |
| १९. संवेदनात्मक | |

कथानक की योजना

कथानक की सुन्दर आयोजना में कलाकार अपने अनुमान द्वारा यह निश्चय कर लेता है कि कौन-सी बात किस सीमा तक लिखनी है तथा किसका संकेत मात्र करके छोड़ना है। ऐसी मान्यता है कि कथानक में पाठकों की कल्पना के लिए जितनी अधिक सामग्री छोड़ दी जाए वह कथानक उतना ही रोचक एवं सफल होता है।

कथानक के गुण

कथानक का मुख्य गुण जिज्ञासा है। कथानक में जिज्ञासा की तृप्ति होने पर पाठक की मेधा और स्मरण शक्ति बढ़ जाती है। ज्ञाताधर्मकथा के कथानकों में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक जिज्ञासा बनी रहती है, जब तक श्रोता या पाठक उसके पूर्ण विवरण को सुन या पढ़ नहीं लेता तब तक उसके अभिप्राय को नहीं समझ पाता। आचार्य हेमचन्द्र ने कथानकों के गुणों का विभाजन निम्न तरह से किया है—

१. उपाख्यान— कथा-प्रबन्ध के बीच दूसरों को समझाने के लिए कही गई लघु कथाएँ उपाख्यान हैं।

२. आख्यानक— जो दूसरों को प्रबोधि करने के लिए किसी ग्रंथिक के द्वारा किसी सभा में पढ़ा गया या अभिनय किया गया हो।

३. निदर्शन— जिसमें पशु-पक्षियों या अन्य जीवधारियों की चेष्टाओं और आचरणों से कार्य-अकार्य का निश्चय किया जाता हो।

४. प्रवाहिका— कथा को लेकर जहाँ दो व्यक्तियों में विवादादि अर्द्धप्राकृत भाषा में प्रकट किया जाता है, वह प्रवाहिका कहलाती है।

६. **मन्थल्लिका**— महाराष्ट्री प्राकृत आदि भाषाओं में उस क्षुद्र कथा को मन्थाल्लिका कहते हैं जिसमें प्रारम्भ से अन्त तक पुरोहित, अमात्य, तापस आदि का उपहास किया जाय।

६. **मणिकुल्या**— जिसमें वस्तु पहले प्रकट न होकर बाद में प्रकाशित होती है।

७. **परिकथा**— जिसमें चार पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से किसी एक को लक्ष्य करके विचित्र प्रकार के वृत्तान्तों को सुनाया जाता है।

८. **खंडकथा**— किसी प्रबन्ध के भीतर किसी प्रसिद्ध वृत्तान्त को उसके बीच से या किसी छोर से वर्णन करना खंडकथा है।

९. **सकलकथा**— जिसमें प्रारम्भ से लेकर फल प्राप्ति के अन्त तक पूरे चरित्र का यथातथ्य वर्णन होता है वह सकलकथा है।

१०. **उपकथा**— जिसमें किसी चरित्र के अंग का आश्रय ग्रहण कर दूसरी कथा कही जाती है वह उपकथा है।

११. **बृहत्कथा**— किसी महत्वपूर्ण विषय को लेकर अद्भुत कार्य की सिद्धि का वर्णन करनेवाली पैशाची प्राकृत भाषा से युक्त कथा बृहत्कथा है।

कथानक के भेद

कथानक (कथावस्तु) के दो भेद हैं—

१. सामान्य २. गुम्फित

सामान्य कथानक में एक कथा होती है। सहायक कथाओं का इसमें अभाव होता है। गुम्फित कथानक में दो या दो से अधिक कथाएँ होती हैं। प्रधान कथा को अधिकारिक कथा कहते हैं और सहायक कथाओं को प्रासंगिक कथा कहते हैं।

कथानक की रीतियाँ

१. वर्णनात्मक शैली, २. आध्यात्मिक शैली, ३. डायरी शैली, ४. प्रतीकात्मक शैली, ५. भावात्मक शैली, ६. बोधात्मक शैली।

उक्त रीतियों का कथन आधुनिक दृष्टि से किया गया है। डॉ० मन्खनलाल शर्मा ने कथानक की रीतियों में वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक और डायरी शैली का विवेचन किया है।^१ परन्तु ज्ञाताधर्मकथांग में कथानक की रीतियों को डायरी शैली एवं

१. शर्मा मन्खनलाल, हिन्दी उपन्यास, सिद्धान्त और समीक्षा.

पात्रात्मक शैली के रूप में स्थान नहीं दिया जा सकता है। उसे वर्णनात्मक, प्रतीकात्मक, भावात्मक, बोधात्मक, चित्रात्मक और उपदेशात्मक रूप में रखा जा सकता है। ज्ञाताधर्मकथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को आधार बनाकर विकास को प्राप्त हुयी है। इसमें एक कथा नहीं, अपितु विविध कथाएँ हैं जिनका काव्य-भेद की दृष्टि से धर्मकथा के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस कथाग्रन्थ के कथाकार ने उपदेश को महत्त्वपूर्ण बनाया है और ये सभी उपदेश कथा के स्वरूप को लिए हुए समाज की संवेदनशीलता से जुड़े हुए हैं। इसलिए ज्ञाताधर्मकथा में धर्मतत्त्व की प्रधानता के साथ-साथ दृष्टान्तों की भी भरमार है। इस दृष्टि से इसके साहित्यिक स्वरूप को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है . .

१. वर्णन प्रधान कथानक

ज्ञाताधर्मकथांग के प्रथम अध्ययन उत्कृष्टजात का प्रारम्भ आर्य जम्बूस्वामी की जिज्ञासा एवं आर्य सुधर्मास्वामी के समाधान से होता है। इसमें अभयकुमार, धारिणी देवी, श्रेणिक राजा आदि का वैभवपूर्ण जीवन एवं उनके कृत कार्यों आदि का सामान्य विवेचन है। इसके मूल कथानकों के साथ राजा श्रेणिक के पुत्र का जो विवेचन किया गया है उसमें आदर्श जीवन का वर्णन है। मेघकुमार के तीन भवों का वर्णन कथात्मक स्वरूप को लिए हुए है। इसमें कथाकार ने मेघकुमार के द्वारा प्राप्त की गई ७२ कलाओं^१ और उनके कलाशिक्षक का भी उल्लेख किया है। सामान्य पात्र भी इस कथा को गति प्रदान करते हैं जिनमें कंचुकी^२ का प्रमुख स्थान है।

आधुनिक कथा में कथाकार ने ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक वातावरण के साथ-साथ संवेदनशीलता, सम्बद्धता, मौलिकता, कलाकौशल, सत्यता, अन्विति, जिज्ञासा, यथार्थता आदि का भी चित्रण किया है। ये सभी चित्रण ज्ञाताधर्म में उपलब्ध हैं—

(क) ऐतिहासिकता

महावीर, आर्य सुधर्मा, आर्य जम्बूस्वामी, अभयकुमार, मेघकुमार, अरिष्टनेमि, कृष्ण, सुदर्शन सेठ, काशीराज, अदीनशत्रु, जीतशत्रु, पद्मनाभ पाण्डवपुत्र आदि आदर्श पुरुषों एवं रोहिणी, धारिणी, थावच्चा, मल्लीकुमारी, द्रौपदी, काली, राजी, रजनी, मेघा आदि ऐतिहासिक नारियों तथा अनेक श्रावक-श्राविकाओं के उल्लेख भी हैं। इसके सोलहवें अध्ययन में द्रौपदी के कथानक के साथ-साथ पाण्डुपुत्रों, हस्तिनापुर नगरी आदि के विवेचन इसकी ऐतिहासिकता को व्यक्त करती है। इसके तृतीय,

१. ज्ञाताधर्मकथांग १/९९.

२. वही, १/१११, ११२.

चतुर्थ, दशम आदि अध्ययनों को छोड़कर अन्य सभी अध्ययन ऐतिहासिकता से परिपूर्ण हैं।

(ख) सामाजिक

समाज के प्रतिनिधि माता-पिता, पुत्र, परिजन आदि होते हैं। इन्हीं के सामाजिक कार्य, जन्म, उत्सव, संस्कार, नामकरण, शिक्षा-दीक्षा, विवाह आदि होते हैं। ज्ञाताधर्म के प्रथम अध्ययन में पूर्ण सामाजिक परिवेश देखा जा सकता है। इसमें मातृपक्ष, पितृपक्ष,^१ विवाह आदि सभी पक्षों को लिया गया है। द्वितीय अध्ययन में सन्तान प्राप्ति के लिए देवपूजा,^२ पुत्र-प्राप्ति, पुत्र संस्कार आदि महत्वपूर्ण संस्कारों को भी दिया गया है। तृतीय अध्ययन में गणिका की मनोदशा, चतुर्थ अध्ययन में अरिष्टनेमि की उपासना, आठवें में मल्ली का जन्म, पुनर्जन्म, युद्ध, तेरहवें में राजाज्ञा, चौदहवें में तेतलिपुत्र, अमात्य आदि के वर्णन समसामयिक सामाजिक स्थिति को प्रस्तुत करते हैं।

(ग) संवेदनशीलता

ज्ञाताधर्मकथा की कथाएँ किसी वर्ग विशेष या समाज से जुड़ी हुई नहीं हैं, अपितु वे कथाएँ विशाल क्षेत्र को लिए हुए मानव जीवन को प्रभावित करती हैं। तृतीय अध्ययन की अण्डककथा में मयूरों का संरक्षण मनोयोग की दशा को व्यक्त करता है। सागरदत्त का पुत्र सार्थवाह मयूरी के अण्डों को देखकर शंकित हो उठता है कि अण्डा निपजेगा कि नहीं, बालक हो जाने पर वह क्रीड़ा करेगा कि नहीं इत्यादि भाव संवेदनशीलता को व्यक्त करते हैं।^३ इसी तरह मल्ली नामक आठवें अध्ययन में मल्ली के निष्क्रमण पर अन्य राजकुमारों का दीक्षित होना इसी बात का संकेत करता है।^४

(घ) सम्बद्धता

कथानक की सफलता घटनाओं को जोड़ देने मात्र से नहीं हो जाती, अपितु कथानक को सुगठित, संतुलित एवं परस्पर में जोड़ना कथाकार का मूल लक्ष्य होता है जिससे कथा प्रभावशाली एवं कलात्मक रूप को प्राप्त होती है। ज्ञाताधर्मकथा में भी यही वस्तुस्थिति है। कथाकार जो भी कथा कहता है उसे एक-दूसरे के साथ जोड़कर रखता है। उदाहरण के लिए चौदहवें अध्ययन के तेतलिपुत्र की कथा को देखा जा सकता है, इसमें तेतलिनगर के आधार पर पुत्र का नाम तेतलि रखा गया

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १/४.

२. वही, २/१५.

३. वही, ३/१८.

४. वही, ८/१८४.

है। तेतलिपुत्र का पाणिग्रहण संस्कार पोड्डिला के साथ होता है और वे दोनों ही स्नेहपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। उसी समय साध्वी सुत्रता का समागम होता है। पोड्डिला अपने पति के द्वारा कुछ समय बाद तिरस्कृत कर दी जाती है। उसी तिरस्कृत भाव को लेकर पोड्डिला ने साध्वियों से निवेदन किया। उसके निवेदन पर उन्होंने धर्म उपदेश दिया तब वह श्राविका बन गई। इसमें एक के बाद एक अवान्तर कथाओं के माध्यम से श्राविका के गुणों का उल्लेख किया गया है। इससे यह प्रतीत होता है कि ज्ञाताधर्म की कथाएँ एक मात्र घटनाक्रम को लिए हुए ही आगे नहीं बढ़ती, अपितु निश्चित वातावरण, निश्चित उद्देश्य को अपने में समाहित किये हुये आगे बढ़ती है।

मौलिकता

ज्ञाताधर्म अनुभूतियों का कथा सागर है। इस सागर में सामान्य घटना से लेकर राज्यक्रांति, देशद्रोह, वैराग्य भाव आदि भी घटित हैं। ज्ञाताधर्म के कथांश में मानव से महामानव तक बनने की कला का समावेश हुआ है। कर्म के भेद व उसके आवरणों का वर्णन तुम्बक अध्ययन में आया है।^१ अन्य अध्ययनों में भी विचारों की विशालता देखने को मिलती है।

सत्य-दिग्दर्शन

वस्तु-सत्य और काव्य-सत्य कथानक की वास्तविकता को अधिक रोचक बनाता है। माकन्दी अध्ययन में जिनपालित एवं जिनरक्षित का बार-बार समुद्रयात्रा करना सत्य का दिग्दर्शन कराता है।^२ माता-पिता उनकी समुद्र यात्रा से परेशान थे, पर वे दोनों आज्ञा की अवहेलना करके विदेश यात्रा के लिए चले गए जिससे वे चक्रवात में फँस गए, जहाज टूट गया। यह वस्तु सत्य है। जिनपालित धार्मिक प्रवृत्ति का था। वह देवी का स्मरण करता है जिससे वह सुरक्षित स्थान को प्राप्त होता है और जिनरक्षित वासना के वशीभूत था इसलिए अपने लक्ष्य की ओर जाने में समर्थ नहीं हो पाता है। यह भी वस्तु-सत्य है परन्तु दोनों की मनोवैज्ञानिकता काव्य सत्य है।

जिज्ञासा

कथानक का सबसे महत्वपूर्ण तत्व जिज्ञासा है जो मनोरंजन के साथ जुड़ी होती है। ज्ञाताधर्मकथा में जिज्ञासा एवं कौतूहल को उत्पन्न करनेवाली कई घटनाएँ हैं। मेघकुमार, मल्ली, माकन्दीपुत्र, तेतलिपुत्र एवं द्रौपदी के प्रसंगों को पढ़ते समय

१. ज्ञाताधर्मकथांग ६/६.

२. वही, ९/५.

जिज्ञास ही बनी रहती है। द्रौपदी कौन थी, वह किसकी पुत्री थी, उसका क्या नाम था, उसका विवाह किसके साथ हुआ, कैसे हुआ, उसका अपहरण, उसकी खोज, उसका मिलन एवं उसके द्वारा दीक्षा आदि घटनाएँ जिज्ञासा ही उत्पन्न करती हैं।^१

इस प्रकार ज्ञाताधर्म के कथानक विविध प्रकार के सिद्धान्तों को गति प्रदान करते हुए मानव जीवन के विविध पक्षों को भी प्रस्तुत करते हैं। इनकी अभिव्यक्तियाँ उच्च, मार्मिक, महान, सशक्त, प्रखर, जीवन्त एवं गहराई को लिए हुए हैं, जो यथार्थता के साथ आदर्श के तत्त्व भी प्रस्तुत करने में समर्थ हैं।

चरित्र-चित्रण

कथा की घटनाएँ एवं कथा प्रसंग मानवीय, दैवीय एवं प्राणी जगत के चित्रण से चित्रित होती हैं। मानव मन कथा का प्राण होता है, जिनको लेकर घटनाओं को घटित किया जाता है। घटनाएँ पात्रों के बिना सम्भव नहीं हैं। पात्रों के चरित्र-चित्रण भिन्न-भिन्न परिस्थितियों एवं वातावरण की विशेषताओं को भी अंकित करनेवाले होते हैं। कथाकार का कर्तव्य है कि वह चरित्र के उत्कृष्ट आदर्श को प्रस्तुत करे। वह चरित्र को सजीव, निर्दोष, सदभाव और भद्र बनाए तथा अभद्र को मापदण्ड बनाकर वस्तु स्थिति का चित्रण करे। चरित्रगत भद्रता तो प्रत्येक वर्ग में पायी जाती है, इसके लिए पात्रों को किसी वर्ग विशेष से ही खोजना आवश्यक नहीं है।^२

ज्ञाताधर्म में चरित्र-चित्रण की सबसे बड़ी विशेषता यही देखने को मिलती है कि जैसा हम जीवन में देखते हैं वैसा ही पात्र बोलते हुए प्रतीत होते हैं। इससे यथार्थ में आदर्श और आदर्श में यथार्थ का समावेश हो जाता है। इससे प्रत्येक पात्र जीवन को प्रेरणा देने वाले बन जाते हैं। निराशावादी दृष्टिकोण वपित नहीं हो पाता है। इसलिए आज भी पात्रों के चरित्र-चित्रण असामाजिक बुराईयों के अन्त व निर्दोष चरित्र की प्रस्तुति में सहायक हैं।

चरित्र-चित्रण की विशेषताएँ

मौलिकता, स्वाभाविकता, अनुकूलता, सजीवता, सहृदयता, उज्वलता, प्रतीकात्मकता, गतिशीलता, मनोविज्ञान-सम्मत, वर्णनात्मकता, चरित्रहीनता, चरित्रमहानता, ईर्ष्या, हिंसात्मक, अहिंसात्मक, सत्यनिष्ठा, त्यागभावना, संयमभावना, ब्रह्मचर्यभावना, नैतिक जगरण (राजा का कर्तव्य, प्रजा का कर्तव्य, सेवाभाव, दया, करुणा), धार्मिक भावना, वैराग्य भावना, निन्दा-पश्चाताप आदि इसकी विशेषताएँ हैं

१. ज्ञाताधर्मकथांग १७/१४८.

२. हिन्दी उपन्यास, सिद्धान्त और समीक्षा, पृ० ५९, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली १९६६.

किन्तु इस दृष्टि से ज्ञाताधर्म के पात्रों का चरित्र-चित्रण करने से पूर्व पात्रों का वर्गीकरण आवश्यक है।

पात्रों का वर्गीकरण

मूलतः पात्र दो प्रकार के होते हैं— (१) व्यक्तिवादी पात्र और (२) प्रतिनिधिपात्र।

१. व्यक्तिवादी पात्र

वे पात्र जिनकी अपनी निजी विशेषताएँ होती हैं वे व्यक्तिवादी पात्र कहलाते हैं। ज्ञाताधर्म में जितनी भी कथाएँ हैं उनका प्रारम्भ पात्रों की निजी विशेषताओं को लिए हुए हैं। प्रथम अध्ययन में अभयकुमार, मेघकुमार का कथानक विशिष्ट व्यक्तित्व का सूचक है। अभयकुमार विचारशील चिन्तनशील एवं मनोगत संकल्प से युक्त है। वह मानवीय उपयोगों से कार्य करना चाहता है। परन्तु जब उसमें समर्थ नहीं होता है तब वह देव आराधना में स्थित होकर अपने कार्य में सफल होता है।^१ संघाट नामक अध्ययन का मूलपात्र विजय चोर है जो कला में निष्णात है। इसका सम्पूर्ण विवेचन चोर के मनोगत भावों को स्पष्ट करता है और उसकी परिणति कथा में मोड़ प्रदान करती है, फलतः सेठ के परिणाम भी दया के भाव से भर जाते हैं। शैलक अध्ययन में थावच्चापुत्र का अणगार मार्ग की ओर लगना इसी बात की ओर संकेत करता है।^२ मल्ली का व्यक्तित्व विविध परिवर्तन के रूपों को लिए हुए है। मल्ली द्वारा सामायिक चरित्र की ओर बढ़ने का प्रसंग व्यक्ति को आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करता है।^३ इसी तरह माकन्दी, तेतलिपुत्र, द्रौपदी आदि के चरित्र व्यक्तिवादी चरित्र हैं। इसमें मानवीय एवं सामाजिक तत्त्व चरम सीमा तक विकसित होते हैं। इन्हीं तत्त्वों से सभी सम्भावनाओं का उद्घाटन होता है। इस उद्घाटन की सीमा में उच्चता स्पष्ट रूप से हमारे सामने आती है। इस तरह ज्ञाताधर्म के प्रत्येक चरित्र समाजगत और वैयक्तिक गुण प्रकट करने में समर्थ हैं।

२. प्रतिनिधि पात्र

वे पात्र जो एक विशिष्ट व्यक्ति के चरित्र को लेकर समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं प्रतिनिधि पात्र कहलाते हैं। प्रतिनिधि पात्र के वस्त्र, वेशभूषा, सुन्दर विचार, कोमल परिणाम, समाज उपयोगी मनोभाव एवं उनके सभी प्रयत्न इस बात को पुष्ट करते हैं कि जीवन का मूल्य सत्यार्थ में है और यही सत्यार्थ प्रतिनिधि पात्र के चरित्रों में पाया जाता है। प्रतिनिधि पात्र सुख-दुःख, घृणा-प्रेम, रुचि-अरुचि,

१. पोसहिमस्स वंभचारिस्स उम्भुक्कमणिं- सुवण्णस्स.....। ज्ञाताधर्मकथा १/६६.

२. ज्ञाताधर्मकथांग ५/६८.

३. ज्ञाताधर्मकथा ८/८२.

साहस-क्रायरता, औदार्य-कजूसी, न्याय-पक्षपात, सौन्दर्य-असौन्दर्य, वीरता-भद्रता, दयालुता, नृशंसता, सत्य-असत्य आदि देश-काल सापेक्ष गुण को लेकर समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। ज्ञाताधर्मकथा के कथानकों के साथ जुड़े हुए अन्य कथानक भी इसी बात का प्रमाणित करते हैं।

चरित्र-चित्रण का औचित्य

चरित्र-चित्रण को उत्कृष्ट एवं आदर्शरूप में प्रस्तुत करने का कार्य ज्ञाताधर्मकथा में सर्वत्र किया गया है। अभयकुमार श्रेणिक राजा के समीप में जैसे ही पहुंचता है वैसे ही श्रेणिक उसे आदर देते हैं, साता-असाता पूछते हैं, सत्कार-सम्मान करते हैं तथा आलाप-संलाप आदि करके आशीष देते हैं।^१ साथही बदली हुई मनोगत स्थिति को भी इसी के उपरान्त दर्शाया गया है। जिसमें अभयकुमार व्यक्त करता है कि हे तात! जो आदर सम्मान आप पूर्व में देते थे, वह अब क्यों नहीं है? इसका क्या कारण है?^२ श्रेणिक की उदासीनता को जानकर अभयकुमार निवेदन करता है कि आप जिस संकल्प को लिए हुए हैं उसे पूर्ण करना मेरा कार्य है। अतः आज्ञा दीजिए कि मैं छोटी माता धारिणी देवी के दोहद को सम्पन्न करके सेवा का अवसर प्राप्त कर सकूँ।^३ बदलती हुई मनोगत स्थिति की यह परिणति संकल्प के भावों को स्पष्ट करती है।

चरित्र-चित्रण की उत्कृष्टता के अनेक मापदण्ड ज्ञाताधर्म में हैं जिनके औचित्य को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

(क) अनुरूपता

जीवन्त पात्रों के चरित्र से कुछ कहलवाना अनुरूपता है। ज्ञाताधर्म में पौराणिक और ऐतिहासिक दोनों ही प्रकार के पात्र हैं और वे अपने जीवन्त स्वरूप को जनता के बीच में उपस्थिति कर भद्रता, अभद्रता, ठगी, आसक्ति, त्याग, तपस्या, आत्मसन्तोष, परिजन शिक्षा आदि का चित्रण करते हैं। सुधर्मा और जम्बू जैसे पात्र पुराण कथा को व्यक्त करते हैं तथा मेघकुमार, राजा कुणिक, श्रेणिककुमार, अभयकुमार, धारिणी, द्रौपदी, आदि ऐतिहासिक पात्र प्राचीन सांस्कृतिक विरासत को साकार करते हैं। अरिष्टनेमि^४ का चरित्र-चित्रण द्वारका नगरी की ऐतिहासिकता, प्रमाणों तथा पुराण-पुरुषों की गाथा का निरूपण करता है। आठवें अध्ययन में भी दोनों ही प्रकार के चरित्र उभरकर आए हैं। उदकज्ञात नामक बारहवें अध्ययन में राजा जितशत्रु के विषय में ऐतिहासिक

१. ज्ञाताधर्मकथांग १/६०.

२. वही, १/६१.

३. वही, १/१६२.

४. वही, ५/१-११.

तथ्यों का ज्ञान भी होता है। द्रौपदी के वर्णन से हस्तिनापुर के पाण्डुराजा एवं अन्य कई विशिष्ट व्यक्तित्व के ऐतिहासिक प्रमाण स्पष्ट होते हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि उस समय की नारियाँ शील और तप की आराधना करनेवाली थीं।

(ख) एकरूपता

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अनेकता में एकता और एकता में अनेकता आवश्यक है। ज्ञाताधर्म की मूल कथाओं में जो कुछ भी समावेशित किये गये वे अनेक प्रकार के परिवर्तनों को अपने में समाहित किये हुए भी एक ही उद्देश्य को प्रस्तुत करते हैं जिसे सामान्य रूप में संसार की स्थिति से हटकर विशुद्धात्म भाव की ओर बढ़ना ही कहा जा सकता है। द्रौपदी के चित्रण में संसार से वैराग्य की ओर का चरित्र-चित्रण ही पर्याप्त है। इसी से अन्य चरित्र-चित्रण का ज्ञान हो सकता है। द्रौपदी का जन्म राजसी परिवेश में हुआ, अतः तदनुकूल नवयौवना होने पर उसका स्वयंवर रचाया गया^१ जिसमें पाण्डुपुत्र आए और उनके साथ वरण हुआ। कथा में द्रौपदी हरण जितना महत्वपूर्ण है उससे कहीं अधिक द्रौपदी का साध्वी होना महत्वपूर्ण है। ज्ञाताधर्म में प्रारम्भिक कथानक से लेकर अन्त तक के सभी कथानक भाषा, भाव, अभिव्यक्ति, कला, चित्रण-विधि, उपदेशात्मक ज्ञान एवं विशेष उद्देश्य आदि को किसी न किसी रूप में स्पष्ट करते हैं।

(ग) सम्भाव्य

ज्ञाताधर्म के कथानक कल्पनाशील नहीं हैं, अपितु ये कलाकार की प्रतिमूर्ति के सजीव चित्र हैं। इसके सुन्दर चित्रों में जीवन का यथार्थ है। मल्ली के प्रसंग सम्भाव्य को प्रस्तुत करते हुये तप संयम के सौन्दर्य की स्थापना करते हैं। कूर्म अध्ययन में दो प्रकार की प्रतिकृति सामने आयी है। जिसमें प्रथम प्रतिकृति वाचालता को व्यक्त करती है और द्वितीय कलाकार के सर्वश्रेष्ठ निष्कर्ष को प्रस्तुत करती है। यही कला का सौन्दर्य है जिसमें घटित घटना सम्भाव्य को स्थित करती है। चरित्र-चित्रण के कई केन्द्रबिन्दु हैं जिनमें बुद्धि और कल्पना क्रियाशील होती हैं। ज्ञाताधर्म में कल्पना नहीं है, इसलिए कल्पना की क्रियाशीलता इसमें नहीं है। परन्तु बुद्धितत्त्व है जिससे हृदय की अनुभूतियाँ न केवल मानवीय संवेदनाओं को लेकर आगे बढ़ती हैं, अपितु प्राणीमात्र के पूर्वापर परिचित प्रतिबिम्ब का भी छायांकन करती हैं।

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १६/१०८.

चरित्र-चित्रण की विधाएँ

१. पात्रों के कार्यों द्वारा।
२. पात्रों के वार्तालाप द्वारा
३. कथाकार के कथन और व्याख्या द्वारा।

उक्त तीनों ही प्रकार के गुणों का विवेचन ज्ञाताधर्मकथा में है। पात्रों के कार्यों के लिए प्रथम अध्ययन, आठवाँ अध्ययन, चौदहवाँ अध्ययन और सोलहवाँ अध्ययन है। इन अध्ययनों में पात्रों के कार्यों के माध्यम से चरित्र-चित्रण किया गया है। जैसे- पुरुष सहस्र-वाहिनी शिविका के सामने अष्टमंगल^१ द्रव्यों का प्रदर्शन, स्तुति, जयनाद, मांगलिक वातावरण आदि मेघकुमार जैसे महान नायक के आदर्श को प्रस्तुत करता है। मेघकुमार के तपश्चरण^२ के समय का दृश्य भी इसी तरह का है।

पात्रों के वार्तालाप द्वारा नाटकों में वस्तुस्थिति को व्यक्त किया जाता है। ज्ञाताधर्मकथा नाटक नहीं है फिर भी इसमें नाटकीय प्रयोग किये गये हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में पात्रों की बातचीत से इस बात का संकेत मिलता है। ज्ञाताधर्म के प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय अनुच्छेद में यही क्रम देखने को मिलता है। रोहिणीज्ञात में चारों बहुओं के साथ सेठ का वार्तालाप पात्र की विशेषता को चित्रित करता है और गुण विशेष के आधार पर सेठ अपने बहुओं का नाम उज्झिका, भोगवती, रक्षिका और रोहिणी रखता है। उज्झिका को सफाई कार्य के लिए नियुक्त किया जाता है, भोगवती को रसोईघर का कार्य दिया जाता है, रक्षिका को वस्तुओं की देखरेख के लिए रखा जाता है और रोहिणी को गृहस्वामिनी के रूप में नियुक्त किया जाता है। वस्तु स्थिति व पात्रों की स्थिति क्या है? कैसी है? ये चारों ही नारी पात्र व्यक्त कर देती हैं।

कथाकार कथा कभी कहता है, कभी कहलवाता है और कभी पात्रों के विचार भावना, उद्देश्य, प्रयोजन आदि के द्वारा उन्हें प्रस्थापित करता है। ज्ञाताधर्मकथा का कथाकार कथा में नहीं उलझता है, अपितु कथन को महत्त्व देता है। यदि उसे अनिष्ट का आख्यान करना है तो अनिष्ट के वातावरण को किसी पात्र के माध्यम से उपस्थित कर देता है और यदि योग, भक्ति, श्रद्धा, तप आदि इष्ट कार्यों को व्यक्त करना है तो वह अनुकूल वातावरण उपस्थित कर वस्तुस्थिति का चित्रण कर देता है। कथाकार की यही कथा परिणति है।

उक्त विधियों के अतिरिक्त चरित्र-चित्रण की दो विधियाँ व्यक्त की गयी हैं—

१. ज्ञाताधर्मकथांग १/१५३, १५४.
२. वही, १/२०२.

(१) विश्लेषणात्मक-विधि (२) अभिनयात्मक-विधि।

विश्लेषणात्मक-विधि का यह अनूठा ग्रन्थ है, क्योंकि कथाकार ने इसमें पात्रों के बाहर और भीतर दोनों ही प्रकार के विचारों, आदर्श गुणों एवं व्यवहार आदि का चित्रण किया है जिसमें पाठक दोनों प्रकार की स्थिति को प्राप्त होता है। मन का परिवर्तन और तन का परिवर्तन विचारों और व्यवहारों से ही होता है। इसलिए ज्ञाताधर्मकथा के कथाकार ने कथाशिल्प के स्वरूप को अपने समय में जिस रूप में देखा था उस रूप में प्रस्तुत कर दिया किन्तु ये चरित्र आज भी जीवन्त हैं।

३. कथोपकथन

कथा के विकास में जितना कथानक को महत्त्व दिया जाता है उतना ही कथोपकथन को भी दिया जाता है। इससे पात्र की स्थिति, विचार एवं स्वभाव आदि का ज्ञान होता है। ज्ञाताधर्मकथा में जो कथा-विकास हुआ है उसमें प्रायः कथोपकथन की शैली को अपनाया गया है। उत्कृष्टज्ञात में जम्बूस्वामी ने सुधर्मास्वामी से प्रश्न किया है- भगवन! ज्ञाताधर्मकथा का क्या अर्थ है? इस प्रश्न का समाधान सुधर्मास्वामी ने इस प्रकार किया कि भगवन ने छठे अंग में ज्ञात और धर्मकथा नामक दो श्रुतस्कन्ध प्रतिपादित किए हैं^१ कथा के प्रारम्भ में जो जम्बू और सुधर्मा का संवाद है। वही आगे अन्य पात्रों के माध्यम से भी अपनाया गया है जैसे- अभयकुमार का धारिणी के साथ, श्रेणिक राजा का धारिणी को उद्बोधन, स्वप्न पाठकों का फलादेश, अभय की देवाराधना, मेघकुमार का जन्म, उसके कार्य, कला ग्रहण आदि सभी कथोपकथन के वैशिष्ट्य को लिए हुए हैं। द्वितीय संघट अध्ययन में जम्बू की जिज्ञासा का समाधान सुधर्मा द्वारा किया जाना तथा भद्रा से धन्य सार्थवाह का यह कहना कि हे देवानुप्रिय! मेरे आने से तुम्हें सन्तोष क्यों नहीं है? हर्ष क्यों नहीं है? आनन्द क्यों नहीं है?^२ तब भद्रा कहती है मुझे सन्तोष, हर्ष और आनन्द क्यों होगा? क्योंकि आपने मेरे पुत्र के घातक को अपने भोजन में से भोजन कराया है।^३ ऐसे ही कई प्रसंग इसमें भरे पड़े हैं। तृतीय अण्डक अध्ययन में सार्थवाह पुत्रों के द्वारा गणिका से कहा गया कि हे देवानुप्रिय! हम तुम्हारे साथ सुभूमिभाग नामक उद्यान में विचरण करना चाहते हैं तब गणिका देवदत्ता ने कहा कि जैसा आप चाहते हैं वैसा ही होगा।^४ कूर्म अध्ययन के अन्तिम अनुच्छेद में संसार की असारता को उदाहरण के माध्यम से दर्शाते हुए यह कहा गया है कि हे आयुष्यमन्

१. ज्ञाताधर्मकथा, १/९-१०.

२. वही, २/४५.

३. वही, २/४०.

४. वही, ३/११-१२.

जो पाँचों इन्द्रियों का गोपन करता है वह उपासना योग्य बन जाता है।^१ शैलिक अध्ययन का प्रत्येक अनुच्छेद कथानक से कथा को बढ़ाने एवं चारित्र का चित्रण करने में निपुण है। सुदर्शन से थावच्चापुत्र ने कहा कि हे सुदर्शन! 'किं मूलए धम्मे पण्णत्ते'? धर्म का मूल क्या है? सुदर्शन ने उत्तर दिया 'सोयमूले धम्मे पण्णत्ते' शौचमूलक धर्म कहा गया है।^२ इसी अध्ययन का शुक-थावच्चापुत्र संवाद अत्यन्त ही रोचक है—

“किं भंते! जत्ता?

सुया! जं णं मम णाण- दंसण चरित्र तव संजममाइएहिं जोएहिं जोयणा से तं जत्ता”।

से किं तं भंते! जवणिज्जे?

सुया! इंदियजवणिज्जे य नोइंदियजवणिज्जे या

से किं तं नोइंदियजवणिज्जे?

सुया! निरुवहयाइं वसे वट्टंति, से तं इंदियजवणिज्जं।^३

हे भगवन् !, यात्रा क्या है?

जीवों की यतना (रक्षा) करना हमारी यात्रा है।

यापनीय क्या है?

इन्द्रिय और नोइन्द्रिय यापनीय है

इन्द्रिय यापनीय किसे कहते हैं?

बिना किसी उपद्रव के वशीभूत जो इन्द्रियाँ होती हैं वे इन्द्रिय यापनीय हैं।

इसका अंतिम उपसंहार भी कथोपकथन से परिपूर्ण है। छूटे तुम्बक नामक अध्ययन में प्रश्न किया गया है- कहं णं भंते। जीवा गुरुयत्तं वा लहुयत्तं वा हव्वमागच्छंति?^४ कैसे जीव गुरुता और लघुता को प्राप्त होते हैं? इस प्रश्न का समाधान तुम्बक पर लगाए गए लेप को गुरुता का प्रतीक और लेप रहित तुम्बक को लघुता का प्रतीक बताकर प्रस्तुत किया गया है जो कर्म-प्रकृतियों की लघुता और गुरुता को स्पष्ट करता है।

१. ज्ञाताधर्मकथा, ४/१३.

२. वही, ५/३६.

३. वही, ५/४५.

४. वही, ६/५, ७.

सातवें अध्ययन की रोहिणी कथा में चरित्र की श्रेष्ठता को अंकित करते हुए सेठ एवं पुत्रवधुओं की वार्तालाप नीति एवं सदाचार की स्थापना करने में सहकारी है। मल्ली नामक अध्ययन विस्तारयुक्त कथोपकथन को लिए हुए मल्ली के चरित्र को प्रस्तुत करता है। माकन्दी नामक नवें अध्ययन में प्रकृति की सुकुमारिता को कथोपकथन के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। यथा—

तत्थं णं तुभ्भे देवाणुप्पिया! वावीसु य जाव विहराहि।^१

हे देवानुप्रिय! तुम वापियों में विचरण करो। वे वापियाँ और वनखण्ड कैसे हैं इस विषय में कहा है—

सहकार-चारुहारो, किंसुय कण्णियारासोग- मउडो। ऊसियतिलग-बउलायवतो, बसंतउऊ णरवई साहीणो।^२ पाडल सिरीस-सलिलो, मलिया वासंतिय धवलवेतो। सीयल सुरभि-अनल-मगरचरिओ, गिम्हउऊ-सागरो साहीणो।^३ अर्थात् उस वन में सहकार/आग्रमंजरियों के मनोहर हार हैं, वहाँ किंशुक, कर्णिकार, अशोक आदि पुष्पों के मुकुट हैं तथा ऊँचे-ऊँचे तिलक और वकुल वृक्षों के पुष्पित छत्र हैं। उस वन में पाटल, शिरीष रूपी जल है। मल्लिका और वासन्ति की लताएँ धवलित हैं तथा शीलत मन्द पवन भी चल रही है। इसी तरह के अंशों से परिपूर्ण माकन्दी अध्ययन में प्रकृति सौन्दर्य को कथोपकथन के रूप में व्यक्त किया गया है। चन्द्र अध्ययन में भी कथोपकथन है। यह सबसे छोटा अध्ययन है। ग्यारहवें दावद्रव अध्ययन में भी संवाद रूप में कथा का विकास हुआ है। बारहवाँ उदक नामक अध्ययन इससे अछूता नहीं है। दर्दुरज्ञात नामक तेरहवें अध्ययन में गौतम के द्वारा पूछा गया है कि देवजुई दिव्वे देवाणुभावे कहिं गया? देवऋद्धि कहाँ गई? भगवन ने उत्तर दिया-गोयमां सरिरं गया सरिरं अणुपविट्ठा कूडागारदिट्ठंतो।^४ अर्थात् हे गौतम! देवऋद्धि शरीर में गयी, शरीर में प्रविष्ट हो गयी। चौदहवाँ तेतलिपुत्र, पन्द्रहवाँ नन्दीफल, सोलहवाँ अमरकंका (द्रौपदी) आदि सभी अध्ययनों में कथोपकथन के बिना कथाकार ने कथा का विकास नहीं किया है।

कथोपकथन के तीन गुण माने गये हैं—

१. कथानक का विकास— प्रत्येक कथा का कथानक कथोपकथन से विकास को प्राप्त हुआ है। इससे ज्ञाताधर्म की कथा में स्वाभाविकता आ गई है और इसी से पात्रों के गुणों की पहचान भी करायी गई है।

१. ज्ञाताधर्मकथा ९/२४.

२. वही, ९/२५.

३. वही, ९/२५.

४. वही, १३/५.

२. पात्रों का चित्रण— कथोपकथन घटनाओं का ही क्रम लिए हुए उपस्थित होता है जिससे पात्र का जीवन हर्ष, विषाद, मनोगतभाव आदि दर्पण ही तरह सामने आ जाता है। ज्ञाताधर्म की पृष्ठभूमि में पात्र सर्वोपरि है ऐसा नहीं है, अपितु उनके चरित्र की विशेषताएँ मानवीय संवेदनाओं से जुड़ी हुई हैं। “परलोए वि य णं आगच्छइ बहूणि दंडणाणि जाव”।^१

३. निश्चित उद्देश्य— ज्ञाताधर्मकथा के कथानकों की परिणति कहीं सत्य तो कहीं अहिंसा, कहीं महाव्रत तो कहीं गुणव्रत, कहीं संयम तो कहीं तप आदि के उद्देश्य के रूप में होती है। कथाकार अपने कथानकों को निश्चित उद्देश्य में सीमित करने का सफल प्रयास किया है। परन्तु आवश्यकतानुसार उन्हें सीमित भी किया है और घटनाओं के क्रम से उन्हें बहु-आयामी बनाया है।

इस तरह कथोपकथन की स्वाभाविकता से युक्त ज्ञाताधर्मकथा निश्चित उद्देश्य, अनुकूल वातावरण, संकल्प; विकल्प, पात्रानुकूल चित्रण, सार्थकता, सजीवता आदि की दृष्टि से मानसिक धरातल के अनुरूप है।

४. देशकाल

देशकाल के अन्तर्गत किसी भी कुटुम्ब, परिवार, समाज, देश या राष्ट्र की धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक, वैचारिक आदि विशेषताओं को लिया जाता है जो सभी कथानक के मूल स्रोत में होती हैं। देशकाल के अनुसार कथानक पात्रों के औचित्य से कहीं प्राकृतिक दृश्यों को लेकर चलता है, कहीं उनकी मनोगत विशेषताओं को उद्घाटित करता है। पात्र की अच्छाई और बुराई दोनों ही इसमें निहित होती है। इन दोनों को कथाकार लेकर चलता है वह यथार्थ और आदर्श मानवीय या अमानवीय सदाचरण या दुराचरण दोनों ही परिस्थितियों को देश-काल के अनुसार स्थान देता है और उनकी विशेषताओं से पूरा वातावरण चित्रित करता है।

ज्ञाताधर्मकथा के पात्र पौराणिक एवं ऐतिहासिक हैं।^२ फिर भी वे कथा के सूत्र में बंधे हुए व बोलते हुए दिखाई पड़ते हैं। पूरा का पूरा परिवेश पात्रों की परिस्थितियों से घिरा हुआ घटित घटनाओं को उभारने में सफल होता है। ज्ञाताधर्म के कथानकों में जो भी वातावरण है वह पाठक की मनःस्थिति को प्रभावित किए बिना नहीं रहता है। जबकि वर्तमान समाज व्यवस्था से जुड़े हुए परिवेश के कथानक हल्की-हल्की सांस लेते हुए विकास को तो प्राप्त करते हैं पर अपनी छवि को नहीं छोड़ पाते हैं, यदि कुछ छोड़ते भी हैं तो वे सारी विशेषताओं के अभाव में

१. ज्ञाताधर्मकथांग ४/१०.

२. वही, १६/९६.

नगण्य ही है। परन्तु ज्ञाताधर्मकथा के पात्र की सारी परिस्थितियाँ सत्य का उद्घाटन करती हैं। परिणामतः कथानकों में भारतीय भौगोलिक परिस्थितियों, राजनैतिक विचारों, धार्मिक प्रभावों एवं सामाजिक उद्देश्यों का चित्र उभरकर आया है जिसे समग्र भारतीय संस्कृति का चित्र कहा जा सकता है।

उत्क्षिप्तज्ञात नामक अध्ययन में अभयकुमार का चरित्र, धारिणी, स्वप्न दर्शन, दोहद वर्णन अकाल मेघ क्रिया, मेघकुमार की कला आदि कई अंश उस समय के देश-काल की परिस्थितियों को उपस्थित करते हैं। संघाट नामक द्वितीय अध्ययन में धन्यसार्थवाह का वैभव, पत्नी भद्रा की भद्रता, विजय चोर की निपुणता आदि अलग-अलग परिवेश को व्यक्त करते हैं। मयूरी के अण्डे, पक्षियों के प्रति अहिसंक भावना, कूर्म जलचर जीव से संयम भावना, शैलक में नगरी, पर्वत, जनपद आदि का विवेचन श्रीकृष्ण के समकालीन परिवेश को प्रस्तुत करते हैं। इसी तरह से दर्दुर नामक तेरहवें अध्ययन में चिकित्सा पद्धति का वर्णन प्राचीनता की ओर ले जाती है। द्रौपदी नामक सोलहवाँ अध्ययन हस्तिनापुर नगर के परिवेश से जुड़े हुए पात्रों का जो विवेचन करता है वह ऐतिहासिक है। अतः देशकाल की दृष्टि से जो सामाजिक, प्राकृतिक, ऐतिहासिक एवं पौराणिक चित्रण हुआ है वह तत्कालीन वेश-भूषा, भाषा, आहार-विहार, रीति-रिवाज, कला, व्यापार, नगर-वातावरण आदि को प्रभावी बनाता है।^१ ज्ञाताधर्म में जो कुछ भी चित्रित किया गया है वह तत्कालीन सामाजिक परिवेश की यथार्थता को उद्घाटित करता है। साथ ही पौराणिक एवं ऐतिहासिक मान्यताओं का सजीव चित्रण भी करता है।

५. भाषा शैली

काव्य साहित्य में वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली ये तीन शैलियाँ कही गयी हैं। वैदर्भी रीति में ओज, प्रसाद आदि गुणों का समावेश होता है। ओज और कांति को गौड़ी रीति में समाहित किया गया है तथा सुकुमारता एवं मधुरता पांचाली रीति में आती है। ज्ञाताधर्मकथा में ध्वनि, गुण रीति शब्द-योजना के अतिरिक्त अनेक ऐसे बिम्ब विद्यमान हैं जो कथाशिल्प को प्रमाणित करते हैं। इससे ही कथा आकर्षक और रोचक बन सकी है। इसी से कथ्य, तथ्य एवं वस्तु रहस्य का भाव स्पष्ट हो सका है और यही भाव जिज्ञासा उत्पन्न कर उत्सुकता जगाने में समर्थ हुआ है और इसी से कथा आकर्षक एवं रोचक बन सकी है, उदाहरण के लिए प्रथम अध्ययन में अभयकुमार के विवेचन को सामने रखा जा सकता है जिसमें अभयकुमार की सुझबूझ, बुद्धि कौशल आदि से उद्धाटित झलकियाँ देखी जा सकती हैं। अभयकुमार

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १६/११२.

अतिशय बुद्धिशाली है उसमें औतपत्तिकी-बुद्धि, वैनयिकी-बुद्धि, कर्मजा-बुद्धि और पारिणामिकी-बुद्धि इन चारों ही बुद्धियों का समावेश है।^१ प्रस्तुत गद्यांश भाषा-शैली के सत्य को उद्घाटित करता है। यथा—सुंदरंगे, ससिसोमाकारे कंते पियदंसणे सुरुवे, साम-दंड-भेय उवप्पयाण-णीति-सुप्पउत्तणय विहण्णु।^२ इस गद्यांश में अलंकृत भाव, शब्द, सौन्दर्य, उपमा, रूपक आदि का समावेश है। इस कथानक के विवेचन में व्यञ्जकता भी है। जिस समय रानी धारिणी दुःखी होती हैं तब वे न दूसरों का आदर करती हैं और न जानती हुई कुछ कहती हैं।^३ जब राजा श्रेणिक शपथ दिलाते हैं तब धारिणी देवी अपने अभिप्राय को व्यञ्जनात्मक रूप में ही अभिव्यक्त करती हैं। इसी प्रकार संघाट अध्ययन में भाषा शिल्प को एक नया मोड़ दिया गया है। यथा—

मैं निर्रन्थ प्रवचन पर प्रतीति करता हूँ।

मैं निर्रन्थ प्रवचन पर रुचि करता हूँ।

मैं निर्रन्थ प्रवचन का अनुसरण करने के लिए उद्यत होता हूँ।^४ इत्यादि वचन भाव एवं श्रद्धा उत्पन्न करते हैं।

शैलक अध्ययन का संवादात्मक विवेचन वरण पद विशेषण भाव आदि की विशेषताओं को दर्शाता है। यथा एगे भवं? दुवे भवं? अणेगे भवं? अक्खए भवं? अव्वए भवं? अवट्ठिए भवं? अणेगभूयभावभविए वि भवं? एगे वि अहं, दुवे वि अहं, जावं अणेगभूयभावभविए वि अहं।^५ अर्थात् जब यह प्रश्न किया कि आप एक हैं, आप दो हैं तब उसका समाधान करते हुए कहा कि आप एक हैं, दो हैं और अनेक भी हैं।

इस प्रकार भाषा की प्रभावपूर्ण शैली अभिव्यक्ति को नया स्वरूप प्रदान करती है। गद्य के क्षेत्र में इस प्रकार की शैली सुरुचि उत्पन्न करती है तथा भाषा में ओजस्विता, सजीवता, प्रौढ़ता और प्रभावशीलता को स्पष्ट करती है। इस दृष्टि से ही ज्ञाताधर्मकथा की पद रचना को अधिक प्रभावी बनाया गया है। भाषा-शैली की दृष्टि से पद रचना को निम्न रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है, यथा—

१. समास पद और उसकी प्रासंगिकता।

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १/१५.

२. वही, १/१५.

३. वही, १/४७.

४. वही, २/५२.

५. वही, ५/५०.

२. पद एवं वाक्य द्वारा दृश्य परिवर्तन
३. वर्णनात्मक उक्ति वैचित्र्य
४. सादृश्यमूलक दृष्टिकोण
५. उपमा आधारित पद रचना
६. रूपकात्मक दृष्टिकोण
७. प्रतिकात्मक विवेचना

उक्त सभी भाव कथा की मूल आत्मा में सर्वत्र देखे जा सकते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि स्वाभाविकता, भावप्रकाशन, उत्सुकता, गतिशीलता आदि से युक्त विचारों से गद्य में काव्यशैली का-सा आनन्द आ गया है। अलंकृत भाषा की गतिशीलता से ज्ञाताधर्मकथा के गद्यांश पात्रों के चरित्र-चित्रण के साथ-साथ उनके परिवेश की छाप पढ़नेवाले के ऊपर अवश्य ही छोड़ते हैं। यही भाषा-शैली की मूल संवेदना है और यही भाषा-शैली का दृष्टिकोण भी कहा जा सकता है।

६. उद्देश्य

कथा या काव्य का निरूपण साहित्यकार जिस रूप में करता है वह किसी न किसी प्रकार के उद्देश्य को लेकर के ही निरूपित करता है। प्राचीन समय में धर्मोपदेश के लिए कथाओं को कहा जाता था बाद में उसे ही सृजनात्मक रूप में उपस्थित किया गया। मध्यकाल में साहित्य को नये रूप में प्रस्तुत किया गया जिसे सुधारवादी दृष्टिकोण कह सकते हैं। सुधारवादी दृष्टिकोण से तात्पर्य है- पूर्व में कथाकार या काव्यकार ने जो कुछ भी कथन किया था उसे तत्कालीन परिस्थितियों के साथ जोड़कर सुधारवादी दृष्टिकोण को अपनाया। इस युग में काव्य का प्रणयन यश, कीर्ति, धनोपार्जन आदि के उद्देश्य से किया गया, परन्तु जो कुछ भी लिखा गया उसमें भी आनन्द, प्रकृति वर्णन, सामाजिक सुरक्षा, धर्म-दर्शन, नीति सदाचार आदि को महत्व दिया गया। अतः साहित्यकार की कृति का मूल उद्देश्य समसामयिक परिस्थितियों को लेकर विवेचन करना ही होता है। यही उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति में सहायक होता है। इससे ही, यथार्थ एवं आदर्श का परिचय हो पाता है।

ज्ञाताधर्मकथा की प्रत्येक कथानक का अपना उद्देश्य है। प्रथम अध्ययन की कथा में अभयकुमार और मेघकुमार का माता-पिता के प्रति आज्ञाकारी होना शिक्षा-पद्धति का एक उच्च आदर्श है। माता-पिता का भी पुत्र के प्रति क्या कर्तव्य है क्या नहीं? इस भाव को इस कथा में देखा जा सकता है। संघाट नामक अध्ययन

में ज्ञान, दर्शन और चारित्र की उपासना को महत्त्व दिया गया है। अण्डक नामक तृतीय अध्ययन में षट्काय जीव संरक्षण के साथ-साथ पशु-पक्षियों के जीवनदान के विषय को अधिक महत्त्व दिया गया है। कूर्म नामक चतुर्थ अध्ययन में संयत और असंयत के दृष्टान्त को सामने रखकर श्रमण एवं श्रमणियों को यह बोध दिया गया कि दीक्षा लेकर इन्द्रिय दमन को विशेष महत्त्व दे, तभी संसार सागर से पार होना संभव है। पंचम शैलक अध्ययन में दीक्षा की प्रधानता को दर्शाया गया है। तुम्बक नामक छठे अध्ययन में कर्म-सिद्धान्त की शिक्षा दी गयी है। रोहिणीज्ञात नामक सातवें अध्ययन में बहुओं का ससुर के प्रति आदर भाव, स्त्री शिक्षा, स्त्रियों का कृषिज्ञान आदि का बोध प्राप्त होता है। मल्ली नामक अष्टम अध्ययन में मोक्ष की अवस्थाओं का आभास होता है। माकन्दी अध्ययन भोग वासना को धर्म में बाधक मानता है और उसे हेय बतलाते हुए सच्चे धर्म की आराधना पर बल देता है। चन्द्र नामक दसवें अध्ययन में गुणों की हानि और वृद्धि^१ को दर्शाया गया है। दावद्रव नामक ग्यारहवें अध्ययन में देश विराधक, सर्व विराधक, देश आराधक और सर्व आराधक इन चार विकल्पों को धर्मोपदेश के लिए महत्त्वपूर्ण बतलाया गया है। उदक नामक बारहवें अध्ययन में द्रव्य के पर्याय और उसके गुण का गुणगान किया गया है। तेरहवें दर्दुरज्ञात नामक अध्ययन द्वारा चारित्र के परिणामों का बोध कराया गया है। तेतलिपुत्र नामक चौदहवें अध्ययन में श्रमण पर्याय में संलेखना का क्या महत्त्व है, उससे क्या प्राप्ति होती है और किस तरह घाती कर्म का घात करके जीव केवलदर्शन व केवलज्ञान को प्राप्त कर सकता है। इसकी विधिवत् शिक्षा दी गई है। नन्दीफल में वृक्षों के संरक्षण पर बल दिया गया है। द्रौपदी नामक अध्ययन के माध्यम से शील की शिक्षा दी गई है। आकीर्ण नामक अध्ययन में जीवन की अन्तिम परिणति का बोध कराया गया है। सुंसुमा नामक अध्ययन में मांस, रुधिर आदि के परित्याग का उपदेश दिया गया है और इसके अन्तिम पुंडरीक नामक अध्ययन में तीर्थ स्थापना को महत्त्व दिया गया है।

इस तरह इसके प्रथम श्रुतस्कन्ध के प्रत्येक कथानक का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य है जो समस्यामूलक, समाज सुधार आदि कारणों को भी प्रस्तुत करता है। कथाकार की अभिव्यक्ति एक विशेष दृष्टिकोण को लेकर ही आगे बढ़ी है, जो आज के युग में भी सशक्त और सफल बनी हुई मानव समाज को प्रेरित करती है और आगे करती रहेगी।

१. जीवा बडर्दति वा हायति वा। ज्ञाताधर्मकथांग १०/४.

ज्ञाताधर्मकथा में उदात्तीकरण

कहानी के सारे तत्त्व प्रभावीकरण को व्यक्त करते हैं और वे ही छोटे-छोटे चित्रों में नदी की धारा के समान एक दृश्य विशेष से जीवन को जिस क्षण प्रस्तुत करते हैं उसी क्षण वे उदात्तीकरण के रूप को प्राप्त हो जाते हैं। उदात्त चरित्र, उदात्त उद्देश्य और उदात्त वातावरण ये तीनों ही ज्ञाताधर्म की कथाओं के अंशों में पाये जाते हैं जिससे कथा में संवेदना, स्वाभाविकता, प्रभावशीलता, वैयक्तिकता उभरकर सामने आ जाती है। कथाकार जो भी कथानक लेकर चलता है उसमें निश्चित उद्देश्य के साथ-साथ उदात्तभाव भी समाहित होता है।

ज्ञाताधर्म की कथाओं में जो भी उदाहरण हैं वे सभी समाज के लिए दिशा बोध करते हैं। राजा श्रेणिक की जीवन गाथा, अभयकुमार की वाक्-पटुता, मेघकुमार की वैराग्यभावना, धारिणी देवी का निवेदन, कंचुकी के भाव, धन्य सार्थवाह की क्षमाशीलता, देवदत्ता गणिका का जीव संरक्षण भाव, अरिष्टनेमि का उपदेश, महाबल की दीक्षा, माकन्दी पुत्रों की प्रार्थना, जितशत्रु की तत्त्वजिज्ञासा नन्द की मिथ्यात्वदृष्टि, तेतलिपुत्र की विरक्ति, द्रौपदी का समर्पण भाव आदि उदात्तीकरण के दृष्टान्त ही हैं। उत्किप्तज्ञात नामक अध्ययन में धारिणी देवी के उदात्तीकरण को उपमा एवं रूपक अलंकार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह देवी दर्शक के चित्त में प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाली दर्शनीय, रूपवती, वार्तालाप में प्रवीण, विश्वासपात्र, धैर्यशीला एवं धार्मिकप्रवृत्ति के गुणों से सम्पन्न थी। इसी प्रकार राजा श्रेणिक का पुत्र अभयकुमार शुभ लक्षणों से युक्त^१ अनेक गुणों से सम्पन्न था। यथार्थ में यही कहा जा सकता है कि ज्ञाताधर्मकथा के प्रायः सभी पात्र उदात्त हैं। सभी पौराणिक एवं ऐतिहासिक पात्र हैं। वर्ग विभाजन की दृष्टि से इनके पात्रों को स्त्री-पुरुष पात्र, जलचर पात्र, नभचर पात्र आदि के रूप में विभाजित किया जा सकता है। ये सभी पात्र किसी निश्चित उद्देश्य को लेकर जीवन दर्शन एवं जीवन पद्धति का कथन करते हैं और सभी कथन उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप, गुरुजनों के प्रति आदर, विनय, सत्कार, दान, ध्यान, ज्ञान, वैराग्य आदि के स्वरूप को लिए हुए आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं। अतः ज्ञाताधर्म के कथानकों का उदात्तीकरण पात्र के गुणों के अनुसार किया जाए तो निश्चित ही अभीष्ट मार्ग प्रशस्त करने में सहायक होंगे।

लोकतत्त्व विवेचन

ज्ञाताधर्म की कथाएँ मानवीय तत्त्वों से परिपूर्ण सामाजिक एवं धार्मिक कथाएँ हैं। इनमें लोककथा के तत्त्व भी समाहित हैं जो हमें प्राचीन रीति-रिवाजों, परम्पराओं,

१. ज्ञाताधर्मकथा १/१६.

प्रथाओं, सामाजिक व्यवस्थाओं आदि की ओर ले जाती हैं। इनकी कथाओं में बुद्धि चमत्कार, वर्णन कौशल, लोकविश्वास, उत्सव, रीति-रिवाज, कला-कौशल, मनोरंजन आदि विद्यमान हैं। साथ ही इनकी कथानकों में लोक संस्कृति के वास्तविक प्रतिबिम्ब सहज और स्वाभाविक रूप में देखे जा सकते हैं। परन्तु इन्हें लोकमानस की मात्र सहज एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति ही कह सकते हैं, लोककथा नहीं। लोककथा में विश्वास, अन्धविश्वास, शकुन, अपशकुन, जादू-टोना, वशीकरणमंत्र आदि का समावेश होता है जो ज्ञाताधर्म की प्राचीन कथाओं में नहीं है। क्योंकि लोककथा मध्ययुग की देन है, प्राचीन युग की नहीं। यद्यपि ज्ञाताधर्मकथा में रीति-रिवाज, लोकमंगल की कामना, धर्मश्रद्धा, कुतूहल, मनोरंजन, उपदेशात्मकता, आश्चर्य, हास्य-विनोद, पारिवारिक स्थिति, पूर्वजन्म विवेचन, प्रेम प्रसंग आदि की पृष्ठभूमि विद्यमान है।

१. लोकमंगल की कामना

ज्ञाताधर्मकथा के कथांशों में सर्वत्र लोकमंगल की कामना की गयी है। आर्य सुधर्मा और जम्बू स्वामी दोनों ही संयम और तप की भावना को लिए हुए वीर प्रभु के गुणों का स्मरण करते हैं और उनसे ही ज्ञाताधर्मकथा के स्वरूप की विवेचना का निवेदन करते हैं। धारिणी महारानी के गर्भवती होने पर उनके प्रियजन मंगल की कामना करते हैं। राजा श्रेणिक स्वयं कहते हैं कि हे देवानुप्रिय! तुमने आरोग्यकारी, तुष्टिकारी और कल्याणकारी महान स्वप्न देखे हैं।^१ मेघकुमार के जन्म के समय राजा श्रेणिक ने लोकमंगल की कामना से ही कारागार से कैदियों को मुक्त किया था।^२ मेघकुमार की उपासना में समस्त जीवों के प्रति कल्याण की भावना निहित है।^३ दूसरे के द्रव्य का हरण करनेवाला विजय चोर एवं धन्य सार्थवाह कर्म के अनुसार एक ही जगह एक-दूसरे से बंधे हुए यातना को प्राप्त होते हैं, परन्तु वे दोनों भी मंगलकामना करते हैं। अण्डक में अण्डे की रक्षा का भाव लोकमंगल के भावों को ही व्यक्त करता है।^४

शैलक राजा धर्म स्मरण कर श्रावक व्रत की मंगल कामना करते हैं।^५ इसी अध्ययन में सुदर्शन को दिया गया प्रतिबोध भी लोकमंगल की कामना से युक्त है।^६ रोहिणीज्ञात अध्ययन में पारिवारिक लोकमंगल की कामना की गई है। धन्य सार्थवाह परिवार में सुख-शान्ति चाहता है, इसी उद्देश्य से चारों पुत्रों और चारों बहुओं को पंच धान्य कण अर्थात् पांच अणुव्रत रूपी इसी उद्देश्य से अक्षत देता है कि कौन

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १/२२, २३.

२. वही, १/९०.

३. वही, १/१३.

४. वही, ३/३.

५. वही, ५/२९.

६. वही, ५/३८-३९.

कितना मंगलकार्य कर सकता है। मल्ली अध्ययन में मल्ली का चोक्ख नामक परिव्राजिका के लिए दिया गया उपदेश लोकमंगल की कामना से युक्त है, क्योंकि वह सर्वत्र शान्ति चाहती थी। माकन्दी अध्ययन में सर्वत्र ही मंगलकामना की गयी है। इसी तरह से अन्य अध्ययनों में प्राणी की रक्षा, अनुकम्पा, दया, सुख-शान्ति एवं स्वस्थ वातावरण की कामना की गयी है। इस प्रकार ज्ञाताधर्म के प्रत्येक पात्र के उन्नत विचार लोकहित में सहभागी बने हुए आत्महित की ओर अग्रसर होते हैं।

२. धर्मश्रद्धा

आगम का विषय आस्था का प्रतीक है। सभी जगह ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, संयम आदि पर श्रद्धा व्यक्त की गयी है। आर्य जम्बू नामक अणगार को तत्त्व के विषय में श्रद्धा उत्पन्न हुई।^१ मेघकुमार राजपुत्र होते हुए भी माता-पिता के सामने धर्मभाव से युक्त होकर दीक्षा धारण कर लेता है। वह महावीर के पास जाकर कहता है कि मुझे शिष्य शिक्षा दीजिए।^२ मेघकुमार के उग्र तपश्चरण में उपवास, बेला, तेल आदि का क्रम तप की श्रद्धा को ही व्यक्त करता है।^३ धन्य की पर्युपासना में निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति रुचि धर्म श्रद्धा के अपूर्व चिन्तन को प्रस्तुत करती है।^४ रोहिणी ज्ञात, अध्ययन में माता-पिता के प्रति आज्ञाभाव भी यही संकेत करता है कि जो अंगीकार किया है उस पर विचार करें तदनुसार आचरण करें। आचरण के उपरान्त उसकी वास्तविकता का प्रचार एवं प्रसार करें। इसी प्रकार धर्मश्रद्धा के सात्विक गुण मल्ली, उदक, दर्दुरज्ञात, तैतलिपुत्र, द्रौपदी आदि अध्ययनों में दर्शाये गये हैं। ज्ञाताधर्म की कथाओं में माता-पिता के प्रति आदर भाव, अहिंसक भाव, सत्य भाव, अचौर्य भाव, ब्रह्मचर्य रक्षा और अपरिग्रह आदि के प्रति गतिशील, प्रयत्नशील होने का भाव सन्निहित है। इसके द्वितीय श्रुतस्कन्ध में ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना पर विशेष बल दिया गया है, क्योंकि इनसे ही सुख शान्ति उत्पन्न हो सकती है।

३. रहस्य भावना

ज्ञाताधर्म की कथाओं में छिपी हुई शक्तियों का भी उद्घाटन किया गया है। उत्क्षिप्तज्ञात नामक प्रथम अध्ययन में अभयकुमार की औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा और पारिणामिकी^५ - ये चार बुद्धियाँ ज्ञान के उत्कर्ष को व्यक्त करती हैं। माकन्दी अध्ययन में दक्षिणवन के विवेचन में वधस्थान का ज्ञान रहस्यात्मक ढंग से कराया

१. ज्ञाताधर्मकथांग १/७.

२. वही, १/१५६.

३. वही, १/१९९

४. वही, २/५२.

५. वही, १/१५.

गया। तेतलिपुत्र नामक अध्ययन में संतान की अदला-बदली, मरी हुई लड़की का निहरण, चारक शोधन, कनकरथ का संरक्षण, संगोपन और संवर्धन^१ गोपनीय ही रहता है। द्रौपदी की गवेषणा, द्रौपदी का उद्धार इसी से सम्बन्धित है। घोड़ों का अपहरण आदि कई अज्ञात रहस्यमय विवेचन ज्ञाताधर्म में आए हैं। इसी प्रकार जिनसे पाँच धान्य कर्णों^२ को फेंक दिया उसे उज्जिका नाम दिया गया। जिसने उन पाँच धान्य कर्णों को खा लिया था उसे भोगवती कहा गया। जिसने उसकी सुरक्षा की थी उसे रक्षिका कहा गया और जिसने उसे बढ़ाया था उसे रोहिणी कहा गया। इन चारों उद्धरणों में एक ही रहस्य है कि जो व्यक्ति पंच व्रत स्वीकार करके छोड़ देता है वह बाह्य जगत में ही रमण करता है, जो उन्हें ग्रहण मात्र करता है उसे आभ्यन्तर वातावरण का ज्ञान होता है, जो उन ग्रहण किये हुए व्रतों को सुरक्षित भाव से रखता है वह रक्षित और जो इनके रहस्य को समझकर नियम से वृद्धि करता है, दूसरों को भी प्रेरणा देता है वह सर्वत्र प्रशंसनीय होता है।

इस प्रकार अज्ञान, अलौकिक शक्ति, उत्सुकता, आश्चर्य, जिज्ञासा, लालसा आदि के रहस्यमय उद्घाटन से परिपूर्ण सभी कथायें कथानक कही जा सकती हैं। क्योंकि प्रत्येक कथा के कथानक में कुछ न कुछ शक्ति अवश्य विद्यमान होती है।

४. कौतूहल

ज्ञाताधर्म के कथांशों में सर्वत्र कौतूहल विद्यमान है। कथाकार जो भी कथा प्रतिपादित करता है उसमें आर्य सुधर्मा का कथन और जम्बूस्वामी की जिज्ञासा ही प्रधान होती है। उनके द्वारा जो भी कथायें प्रस्तुत की गयी हैं उनमें सर्वप्रथम क्षेत्र, काल, स्थान आदि का वर्णन है, तत्पश्चात् कथा को प्रतिपादित किया गया है। यद्यपि ये लोक प्रचलित कथाएँ नहीं हैं फिर भी इन कथाओं में जिज्ञासा अन्ततः बनी रहती है। कथायें एक-दूसरे से जुड़ी हुई आगे चलती हैं और एक के बाद एक कौतूहल को उत्पन्न करती हैं। राजा श्रेणिक का पुत्र मेघकुमार कला प्रवीण होने के बाद क्या होगा? इसका ज्ञान कथा पढ़ने के बाद ही होता है। विजय चोर के कथानक में यह उत्सुकता बनी रहती है कि वह कैसा व्यक्ति है? मयूरी के अंडे संवेदनशीलता को बनाए हुए एक नये रूप को प्राप्त करती हैं। कूर्म की स्थिति एवं सियारों की चालाकी कूर्म अध्ययन में जिज्ञासा को ही उत्पन्न करती है। थावच्चा नामक महिला कौन है यह सत्य कथा के अन्त में ही ज्ञात होता है। तुम्बक का दृष्टान्त मन

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १४/२२, २३, २४, २५.

२. ज्ञाताधर्म का अध्ययन सात द्रष्टव्य है.

में उत्सुकता जागृत करता है। रोहिणी ज्ञात अध्ययन के प्रत्येक अंश कौतूहल की प्रवृत्ति से युक्त है। जिलपालित और जिनरक्षित के साहसजन्य कार्य जनप्रेरणा को देनेवाले हैं। चन्द्र की स्थिति स्पष्ट है। जितशत्रु का आनन्द एवं कथन बुद्धि परीक्षा का दर्शन कराता है। श्रमणोपासक की स्थिति दर्दुरज्ञात^१ अध्ययन से ज्ञात होती है। तेतलीपुत्र की शिक्षाएँ गुणों की ओर ले जाती हैं।

इस प्रकार अनेक तत्त्वों से परिपूर्ण कथांश बुद्धि, चमत्कार और कौतूहल के वातावरण से युक्त है। इनमें केवल कल्पना ही नहीं है, अपितु कथन की सजीवता, मनोरंजन की प्रधानता एवं परम्पराओं का सुन्दर विश्लेषण भी है।

५. मनोरंजन

कौतूहल और मनोरंजन के बिना कथा का विकास हो ही नहीं सकता। इस प्राचीन कथा ग्रन्थ में जिज्ञासा के साथ कथा का प्रारम्भ होता है और वही मनोरंजन के गुणों को लिए हुए लोकरुचि का कारण बन जाती है। अभयकुमार, मेघकुमार, राजा श्रेणिक, रानी धारिणी आदि के विवेचन में कथाकार केवल उनके गुणों का ही चिन्तन नहीं करता, अपितु कथा को जनमानस तक पहुंचाने के लिए नये-नये मनोरंजन पूर्ण वातावरण को भी उपस्थित करता है। मेघकुमार के समीप एक तरुणी को उपस्थित किया जाता है जो श्वेत, रजतमय निर्मल जल से परिपूर्ण, उन्मत्त हाथी के महामुख के समान आकृति वाले शृंगार को ग्रहण करके खड़ी हुई है।^२ कथाकार किसी भी चित्रण में मनोरंजन से नहीं चूकता है। जिनदत्त के चुटकी बजाने पर मयूरी नृत्य करती है।^३ अन्तः स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि इस प्राचीन कथा ग्रन्थ में चाहे पशु-पक्षी की कथा हो या मानव की सर्वत्र मनोरंजन गुण रसात्मकता लिए हुए विकास को प्राप्त करती है।

६. अमानवीय तत्त्व

साधारणतः इस तत्त्व में ऐसे कार्यों को लिया जाता है जो असम्भव हो। ज्ञाताधर्मकथा में अभयकुमार का कला चातुर्य असम्भव को सम्भव बनाता है। यथा- अभयकुमार पिता की आज्ञापूर्वक असमय में दोहद की पूर्ति करता है अर्थात् जिस समय वर्षा नहीं थी उस समय वर्षा ऋतु का दृश्य उत्पन्न कर देता है। बादलों की गर्जना, बिजली की चमक, दिव्यवर्षा आदि से वर्षा ऋतु का आभास करा देता

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १३/३२.

२. वही, १/१५०.

३. वही, ३/२५.

है।^१ मल्ली नामक अध्ययन में भी असामयिक दृश्यों को प्रस्तुत किया गया है। अकाल में मेघ गर्जना, बिजली चमकना और ताड़ वृक्ष का पिशाचरूप धारण करना आदि भी अमानवीय तत्त्व हैं। ताड़ वृक्ष को पिशाच, उसके पत्तों को डरावना आदि बतलाना इसी बात का संकेत है।^२ चित्रकार द्वारा सामने उपस्थित नहीं होनेवाली मल्लीकुमारी का तथा मनुष्य, पशु-पक्षी और अपद वृक्ष आदि के नहीं होने पर भी उसका उसी रूप में चित्रांकन^३ इस अध्ययन की विशेषता है। माकन्दी अध्ययन में दक्षिण वन का वर्णन अमानवीय तत्त्वों से परिपूर्ण है। दक्षिण दिशा का वनखण्ड दुर्गन्ध से युक्त है व मृत कलेवर के समान है।^४ इसी अध्ययन में जिनपालित और जिनरक्षित को निर्दयी और पापिनी देवी के द्वारा समुद्र में उछालना, दोनों हाथों से जकड़ना आदि अमानवीयता के ही सूचक हैं।^५

७. अंधविश्वास

कथाकार की कथा में शकुन, अपशकुन, जादू-टोना, सम्मोहन, वशीकरण आदि लोक तत्त्वों का समावेश होता है। ज्ञाताधर्मकथा में भी लोकतत्त्वों का समावेश है। धारिणी देवी का मांगलिक महास्वप्नों को देखना^६ स्वप्नवेत्ताओं द्वारा भविष्य का कथन करना^७ आदि स्वप्न से सम्बन्धित विश्वासों की पुष्टि करता है। बलिकर्म और कुलदेवता की पूजा भी लोककथा को पुष्ट करते हैं।^८ अभय कुमार की देवाराधना मनोगत संकल्प से युक्त होती है।^९ लोकाचार, सूतक, नाग प्रतिमाओं तथा वैश्रमण प्रतिमाओं^{१०} से फल-प्राप्ति की इच्छा का विवेचन और अधन्य, पुण्यहीन, कुलक्षणा एवं पापिनी भद्रा के द्वारा पुत्र या पुत्री की प्राप्ति के पश्चात् पूजा करने, पर्व के दिन दान देने, द्रव्य के लाभ का हिस्सा देने और आराध्यदेव की अक्षयनिधि में वृद्धि करने का संकल्प लेना^{११} आदि अंध धारणा के ही परिचायक हैं। लोकविश्वास के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(क) जातिकर्म, जागरिका, चन्द्र-सूर्य दर्शन^{१२} आदि क्रियाएँ।

(ख) दैनिक कार्य, असण, खान, पान आदि द्वारा सम्मान, बन्धुजनों को निमंत्रण,

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १/७९.

२. वही, ८/६१-६२.

३. वही, ८/९७-९८.

४. वही, ९/३२.

५. वही, ९/५०.

६. वही, १/१८.

७. वही, १/४०.

८. वही, १/४२.

९. वही, १/६७.

१०. वही, २/२०.

११. वही, २/११-१२.

१२. वही, १/९३, ९५, ९६, ९७.

धायकर्म, नामकरण, पालने में सुलाना, पैरों से चलाना, चोटी रखना^१ आदि संस्कार लोक विश्वासों से पूर्ण हैं।

- (ग) अलंकारों को ग्रहण करना^२
 (घ) देवों के आगमन पर आसन चलायमान होना^३
 (ङ) पोतवहन में भग्न होना^४

इस प्रकार मानव समाज में प्रचलित अनेक विश्वासों का ज्ञाताधर्म की कथाओं में उल्लेख है।

८. हास्य-विनोद

ज्ञाताधर्म की कथाओं में हास्य-विनोद के तत्त्वों का भी मिश्रण है। इसकी प्रत्येक कथा में किसी न किसी तरह का विनोद भाव देखा जा सकता है। कथाकार ने कथा का प्रारम्भ ही विनोदात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। कथा के प्रारम्भिक चरण के बाद जहाँ कथा विकास को प्राप्त हुई है वहाँ पर हास्य और विनोद दोनों ही उभर कर आ गये हैं। रानी धारिणी के द्वारा देखे गए स्वप्न के फल का विवेचन भी इसी प्रकार का है। यथा— हे देवानुप्रिय! तुमने उदार प्रधान स्वप्न देखा है.....तुम्हें, स्वप्न देखने से अर्थ लाभ भी प्राप्त होगा और पुत्र लाभ भी।^५ इसमें कल्याण की भावना के साथ हास्य विनोद भी है। विजय चोर के प्रसंग में गिद्ध के समान मांसभक्षी बालघातक और बालहत्यारा^६ सम्बोधित करना हास्य का कथन करनेवाला है। अण्डक अध्ययन में वनमयूरी के अण्डे को हिलाने-चलाने के प्रसंग से कहा गया कि यह मयूरी का बच्चा मेरी क्रीड़ा करने योग्य न हुआ।^७

९. उपदेशात्मकता

ज्ञाताधर्मकथा में प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही प्रकार के उपदेशात्मक दृष्टिकोण देखने को मिलते हैं। कथाकार ने किसी उपदेश विशेष के उद्देश्य से जनजीवन को सुखी एवं समृद्धशाली बनाने का प्रयास किया है। उन्होंने पात्र चरित्र-चित्रण, घटनाक्रम एवं कथानक तत्त्वों के अन्तर्गत ही जीवन की अनुभूतियों को अभिव्यक्त कर दिया है जिसमें लोकरुचि, लोकजीवन एवं लोकसांस्कृतिक के साथ-साथ सिद्धान्त,

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १/९८.

२. वही, ५/२३.

३. वही, ८/१६४

४. वही, ९/१४.

५. वही, १/२१.

६. वही, २/३०.

७. 'अहो णं ममं एस कीलावणं ण जाण' — वही, ३/१९.

धर्म एवं जीवन दर्शन का आभास भी होता है।

ज्ञाताधर्म की कथाओं में लोककल्याण की भावना है। उत्कृष्टज्ञात अध्ययन में महावीर के शिष्य आर्य सुधर्मा के ज्ञान, विनय, सत्य, शौर्य, चारित्र^१ आदि उदार आदर्शों का निरूपण उपदेशात्मक रूप में ही किया गया है। इसी अध्ययन में जम्बूस्वामी की जिज्ञासा को शांत करते हुए आर्य सुधर्मा ने कहा है कि गुरु उपदेश के बिना ज्ञान सम्भव नहीं, परन्तु कुछ ऐसे पुरुष भी होते हैं जो स्वयं ही बोध को प्राप्त हो जाते हैं।^२ धन्य की प्रव्रज्या में निर्ग्रन्थ प्रवचन की प्रतीति को उपदेशात्मक रूप में ही व्यक्त किया गया है। साथ ही यह कहा गया है कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र को वहन करने के अतिरिक्त व्यक्ति का अन्य कोई प्रयोजन नहीं होता।^३

ज्ञाताधर्म की प्रत्येक कथा उपदेशजन्य है। कथाकार ने कहीं अण्डक को उपदेश का माध्यम बनाया है तो कहीं कर्म-सिद्धान्त का बोध कराने के लिए निर्जाव तुम्बक को, कहीं जलचर जीव कूर्म के माध्यम से संयत और असंयत भाव को समझाया है तो कहीं पाँच धान्य कणों को महाव्रतों का प्रतीक बतलाया है। जो व्यक्ति या साधु-साध्वी पंचमहाव्रत को स्वीकार कर पंचधान्य कणों की तरह वृद्धि करते हैं वे अधिक से अधिक आत्मा को निर्मल बनाते हैं।^४ ऐसे ही बोधजन्य एवं उपदेशात्मक भावों से परिपूर्ण कथाएँ अहिंसा, सत्य, शील, तप, ध्यान, ज्ञान, समत्वभाव आदि की स्थापना करती हैं।

१०. पारिवारिक जीवन चित्रण

ज्ञाताधर्म की ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथाओं में माता-पिता, पुत्र-पुत्री, राजा-प्रजा, शत्रु-मित्र आदि के दृश्य पारिवारिक जीवन का चित्रण करते हैं। परिवार की सर्वव्यापी स्थिति का चित्रण प्रारम्भिक कथा में पूर्ण रूप से देखा जा सकता है जिसमें अभयकुमार का जन्म, माताधारिणी की मनोकामना, राजा श्रेणिक का आदेश, पुत्र द्वारा प्रतिज्ञा पालन, जन्म उत्सव, नामकरण, पुत्र लालन-पालन, कला शिक्षण, गुरु का आदर्श स्वरूप, कंचुकी का प्रतिवेदन, माता-पिता का संकल्प, माता का शोक, पुत्र का माता के प्रति स्नेहभाव, राज्य-व्यवस्था, विवाह, तपश्चरण आदि सभी कुछ समाहित है। इसी अध्ययन में भावात्मक घनिष्ठता का भी बोध होता है। द्वितीय संघाट अध्ययन

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १/४.

२. वही, १/४.

३. "नन्नृत्य णाण दंसण-चरित्ताणं वहणयाए" वही, २/५३.

४. वही, ७/३१.

में सन्तान के प्रति कर्तव्य क्या होता है? क्या नहीं? इसकी शिक्षा भी दी गयी है तथा यह निर्देशित किया गया है कि समाज में चाहे चोर हो या व्यापारी सभी को एक-दूसरे के काम में सहभागी^१ बनाना चाहिए। समाज में मित्र एवं गणिका आदि का क्या कर्तव्य होता है? क्या नहीं? इसका बोध अण्डक अध्ययन में कराया गया है। मल्ली नामक अध्ययन में साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति के साथ-साथ समाजीकरण का बोध अत्यन्त रोचक है। माकन्दी नामक अध्ययन से कथाकार ने व्यापारिक उद्देश्य को स्पष्ट किया है तथा इसी में परिवार के प्रमुख गुरु माता-पिता की आज्ञा न मानने के परिणाम को भी दर्शाया है।^२ इसी तरह से कथाकार ने अपनी कथाओं में परिवार के विभिन्न चित्र उपस्थित किए हैं। तेतलीपुत्र नामक चौदहवें अध्ययन में बालिका के सम्पूर्ण जीवन को चित्रित करते हुए पोट्टिला को कुशल गृहणी तथा माता की संज्ञा से विभूषित किया गया है। पोट्टिला पुत्र की तरह राज्य को भी सुरक्षित रखती है परन्तु वही पोट्टिला अपने प्रियतम के लिए प्रिय होते हुए भी अप्रिय बन जाती है। ऐसे कई पारिवारिक विचार, मनमुटाव आदि इन कथाओं में समाहित हैं। आत्मघात जैसे क्रूर दृश्य भी इन कथाओं में हैं।^३

११. साहस निरूपण

ज्ञाताधर्म की कथाओं में साहसिक कार्य करने की अपूर्व क्षमता को भी दर्शाया गया है। विपत्ति के समय में अभयकुमार द्वारा माता धारिणी के दोहद की रक्षा करना महान साहसिक कार्य है।^४ अभयकुमार का कला ज्ञान एवं प्राप्त शिक्षा जगत-प्रसिद्ध है। वह औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा, पारिणमिकी बुद्धि का धनी था, फलतः वह सभी प्रकार की समस्याओं का तत्काल समाधान करता था और मान-सम्मान से गौरवान्वित होता था।^५ रोहिणी उस समय आश्चर्य को उत्पन्न कर देती है जब उसके ससुर उससे पाँच धान्य कण मांगते हैं, वह उस समय विनम्र भाव से कहती है हे तात! मुझे वाहन दें जिस पर लादकर मैं उन पाँच धान्य कण को लौटा सकूँ।^६ महाबल की तपस्या का क्रम महान पुरुषार्थ की ओर संकेत करता है। महाबल सिंह की तपस्या के समान ही सिंह भी तप करता है, जिससे वह अत्यन्त तेजस्वी बन जाता है।^७

१. ज्ञाताधर्मकथांग २/३९.

२. वही, ९/५.

३. वही, १४/४९.

४. वही, १/६९.

५. वही, १/१५.

६. वही, ७/२८.

७. वही, ८/१५ से २३.

इस प्रकार ज्ञाताधर्म कथा में लोककथा के कई प्रसंग घटनाक्रम में आये हैं। कथाकार ने लोकाचारों, लौकिक विश्वासों एवं लोकचिन्ता द्वारा आश्चर्यजनक घटनाओं को उपस्थित किया है। देवी-देवता आदि दिव्य मानवीय विश्वासों का स्वरूप भी इस कथा ग्रन्थ में आया है। पशु-पक्षियों से सम्बद्ध लोक रुढ़ियाँ, वैज्ञानिक अभिप्राय, सामाजिक परम्परा, रीति-रिवाज एवं परिस्थितियों के चित्रण से भी लोक का स्वरूप स्पष्ट हुआ है। इसमें आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक रुढ़ियाँ भी घटनाक्रम में आई हैं। शुभ-अशुभ दोनों ही प्रकार के स्वप्न घटित घटनाओं की सूचना देते हैं एवं भविष्यवाणियाँ भी भावी संकेत को स्पष्ट कर देती हैं। इस प्रकार अनेक रुढ़ियों का समावेश धार्मिक कथानक में हो जाना कथानक की गतिविधि को नया स्वरूप प्रदान करती है।

१२. जनभाषा के तत्त्व

ज्ञाताधर्मकथा में सामान्यतः अर्धमागधी भाषा का प्रयोग हुआ है। परन्तु कहीं-कहीं पर प्रचलित जनभाषा के रूप में देशी शब्द भी आ गए हैं। यद्यपि यह लोककथा का ग्रन्थ नहीं है फिर भी जन सामान्य में प्रचलित भाषा ने इसमें स्थान अवश्य बनाया है। देशी भाषा के उदाहरणों को भाषागत विवेचन में दिया गया है। यथा- हील^१ हीनता के लिए तथा बोल^२ कलकल आदि के लिए प्रसिद्ध है।

१३. सरल अभिव्यंजना

ज्ञाताधर्मकथा में सर्वत्र सरल अभिव्यंजना प्रस्तुत की गई है। इसकी प्रत्येक कथा एवं चरित्र-चित्रण में सुन्दर विचारों एवं भावों को अभिव्यक्त करने के लिए सरल मार्ग अपनाया गया है। यथा- अहासुहं देवाणुप्पिया। मा पडिबंध कहेह।^३ हे देवानुप्रिय! प्रतिबंध मत करो। एवं संपेहेइ संपेहिता कल्लं जावा। (७/५) तुमं णं पुत्ता। (७/६) बुज्झाहि भयवं। लोगनाहा। (८/१६५) आदि प्राकृत की शब्दावलियाँ सरल अभिव्यंजना को ही अभिव्यक्त करती हैं।

१४. परम्परा की अक्षुण्णता

ज्ञाताधर्म की कथाएँ लोक प्रचलित कथाएँ नहीं हैं परन्तु विषय की अनुभूति से ऐतिहासिक और पौराणिक परम्पराओं का बोध होता है। कथानक में वर्णित विभिन्न प्रसंगों में लोकजीवन के आदर्श और जनविश्वासों की अक्षुण्ण परम्पराएँ देखी जा सकती हैं। इसमें घटना चमत्कार, मंत्र-तंत्र आदि की अभिव्यक्ति से लोककथा के

१. ज्ञाताधर्मकथांग, ३/२०.

२. वही, ८/५७.

३. वही, १/१९५.

तत्त्वों की कमी नहीं हुई है।

ज्ञाताधर्म में आलंकारिकता

सफल कलाकार की कला सुन्दर भावों, सुन्दर विचारों, सुन्दर दृश्यों एवं प्रांजल भाषा से ही व्यक्त होती है। परन्तु अलंकार के बिना वर्णन, भावाभिव्यक्ति एवं चित्रात्मक विवेचन रमणीयता को प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए प्रत्येक कथाकार सीधे सादे शब्दों की अपेक्षा आलंकारिक शब्दों के प्रयोग से कथा को प्रभावी बनाता है और अपनी अनुभूति से चमत्कार, आकर्षण, स्वरो की मंजुलता, शब्दों की मधुरता, वाणी की प्रेषणीयता आदि से अशिक्षित एवं निरक्षर लोगों में भी अपना स्थान बना लेता है। ज्ञाताधर्मकथा में मात्र धार्मिक एवं सामाजिक कथायें ही नहीं हैं अपितु साहित्यिक झलक से अलंकृत कथायें भी हैं।

कथाकार का मूल उद्देश्य जो भी हो परन्तु यह निश्चित है कि उसने वर्णन प्रसंगों में अलंकृत शब्दों से कथा को रोचक बनाया है। कथा कहने की शैली में प्राचीन है फिर भी नवीन प्रयोगों की दृष्टि से किसी माने में पीछे नहीं है। 'तेणं कालेणं तेणं समएणं' आदि जैसे प्रयोग प्रारम्भ में ही पद लालित्य से व्यक्ति को प्रभावित कर देते हैं। वर्णन प्रसंगों, प्रकृति प्रत्यय, जिज्ञासा, समाधान आदि से युक्त वातावरण उपस्थिति करके व्यक्ति को प्रभावित करना ज्ञाताधर्म की प्रमुख विशेषता है। पात्र चरित्र-चित्रण, प्रकृति वर्णन, तत्त्व विवेचन, सत्य निरूपण, संयम प्रतिपादन, व्रत, महात्म्य आदि में कहीं रूपक, कहीं उत्प्रेक्षा, कहीं दृष्टान्त और कहीं उपमा अलंकारों को देखा जा सकता है।^१

ज्ञाताधर्मकथा के कथाकार ने चरित्र-चित्रण, प्रकृति वर्णन आदि में उपमा अलंकार का विशेष प्रयोग किया है। यथा— करयलमलिय व्व चंपगमाला,^२ गिद्धे विव आभिसभक्खी,^३ लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव नि-स्साए, गंगा इव महानदी पडिसोयगमणा, महासमुद्धो इव भुयाहिं दुत्तरे, तिक्खं कमियव्वं गुरुअं लंबेयव्वं असिधार व्व संचरियव्वं^४ इत्यादि उपमा अलंकारों^५ से अलंकृत है।

इसके प्रथम श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन दृष्टान्त अलंकार की शैली को लिए हुए हैं। संघाट में सार्थवाह और चोर का दृष्टान्त अण्डक में मयूरी के अण्डे

१. इन अलंकारों के उदाहरण भाषा विश्लेषणवाले अध्ययन में विस्तार से दिये गये हैं।

२. ज्ञाताधर्मकथांग १/४५.

३. वही, २/३०.

४. वही, १/१२८.

५. वही, १/१३५.

का दृष्टान्त, कूर्म में दो कूर्मों और दो शृगालों के उदाहरण, शैलक में अरिष्टनेमि, थावच्चा आदि का निरूपण, रोहिणीज्ञात में चार पुत्रवधुओं और पाँच धान्यकणों से जीव जगत का बोध, मल्ली अध्ययन के प्रसंग से नारी की महानता, माकन्दी के दृष्टान्त से वनखण्ड की विशेषता, चन्द्र के माध्यम से हीनता और श्रेष्ठता आदि ऐसे ही सभी अध्ययन दृष्टान्त से परिपूर्ण हैं।

कथाकार के वाक्य प्रयोगों में अनुप्रास अलंकार तो सर्वत्र ही हैं। कथाकार एक ही तरह के अनेक शब्दों के प्रयोग करने में अत्यन्त निपुण है। यथा-
खणामाणा-खणामाणा पोक्खरिणी जाया^१ जय-जय णंदा। जय-जय भद्दा। जय णंदा।^२

इस तरह गद्यात्मक कथा में अलंकारों का प्रयोग भी शब्द एवं पदलालित्य की सूचना देता है। कथाकार ने बहुधा वीप्सात्मक प्रयोग को भी अपनाया है जिससे शब्द और पद में अधिक लालित्य आ गया है। यथा- भुंज्जो-भुंज्जो अणुवूहई।^३

ज्ञाताधर्म में रस योजना

वाक्यं रसात्मकं काव्यम् अर्थात् रसात्मक वाक्य काव्य में रमणीयता उत्पन्न करते हैं। रमणीयता का अर्थ ही रसानुभूति है। यह ज्ञाताधर्म में सर्वत्र दिखाई पड़ती है।

साहित्य में रस को काव्य का प्राण माना गया है। काव्य का उद्देश्य भी यही है। रस की अनुभूति व्यक्ति को तन्मय, शरीर को पुलकित, वचनों को गद्गद और मन को आनन्दित करती है। ज्ञाताधर्म एक गद्यात्मक कथा काव्य होते हुए भी रसात्मकता की अनुभूति से परिपूरित है।

काव्यानुशासन में रस के निम्न भेद माने गए हैं:—

१. शृंगार रस	रति या प्रेम
२. हास्य रस	हास्य या हंसी
३. करुण रस	शोक
४. रौद्र रस	क्रोध
५. वीर रस	उत्साह
६. भयानक रस	भय

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १३/१२.

२. वही, १/१५४.

३. वही, १/४१.

७. वीभत्स रस	घृणा
८. अद्भूत रस	आश्चर्य
९. शान्त रस	शम या निर्वेद

ज्ञाताधर्म के रसात्मक भावों से परिपूर्ण कुछ दृष्टान्त इस प्रकार हैं—

शृंगार रस

इसके दो पक्ष हैं— संयोग शृंगार और वियोग शृंगार। संयोग शृंगार के रूप में धारिणी के नख, शिख, मुख आदि की शोभा को लिया जा सकता है। कथाकार ने नख से शिख तक का वर्णन अलंकृत भाषा में इस प्रकार किया है— उसके हाथ-पैर बहुत सुकुमार, शंक-चक्र आदि शुभ लक्षणों से युक्त, चन्द्रमा से युक्त सौम्य आकृति, मध्यभाग मुट्टी में आ सकने वाला त्रिवलीयुक्त है, उसका मुख-मण्डल कार्तिक पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान निर्मल, गंडलेखा कपोल पत्रवल्ली कुंडलों से सुशोभित तथा उसका सुशोभन वेष शृंगार रस का स्थान ही प्रतीत होता था।^१ अन्यत्र भी शृंगार रस का संयोग पक्ष है। मल्ली की माता एवं मल्ली के जन्म का वर्णन शृंगारिक रूप में ही किया गया है।^२ द्रौपदी नामक सोलहवें अध्ययन में भद्रिका की बालिका को हाथी के तालु के समान सुकुमार और कोमल कहा गया है।^३ इसी अध्ययन में द्रौपदी के रूप सौन्दर्य^४ का वर्णन अलंकृत रूप में किया गया है।

वियोग शृंगार की झलक उत्क्षिप्तज्ञात नामक प्रथम अध्ययन में मिलती है। रानी धारिणी की दोहद पूर्ति न होने पर शोक संतप्त होना स्वाभाविक था। उस समय का वर्णन कुछ इस प्रकार है— वे मानसिक संताप से युक्त शुष्क हो गयीं, भूख से व्याप्त मांस रहित हो गयीं, भोजन-पान आदि का त्याग करने से श्रान्त हो गयीं उनके मुख और नयन नीचे झुक गए, पुष्प-गंध-माला, अलंकार एवं हार आदि रुचि रहित हो गए, उन्होंने जल क्रीड़ा आदि का परित्याग कर दिया।^५

हास्य रस

जहाँ विकृत आकार, वाणी, वेश और चेष्टा आदि देखने से हास्य या हँसी उत्पन्न हो वहाँ हास्य रस होता है। भद्रा कहती है कि तुम पुत्र दो या पुत्री या नाग, भूत यक्ष आदि की पूजा करो।^६ ऐसे वाक्यों से हँसी आना स्वाभाविक है।

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १/१६.

२. वही, ८/३२.

३. वही, १४/३५.

४. वही, १६/१२२.

५. वही, १/४५.

६. वही, २/१४.

करूण रस

बन्धु-विनाश, अपघात, द्रव्य-नाश आदि से जो वेदना उत्पन्न होती है वह करूण रस है। ज्ञाताधर्मकथा में करूण रस का कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में अवश्य समावेश हुआ है। यथा- मेघकुमार के अन्तर्मन में दीक्षा के भाव उत्पन्न होने पर माता धारिणी जल की धारा, निर्गुडी के पुष्प और टूटे हुए मुक्तावली हार के समान अश्रु टपकाती हैं, रोती हैं क्रन्दन करती हैं और विलाप करती हैं।^१ इसके अतिरिक्त भी इसी प्रसंग में मेघकुमार को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि जिस समय तुम हाथी की पर्याय में थे उस समय तुम वहाँ जीर्ण, जरा से जर्जरित, व्याकुल, भूखे, प्यासे थे।^२ यह भी करूण रस का एक उदाहरण है।

रौद्र रस

जहाँ विरोधी दल की छेड़खानी, अपमान, उपकरण, गुरुजन-निंदा तथा देश और धर्म के अपमान आदि से प्रतिशोध की भावना जागृत हो वहाँ रौद्र रस होता है। सुंसुमा अध्ययन में सुंसुमादारिका का सिर काटने वाला दृश्य^३ रौद्र रस को इंगित करता है।

इसी तरह अन्य रसों का भी कथाओं में समावेश हुआ है। वीभत्सरस के दृश्य मल्ली अध्ययन में कई जगह दिखाई पड़ते हैं। यथा- गाय के मृत कलेवर, कुत्ते के मृत कलेवर, सिंह आदि के मृत कलेवर के समान दुर्गन्धपूर्ण अशुचिमय यह प्रतिमा है।^४ सुंसुमा अध्ययन में वमन झरने^५ को अशुचिपूर्ण दर्शाया गया है।

रस योजना में कथाकार ने वस्तु की सुन्दरता, कुरूपता, मधुरता, कटुता, वीभत्सता आदि का उक्ति वैचित्र्य से कथन करके रमणीयता की अनुभूति करा दी है। यही नहीं अपितु कथाकार ने रसानुभूति के भावों से परिपूर्ण प्रसंगों को उपस्थित करके मानव के लिए कर्तव्य और अकर्तव्य का बोध भी कराया है।

ज्ञाताधर्मकथांग में लोकोक्तियाँ एवं सूक्तियाँ

लोकोक्ति का अर्थ है- जनसाधारण के दैनिक अनुभवों से उपलब्ध शक्तियों को उक्ति वैचित्र्य के द्वारा व्यंजित करना। लोकोक्ति वाक्यात्मक होती है जिसका अर्थ उचित सन्दर्भ में ही किया जाता है। ज्ञाताधर्मकथा में भी अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए कहीं-कहीं पर लोकोक्तियों का प्रयोग किया गया है। जैसे प्रभात

१. ज्ञाताधर्मकथांग १/१५८.

२. वही, १/१६८.

३. वही, १२/१४.

४. वही, १८/३०.

५. वही, १८/३२.

के सूर्य के प्रकाश के लिए लाल अशोक की कांति, पलाश के पुष्प, तोते की चोंच, चिरमी के अर्द्धभाग, दुपहरी के पुष्प, कबूतर के पैर, कोयल के नेत्र, जासोद के फूल, जाज्वल्यमान अग्नि, स्वर्णकलश तथा हिंगलू के समूह की लालिमा से भी अधिक लालिमा। जिसकी श्री सुशोभित हो रही है ऐसा सूर्य क्रमशः उदित हुआ है। इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से लोक प्रचलित अनुभवों को आधार बनाकर सूर्य के अरुणोदय को व्यक्त किया गया है।^१ करतलाहते विव तैदूसए.....ठाणभट्टा आसकिसोरी णिगुंजमाणीविव गुरुजणादिट्टावराहा सुयण कुलकन्नगा धुम्ममाणीविव वीची पहार-सत-तालिया गलिय लंबणाविव,^२ असिपत्ते इ वा जावं मुम्मुरे इ वा,^३ पाएहि सीसे पोट्टे कायंसि^४ इत्यादि लोकोत्तियाँ पात्र की वस्तुस्थिति के चित्रण में सहायक है।

सूक्तियाँ

ज्ञाताधर्म में सूक्ति वचनों का सर्वत्र प्रयोग हुआ है। जिनसे वस्तु-स्वभाव, जीवन और जगत के स्वरूप का भी बोध होता है। कथाकार ने कथन की पुष्टि हेतु संयम आचरण प्रतिपादन, मनुष्य व्यवहार एवं दशा, प्रकृति-चित्रण आदि में नीति विशेष का जो प्रयोग किया है वह कथा के हृदय को सरस बनाने में सफल रहा है। यही नहीं कथाकार ने इस कथा ग्रन्थ में धार्मिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक आदि विषयों के औचित्य को दर्शाने के लिए जो पद-विन्यास किए हैं उनमें भी सूक्तियों का प्रयोग हुआ है। सूक्तियों का वर्गीकरण भी किया जा सकता है परन्तु यहाँ विस्तार भय से कुछ उदाहरण देकर ही सूक्तियों के सार को दर्शाया जा रहा है। यथा— 'सच्चे णं एसमट्टे जं णं तुब्भे वयह'^५ अर्थात् आपका कहना सत्य है, असत्य नहीं। 'अजियाइं जिणाहि इंदियाइं'^६ अर्थात् तुम नहीं जीती हुई पाँचों इन्द्रियों को जीतो। 'कुमुदेइ वा पंके जाए जले संवडिडए'^७ अर्थात् कुमुद कीचड़ में उत्पन्न होता है और जल में वृद्धि पाता है। 'जीवा वड्डंति वा हायंति वा'^८ जीव बढ़ते हैं और हानि को भी प्राप्त होते हैं।

उक्त कई प्रकार की सूक्तियाँ हैं। ज्ञाताधर्मकथा में दृष्टान्त प्रधान सूक्तियों की प्रधानता है। यथा— 'बहुनेहावगाढं बिलमिव पन्नगभूएणं'^९ सर्प सीधा ही बिल में प्रवेश करता है। 'अहो णं इमे फरिहोदए अमणुण्णे'^{१०} ऐसा अमनोज्ञ सर्प का मृतक

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १/२८.

२. वही, ९/१०.

३. वही, १६/४६.

४. वही, १/१६१.

५. वही, १/२४.

६. वही, १/११४.

७. वही, १/५६.

८. वही, १०/४.

९. वही, १६/१५.

१०. वही, १२/११.

शरीर ही हों सकता है। 'खंतस्स दंतस्स जिइंदियस्स एतो एगमविण भवइ'^१ 'धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वओ'^२ अणगार की धर्म रुचि सब तरह से होती है। 'जं जलणाग्नि जलंते, पडइ पयंगो अबुद्धिओ'^३ बुद्धिहीन पतंगा जलती हुई अग्नि में गिरता है। 'वहबंध तित्तिरो पतो'^४ पिजरे में बंधे तितर वध और बंधन को प्राप्त होते हैं। 'जं खणइ मत्थयं कुंजरस्स लोहंकुसो तिक्खो'^५ पराधीन हाथी महावत के लोहे के अंकुश को सहन करता है। ऐसी अनेक दृष्टान्त प्रधान सूक्तियाँ इस आगम में हैं।

मुहावरे

ज्ञाताधर्म में मुहावरों के प्रयोग भी प्राप्त होते हैं। मुहावरे भाषा को काव्यात्मक या रोचक बनाने वाले अद्भुत साधन हैं। जब कोई संज्ञा, विशेषण या क्रिया आदि मुख्यार्थ के अतिरिक्त अन्य अर्थ में प्रसिद्ध हो जाते हैं तब वे मुहावरे कहलाने लगते हैं। मुहावरों में वस्तु तथ्य एवं घटनाएँ समाहित रहती हैं। इसकी व्यंजकता के कारण अभिव्यक्ति रुचिकर एवं आकर्षक बन जाती है। मुहावरों के कई प्रकार कहे गए हैं, यथा— वक्रक्रियात्मक, वक्रविशेषात्मक, अनुभवात्मक, निदर्शनात्मक, प्रतीकात्मक, रूपात्मक, उपमात्मक^६ इत्यादि।

ज्ञाताधर्मकथा में मुहावरों का प्रयोग लाक्षणिक और व्यंजक दोनों ही रूपों में हुआ है। कथाकार ने पात्रों के भावावेश, मनोभाव एवं मनोदशा को प्रभावशाली बनाने के लिए कहीं-कहीं पर जो अभिव्यंजना की है वह हृदयस्पर्शी है। यथा- सरिसे णं तुमं पउमणाभा। अर्थात् तुम कुएं के मेढक के सदृश हो। दोवईए णं देवीए छिन्नस्स वि पायंगुट्टयस्स अयं तव ओरोहे।^७ अर्थात् देवी के कटे हुए पैर के अंगूठे की सौवीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकता। दोवइं साहित्थं उवणेमि।^८ अर्थात् द्रौपदी को हाथो-हाथ ले आता हूँ। बुज्झाहि भयवं! लोगनाहा!^९ अर्थात् बुझो तो बोध पाओ। तए णं से सामुद्दए दददुरे तं कुवदददुरं।^{१०} अर्थात् जो कुएं का मेढक होता है उसको समुद्र का मेढक कहना। पाएहिं सीसे पोट्टे कायंसि।^{११} पैर की पैर से

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १४/५१.

२. वही, १६/१९.

३. वही, १७/३०, गाथा ४

४. वही, १७/३०, गाथा २.

५. वही, १७/९०, गाथा १०.

६. जैन आराधना, जयोदय महाकाव्य का शैलीवैज्ञानिक अनुशीलन, पृ० १९, प्रकाशक-महावीर विहार गंज वासोदा १९९४.

७. ज्ञाताधर्मकथांग १६/१४८.

८. वही, १६/१६५.

९. वही, ८/१६५.

१०. वही, ८/१२०.

११. वही, १/१६१.

टक्कर हुई।

उक्त उदाहरणों एवं विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञाताधर्मकथां में सिद्धान्तों की पुष्टि करने के लिए कहीं लोकोक्तियाँ, कहीं सूक्तियाँ, कहीं मुहावरें एवं कहीं दृष्टान्त आदि देकर अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाया गया है। मानव जीवन के व्यवहार, लोकचित्रण, लोक विरूपण, लोकाचरण आदि के समाधान के लिए जिस शैली को अपनाया है वह शैली ही रोचक, अभिव्यंजक और घटनाक्रम की उद्घाटक बन गई है। प्रसंगवश जहाँ नीति विशेष के प्रतिपादन द्वारा कथा को विकसित किया गया है वहाँ पर भी घटनाओं के समाधान हेतु लोकोक्तियों और सूक्तियों का प्रयोग किया गया है।

ज्ञाताधर्म का साहित्यिक स्वरूप बिम्ब-प्रतिबिम्ब से जुड़ा हुआ है इसलिए यह कहने में संकोच नहीं हो रहा है कि इसमें वक्रता, व्यंजकता, ध्वनि विज्ञान, मुहावरें, प्रतीक, लोकतत्त्व, आलंकारिक विन्यास, रसानुभूति, वर्णविन्यास, चरित्र-चित्रण, जीवन दर्शन, जीवन पद्धति आदि विषय का सांगोपांग चित्रण एक स्वतंत्र शोध-प्रबन्ध की अपेक्षा रखता है। यही नहीं अपितु इस कथा में जितनी कथाएँ हैं उन सभी का अलग अलग दृष्टिकोण भी है जो जीवन के विविध पक्षों का सजीव चित्रण करता है। यदि इसके साहित्य स्वरूप को ध्यान में रखकर अध्ययन का विषय बनाया गया तो निश्चित ही पुराण, इतिहास के अतिरिक्त भी जैन दर्शन के प्रमुख अंग भी इसकी महनीयता का व्याख्यान कर सकेंगे। किन्तु कथा के मूल में जो भी उद्देश्य है वह साहित्यिक अध्ययन से ही सामने आ सकता है। इसी विचार को ध्यान में रखकर साहित्यिक विश्लेषण को विशेष रूप में प्रस्तुत करने का जो प्रयास किया गया है वह अवश्य ही साहित्य की अमूल्य निधि को सुरक्षित रखने में सहायक होगा।



षष्ठ अध्याय

ज्ञाताधर्मकथांग का भाषा विश्लेषण

भाषा एक वैचारिक शक्ति है जो आत्मबुद्धि से अर्थों को जानकर मन के अनुकूल विवक्षा से प्रेरित तथा मन और शरीर की शक्ति पर वायु की तरह जोर डालती है।^१ इसी से भाषा या विचार निःसृत होता है।

भाषा भौगोलिक परिस्थितियों के कारण विकास एवं विस्तार को प्राप्त होती है। उसी से अनेक भाषाएं बनती हैं तथा भाषा परिवार, उपभाषा परिवार एवं बोलियों आदि का जन्म होता है। विश्व की भाषाओं के विषय में भाषा वैज्ञानिकों का यही विचार है। उन्होंने भाषा को एक परिवार के रूप में स्वीकार किया है। जिनके भारोपीय परिवार, सेमेटिक परिवार, हेमेटिक परिवार आदि बारह परिवारों का उल्लेख किया गया है इन्हीं परिवारों में से एक महत्वपूर्ण परिवार भारोपीय परिवार है। इसी परिवार के अन्तर्गत भारतीय आर्य भाषा परिवार है जिसे अत्यन्त समृद्ध माना गया है। इसी परिवार के साथ प्राकृत भाषा का सम्बन्ध है। विद्वानों ने भारतीय आर्य शाखा परिवार को निम्न प्रकार से विभक्त किया है।^२

(क) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल (१६०० ई.पू.- ६०० ई.पू.)

(ख) मध्यकालीन आर्य भाषा काल (६०० ई.पू. १००० ई.)

(ग) आधुनिक आर्य भाषा काल (ई. १००० वर्तमान समय)

क. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल

वैदिक युग के साहित्य को इस परिवार के अन्तर्गत रखा जाता है। प्रारम्भिक काल में साहित्य की रचना जिस भाषा में की जाती थी उसे 'छन्दस्' कहते हैं। यही प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का प्रारम्भिक रूप था। वैदिक भाषा में कई प्रकार की भाषाओं के ध्वन्यात्मक शब्द, समसामयिक प्रवृत्तियाँ, प्रकृति एवं प्रत्यय समाहित हैं। इसी कारण वैदिक काल की भाषा में जो शब्द विद्यमान थे वे जनभाषा या

१. पाणिनीय शिक्षा श्लोक ६, चौखम्बा संस्करण, १९४८.

२. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २.

देश्यं शब्द थे जिन्हें भाषा की विशेषताओं के आधार पर निम्न नाम दिया गया—

(क) उदीच्य या उत्तरीय-विभाषा

(ख) मध्यदेशीय-विभाषा

(ग) प्राच्य या पूर्वीय विभाषा

वैदिक या छांदस् भाषा के साथ प्राकृत भाषा का सम्बन्ध है क्योंकि जिन वैदिक भाषा के प्रयोगों को विभाषा कहा गया है वे प्राकृत की प्रकृति से पूर्णतः मिलते-जुलते हैं। अतः भाषा की आधारशिला पर प्राकृत भाषा को वैदिक भाषा के समकालीन कहा जा सकता है।

ख. मध्यकालीन आर्य भाषा काल

वेदों में प्राकृत के तत्त्व हैं यह निर्विवाद है। विचारकों ने वैदिक भाषा में समागत शब्दों को जनभाषा का प्रयोग बतलाया और उसी के आधार पर जनभाषा के स्वरूप और प्रकृति को भी निर्धारित किया। जनभाषा और प्रकृति के तत्त्वों से जुड़ी हुई भाषा को प्राकृत भाषा कहा जा सकता है। डॉ० पी०डी० गुणे ने इस विषय में कहा है—

“प्राकृत का अस्तित्व निश्चित रूप से वैदिक बोलियों के साथ-साथ वर्तमान था। इन्हीं प्राकृतों से परवर्ती साहित्यिक प्राकृतों का विकास हुआ। वेदों एवं पण्डितों की भाषा के साथ-साथ यहाँ तक कि मन्त्रों की रचना के समय भी एक ऐसी भाषा प्रचलित थी जो पण्डितों की भाषा से अधिक विकसित थी। इस भाषा में मध्यकालीन भारतीय बोलियों की प्राचीनतम अवस्था की प्रमुख विशेषताएँ वर्तमान थीं।^१

(ग) आधुनिक आर्य भाषा काल

प्राकृत एवं अपभ्रंश के पश्चात् आर्य भाषा का आधुनिक रूप राजस्थानी, गुजराती, मराठी, सिंधी, बंगला आदि प्रचलित भाषा के अतिरिक्त हिन्दी नामकरण को प्राप्त है। मध्ययुग के पश्चात् अपभ्रंश ने बारहवीं शताब्दी तक अपना स्थान बनाये रखा और इसी के शब्द एवं धातु हिन्दी एवं आधुनिक आर्य भाषाओं में समाहित हो गये।

प्राकृत भाषा का उद्भव एवं विकास

प्राकृत का सम्बन्ध प्राचीन भारतीय आर्यभाषा परिवार से है जिसे उस समय

१. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ७.

एन इन्ट्रोडक्शन टू कम्प्रेटिव फिलोसोफी, पृ० १६३.

की जनभाषा भी कहा गया है। इस विषय में विद्वानों ने कई प्रकार के विचार व्यक्त किये और कहा कि प्राकृत की प्रकृति वैदिक भाषा से मिलती जुलती है। प्राकृत में व्यंजनान्त शब्दों का प्रयोग प्रायः नहीं होता है। संस्कृत में भी अंतिम व्यंजनान्त शब्दों का लोप हो जाता है।^१ हरिदेव बाहरी ने कहा है प्राकृतों से वेद की साहित्यिक भाषा का विकास हुआ, प्राकृतों से संस्कृत का विकास भी हुआ और प्राकृतों से इनके अपने साहित्यिक रूप भी विकसित हुए।^२ इस तरह से प्राकृत के विकास का ज्ञान होता है तथा यह भी ज्ञात होता है कि सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ-साथ भाषा का जो स्वरूप जन-जन में विकसित हुआ और जिसे जनता ने लोक व्यवहार के लिए बोली का माध्यम बनाया वह प्राकृत भाषा ही है। जो भाषा जनभाषा का रूप धारण कर लेती है वही प्राकृत है। कालान्तर में जो भी जनबोली विकसित होगी उसमें भी इसकी परछाई एवं शब्द-प्रयोग अवश्य ही गतिमान होंगे।

प्राकृत भाषा के साहित्य को मध्य भारतीय आर्य भाषा काल के अन्तर्गत रखा गया है। इसके आंतरिक स्वरूप के परीक्षण से यह सिद्ध हुआ कि साहित्य और समाज दोनों ही के अपने-अपने रूप हैं। जो प्रवाह रूप में है वह प्राकृत भाषा है और जो बाहरी रूप है, वह संस्कृत है।^३

प्रयोग की दृष्टि से जब इस पर विचार करते हैं तो यही भाव निकलता है कि प्राकृत जनजीवन से जुड़ी हुई भाषा थी, जिसे युग-युगान्तर से अपनाया जाता रहा और महावीर एवं बुद्ध ने उसे साकार रूप दिया। महावीर एवं बुद्ध के उपदेशों की भाषा जनसाधारण की भाषा थी। जो प्रकृति से जुड़ी हुई जन-जन को प्रभावित करने वाली थी और जो वट वृक्ष की तरह फैलकर आज भी अपने स्वरूप को बनाए हुए है।

'प्राकृत' शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ

प्राकृत का अर्थ प्रकृति है अर्थात् जो जन-जन के शब्दों के अर्थ का बोध कराती है वह प्रकृतिजन्य भाषा प्राकृत है। व्याकरणकारों ने प्राकृत शब्द के कई अर्थ किए हैं।

१. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ७.
एन इन्ट्रोडक्शन टू कम्प्रेटीव फिलोसोफी, पृ० १६३.
२. प्राकृत भाषा और उसका साहित्य, पृ० १३, प्र० राजकमल प्रकाशन दिल्ली.
३. पं. बेचरदास, प्राकृत-भाषा, पृ० १६, प्र. पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी .१९४१.

१. प्राकृतलक्षण में चण्ड ने प्राकृत को प्रकृति-सिद्ध माना है।^१
२. वररुचि ने अपने प्राकृतप्रकाश में प्रारम्भ में प्रकृति को ही महत्त्व दिया है।^२
३. आचार्य हेमचन्द्र ने प्रकृति को संस्कृत माना है, उससे आया हुआ शब्द प्राकृत है और यही तद्भव को व्यक्त करती है।^३
४. मार्कण्डेय ने प्राकृत सर्वस्व में कहा है—
प्रकृतिः संस्कृतम् तत्र भवं प्राकृतमुच्यते।^४
५. धनिक ने प्राकृत के बारे में निम्न विचार व्यक्त किया है—
प्रकृतेः आगतं प्राकृतम्। प्रकृतिः संस्कृतम्।^५
६. संजीवनी टीकाकार वासुदेव ने कहा है—
प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतं योनिः।^६
७. लक्ष्मीधर ने कहा है- प्रकृतेः संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृत मताः।^७
८. वाग्भट्ट ने कहा है— “प्रकृतेः संस्कृताद् आमृतं प्राकृतम्”।^८

मूलतः उक्त व्याकरणकारों की दृष्टि में प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है यह अर्थ प्रतीत होता है, परन्तु प्रकृति को ध्यान में रखकर यही कहा जा सकता है कि संस्कृत युक्त शब्द या संस्कृति शब्द का मूल तत्त्व जब नये रूप को धारण करता है तब वह प्राकृत के लिए उपर्युक्त बैठता है। आधुनिक विचार एवं भाषा दृष्टि से यही अर्थ निकलता है कि शब्दों को सामने रखकर जो प्रकृति के साथ उच्चरित किया जाता है वह प्राकृत बन जाता है। अर्थात् उच्चारण भेद के कारण संस्कृत जब अपने स्वाभाविक वचन व्यवहार की ओर चला जाता है

१. कवि चण्ड, प्राकृत लक्षणं सूत्र.
२. वररुचि, प्राकृतप्रकाश सूत्र- १.
३. आचार्य हेमचन्द्र, सिद्धहेमशब्दानुशासन, ८/१/१ “अथप्राकृतम्”.
४. मार्कण्डेय, प्राकृतसर्वस्व, १/१.
५. धनिक, दशरूपकटीका, परिच्छेद-२, श्लोक-६०.
६. वासुदेव, संजीवनी टीका, ९/२.
७. लक्ष्मीधर, षड्भाषा चन्द्रिका, पृ० ४, श्लोक-२५.
८. वाग्भट्ट, वाग्भट्टालंकार, २/२.

तब प्राकृत शब्द बन जाता है।

आधुनिक विचारकों ने भी प्राकृत भाषा को प्रकृतिजन्य भाषा या जनता की भाषा माना है।

१. डॉ. पिशेल के अनुसार प्राकृत भाषाओं की जड़े जनता की बोलियों के भीतर जमी हुई थीं और इनके मुख्य तत्त्व आदिकाल में जीती जागती बोली जाने वाली भाषा से लिए गये हैं, किन्तु बोलचाल की वे भाषाएँ जो बाद की साहित्यिक भाषाओं के पद पर प्रतिष्ठित हुईं, संस्कृत की भांति ही बहुत ही ठोकी-पीटी गईं ताकि उनका एक सुगठित रूप बन जाए।^१
२. डॉ. एलफ्रेड सी. वूलर ने प्राकृत भाषा का विकास संस्कृत से नहीं माना है।^२
३. डॉ. पी.डी. गुणे ने जनभाषा को प्राकृत भाषा कहा है।^३
४. डॉ० कत्रे ने प्रकृतिजन्य भाषा को ही प्राकृत कहा है।^४
५. डॉ. जगदीशचन्द्र जैन ने 'प्राकृत भाषा का इतिहास' में प्राकृत को जन बोली स्वीकार करते हुए प्रकृतिजन्य भाषा ही माना है।
६. डॉ. नेमिचन्द्र जैन ने लिखा है कि प्राकृत भाषा प्रादेशिक भाषाओं से विकसित हुई है। इस भाषा की प्रकृति में लोकतत्त्व के साथ साहित्यिक तत्त्व ही मिश्रित है।^५
७. डॉ. प्रेमसुमन जैन ने 'प्राकृत स्वयं शिक्षक' की भूमिका में लिखा है कि प्राकृत मानव जीवन के स्वाभाविक परिवेश से जुड़ी हुई भाषा है।^६
८. डॉ. उदयचन्द्र जैन ने 'शौरसेनी एवं प्राकृत व्याकरण' एवं 'हेम प्राकृत व्याकरण शिक्षक' की भूमिका में प्रकृतिजन्य भाषा को ही प्राकृत कहा है।^७

-
१. पिशेल- प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृ० १४, राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना.
 २. वूलर- इन्ट्रोडक्सन टू प्राकृत.
 ३. गुणे पी.डी.- एन इन्ट्रोडक्सन टू कम्प्रेटीव फिलोसफी, पृ०-१६३.
 ४. कत्रे- प्राकृत भाषाओं का विकास, भूमिका १०.
 ५. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ०-१६.
 ६. प्राकृत स्वयं शिक्षक, भूमिका.
 ७. शौरसेनी प्राकृत व्याकरण भूमिका, पृ० ८.

९. डॉ. सुभाष कोठारी ने 'उपासकदशांग का आलोचनात्मक अध्ययन' में प्रकृतिजन्य भाषा को ही प्राकृत माना है।

इसके अतिरिक्त अन्य कितने ही विचारक इसी बात को प्रमाणित करते हैं कि प्राकृत जनभाषा थी। इसका अस्तित्व प्राचीनकाल से ही मिलता है। महावीर और बुद्ध ने अपनी देशना का आधार इसी जनभाषा को ही बनाया। अशोक, खारवेल आदि जैसे महान शासकों ने भी प्राकृत को सर्वोपरि मानकर शिलालेखों पर इसी भाषा में लेख अंकित कराए। आज भी बहुत से शिलालेख प्राकृत में ही उपलब्ध हो रहे हैं। प्राकृत की उत्पत्ति जनभाषा से हुई है और प्राकृत से ही सभी राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाएँ निकली हैं। वाक्पति राज ने गडडवहों महाकाव्य में लिखा है कि जिस प्रकार जल समुद्र में प्रवेश करता है और समुद्र से ही वाष्परूप में बाहर निकलता है उसी प्रकार प्राकृत भाषा में सब भाषाएँ प्रवेश करती हैं और इसी प्राकृत भाषा से सब भाषाएँ निकलती हैं। "सयलाओ इमं वाया विसंति एतो य णेति वायाओ। एंति समुद् चिय णेति सायराओ च्चिय जलाइ"।^१

प्राकृत भाषा के प्रमुख भेद एवं सम्बन्ध

प्राकृत के मूलतः दो रूप हैं- (क) कथ्य प्राकृत और (ख) साहित्यिक प्राकृत। इन दोनों रूपों का अपना विशेष महत्त्व है। कथ्य प्राकृत जनता के बीच बोली जाती थी। वेद इसकी प्राचीनता के प्रमाण हैं। इसके अतिरिक्त महावीर एवं बुद्ध के पश्चात् इसी भाषा में आगमों के रूप में साहित्य का प्रणयन हुआ जिसे सर्वज्ञवाणी का श्रेष्ठतम रूप माना गया। धीरे-धीरे काव्यविद्या का विकास हुआ। कवियों ने काव्यों की रचना की और सिद्धान्त विवेचकों ने छन्दोबद्ध रचना में जिनधर्म की समीक्षा भी इसी भाषा में प्रस्तुत की। इस प्रकार साहित्य का जो प्रारम्भिक रूप था उसे छान्दस् साहित्य, वैदिक साहित्य और आगम साहित्य की संज्ञा दी गई। यहाँ निबद्ध साहित्य विविध प्राकृत भाषाओं के सौन्दर्य को लेकर साहित्यकारों के बीच में उपस्थित हुआ।

प्राकृत भाषा का विभाजन

युग के अनुसार प्राकृत भाषा को तीन युगों में विभाजित किया गया है—

- (क) प्रथम युग की प्राकृत
- (ख) मध्य युग की प्राकृत

१. गडडवहो- श्लोक ९३.

(ग) अपभ्रंश युग की प्राकृत

(क) प्रथम युगीन प्राकृत— इसके विचारकों ने निम्न भेद किए हैं—

(१) शिलालेखीय प्राकृत

(२) धम्मपद की प्राकृत

(३) आर्ष प्राकृत

(४) प्राचीन आगमों की प्राकृत

(५) अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत।^१

उक्त प्राकृतों को भाषा-वैज्ञानिकों ने ई०पू० छठी शती से ईस्वी द्वितीय शताब्दी तक का माना है। बौद्ध जातकों की भाषा का युग भी यही माना गया है।

(ख) मध्य युग की प्राकृत— इसमें निम्न प्राकृतों को रखा गया है—

(१) नाटकों की प्राकृत

(२) प्राचीन काव्यों की प्राकृत

(३) परवर्ती काव्यों की प्राकृत

(४) वैयाकरणों द्वारा निरूपित प्राकृत

(५) बृहद्कथा की प्राकृत।

उक्त प्राकृतों का समय ईसा २०० से ६०० ईस्वी तक माना गया है।^२

(ग) अपभ्रंश युग— यह युग ६०० से १२०० ईस्वी तक का माना गया है। इसमें सभी प्रकार की प्रादेशिक- राजस्थानी, मराठी आदि भाषाओं का समावेश हो गया है।

सामान्यतः प्राकृत भाषा का स्रोत एक ही था। परन्तु देश, काल, वातावरण एवं जनता की बोलियों के कारण उसके अनेक भेद हो गए। विचारकों ने देश, काल, वातावरण के अनुसार उसके भेदों को प्रस्तुत वर्गीकरण के अनुसार नामकरण किया—

(१) आर्ष प्राकृत (२) शिलालेख प्राकृत

१. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १७.

२. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १७.

(३) निया प्राकृत (४) धम्मपद की प्राकृत

(५) अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत।

(क) आर्ष प्राकृत— महावीर और बुद्ध द्वारा प्रयुक्त भाषा को आर्ष प्राकृत के अन्तर्गत रखा गया है क्योंकि ये दोनों मुनि थे। इनके द्वारा जिस क्षेत्र में विचरण किया गया उस क्षेत्र के अनुसार उसका नामकरण भी किया गया। बुद्ध की भाषा को पालि और महावीर की भाषा को अर्द्धमागधी कहा गया। अर्द्धमागधी भाषा में अंग, उपांग, आदि लिखे गये। ज्ञाताधर्मकथा अंग आगमों का कथात्मक ग्रन्थ है, जिसकी भाषा अर्द्धमागधी है।

अर्द्धमागधी भाषा

यह भाषा महावीर के उपदेश की भाषा थी। उनके उपदेशों को आचार्यों ने विविध सम्मेलनों के माध्यम से ग्रन्थ का रूप दिया जिन्हें अंग, उपांग, छेदसूत्र, मूलसूत्र, प्रकीर्णक, चूलिका आदि नाम दिया गया। अर्द्धमागधी भाषा का विषय और क्षेत्र दोनों ही व्यापक था। इसे आर्ष कहा गया तथा प्राचीन भी माना गया है। अर्द्धमागधी के प्राचीन रूप शिलालेखों में प्राप्त होते हैं। साथ ही आगमों में तो इसकी व्यापकता है ही।

आचार्य हेमचन्द्र ने 'आर्षम्'^१ सूत्र के माध्यम से इसकी प्राचीनता को सुनिश्चित कर दिया है। परन्तु यह भाषा विशाल देश की भाषा के साथ-साथ पश्चिम मगध और मथुरा के मध्यवर्ती भाग की प्रादेशिक भाषा थी।

सामान्य रूप से अर्द्धमागधी शब्द 'अर्द्धमागध्या' से आया है अर्थात् जिसका अर्धांश मागधी हो, वह भाषा अर्द्धमागधी कही जाती है। यह व्युत्पत्ति नाटकीय अर्द्धमागधी में पायी जाती है। जिनदासगणि महतर ने निशीथचूर्णि नामक ग्रन्थ में मगध देश के अर्धांश की भाषा को अर्द्धमागधी कहा है। इसमें १८ देशी भाषाओं का मिश्रण माना जाता है। इसका मूल उत्पत्ति स्थान मगध व मथुरा का मध्यवर्ती प्रदेश अयोध्या है। तीर्थङ्कर अपना उपदेश अर्द्धमागधी में देते थे क्योंकि यह जनसामान्य की भाषा थी।^२ डॉ. हार्नले ने अपने प्राकृत लक्षण में इसे आर्ष प्राकृत कहा है।^३

समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, औपपातिक एवं प्रज्ञापनासूत्र आदि ने जिस भाषा

१. सिद्ध हेमशब्दानुशासन ८/१/१.

२. "भगवं च अर्द्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ" (समवायांग सूत्र पत्र- ६०).

३. इन्ट्रोडक्शन टू प्राकृत लक्षण आफ चण्ड पेज १९/१.

को अर्धमागधी कहा,^१ स्थानांग एवं अनुयोगद्वार सूत्र ने जिस भाषा को ऋषिभाषित कहा^२ एवं आचार्य हेमचंद्र ने जिस भाषा को आर्ष कहा वही जैनागमों की प्राकृत भाषा है।^३

डॉ० जेकोबी ने जैन आगमों की भाषा को प्राचीन महाराष्ट्री कहा है।^४ परन्तु डॉ. पिशेल इस बात का खण्डन कर आगमों की भाषा को अर्द्धमागधी ही मानते हैं।

भरत के नाट्य-शास्त्र में जिन सात भाषाओं का उल्लेख है उनमें अर्धमागधी एक है।^५ क्रमदीश्वर ने प्राकृत व्याकरण में 'महाराष्ट्री मिश्राऽर्धमागधीः' कहकर अर्धमागधी को महाराष्ट्री मिश्रित मागधी कहा है।^६ परन्तु निष्कर्ष यह है कि आगम ग्रन्थों में अर्धमागधी भाषा अधिक है। डॉ. हार्नल ने अर्धमागधी को ही नाटकीय अर्धमागधी, महाराष्ट्री व शौरसेनी भाषाओं का मूल माना है।^७

अर्धमागधी भाषा की प्रमुख विशेषताएँ

१. अर्धमागधी में क के स्थान पर ग एवं य पाया जाता है।
आकाश— आगास, श्रावक- सावग, लोक-लोग
२. दो स्वरों के बीच असंयुक्त 'ग' का लोप या परिवर्तन नहीं होता है।
आगम- आगम
३. शब्द के आदि, मध्य व संयोग में ण एवं न दोनों ही स्थित रहते हैं।
नदी- नई
४. गृह शब्द के स्थान पर गह, घर; हर, गिह आदेश होते हैं।
५. अर्धमागधी प्राकृत में पुलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग का प्रयोग होता है।

-
१. "देवाणं अर्द्धमागहाए भासाए भासंति"
 २. सक्कयस पाइआ.....इसिभासिया, व्याख्या प्रज्ञप्ति ५/४/२२.
 ३. हेम-प्राकृत व्याकरण-सूत्र १/३.
 ४. कल्पसूत्र- सेक्रेट बुक आफ ट्रस्ट, भाग १२.
 ५. नाट्यशास्त्र- भरत सूत्र १७, ४८ ११.
 ६. पाइअ सदमहण्णवो- प्रस्तावना, पृ० २६.
 ७. वही, पृ० २६.

६. **पुलिंग** में अकारांत, इकारांत, ईकारांत, उकारांत और ऊकारांत शब्दों का प्रयोग होता है।

अकारांत शब्द में जिण, तित्थ, समण, सावग आदि।

इकारांत शब्द में मुणि, जति, कवि आदि।

ईकारांत शब्द में केवली, णाणी, ज्ञाणी, जोगी आदि।

उकारांत शब्द में माणु, जाणु, पिउ आदि।

ऊकारांत शब्द में सव्वण्णू आदि।

७. **स्त्रीलिंग**— अकारांत- कहा, चंपा, माला, गाहा आदि।

इकारांत- रोहिणी, देवी, धारिणी, णायरी आदि।

उकारांत- धेनु, रेणु आदि।

ऊकारांत- बहू।

८. **नपुंसकलिंग**— अकारांत- णाण, ज्ञाण, लक्खण आदि।

इकारांत- दहि, वारि आदि।

उकारांत- महु, वत्थु आदि।

अर्धमागधी के शब्द रूपों की विशेषताएँ

९. अर्धमागधी प्राकृत में पुलिंग अकारांत प्रथमा एकवचन में प्रायः 'ए' प्रत्यय होता है। ज्ञाताधर्मकथा में इस तरह के प्रयोगों की प्रारम्भ से लेकर अंत तक बहुलता है। यथा- "णं से अज्जजंबूणामे अणगारे जायसद्धे..... उट्ठेति"^१
१०. कहीं-कहीं पर अकारांत प्रथमा एक वचन में 'ओ' प्रत्यय भी होता है। यथा- कोणिओ नामं राया होत्था, वण्णओ।^२ कोणिओ निग्गओ। धम्मो कहिओ।^३
११. प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में मूल शब्द का दीर्घ हो जाता है। ज्ञाताधर्मसूत्र के सभी अध्ययनों में इस तरह के प्रयोग मिलते हैं।
१२. द्वितीय विभक्ति के एकवचन में अनुस्वार (ँ) का प्रयोग होता है। यथा- लेहं, गणियं, रूवं, नट्टं, गीयं, वाइयं^४ आदि।

१. ज्ञाताधर्मकथा, १/७.

२. वही, १/३.

३. वही, १/५.

४. वही, १/९९.

१३. द्वितीय विभक्ति के बहुवचन में 'ए' प्रत्यय की बहुलता है। यथा- जणवूहे, जणबोले, जणकलकले।^१ ते बहवे उगगे भोगे।^२
१४. द्वितीय विभक्ति के बहुवचन में दीर्घ भी होता है। यथा- बहवे उग्गा भोगा, एगाभिमुहा निग्गच्छंति।^३
१५. तृतीय विभक्ति के एवचन में "एण" तथा "एणं" का प्रयोग होता है। ज्ञाताधर्मकथा में "एणं" की बहुलता है। यथा— धण्णेणं सत्थवाहेण।^४ आउक्खएणं भवक्खएणं।^५
१६. तृतीय विभक्ति के बहुवचन में हि, हिं, हिँ, प्रत्ययों का व्याकरणकारों ने उल्लेख किया है। परन्तु ज्ञाताधर्मकथा में हि, हिं प्रत्यय का प्रयोग है। उन प्रत्ययों में भी 'हिं' की बहुलता है। यथा— जियसत्तु पामोक्खेहिं छहिं राईहिं।^६ अणुलोमेहि, पडिलोमेहि, कत्तुणेहि, उवसग्गेहि।^७
१७. चतुर्थी एवं षष्ठी विभक्ति में समानता है। फिर भी ज्ञाताधर्मकथा में किसी भी वस्तु को प्रदान करने के लिए या देने के लिए जो कार्य किया गया है उसमें चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग कई जगह स्पष्ट होता है। जैसे कुलधरवग्गस्स-सालिअक्खए धण्णस्स सत्थवाहस्स हत्थे दलयइ।^८ यहाँ पर दलयइ क्रिया का प्रयोग देने अर्थ में है। इसलिए यहाँ चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग स्पष्ट है।

नोट— चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में कहीं-कहीं पर "आय" प्रत्यय का भी प्रयोग हुआ है। जैसे- 'पणिहाय' १०/५

१८. सम्बन्धी के योग में षष्ठी का प्रयोग भी ज्ञाताधर्मकथा में स्पष्ट है। यथा- पोसहियस्सं बंधचारिस्स.....करेमाणस्स।^९
१९. चतुर्थी एवं षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में प्रायः ण और णं प्रत्यय का प्रयोग होता है। परन्तु ज्ञाताधर्मकथा में णं प्रत्यय की बहुलता है। यथा— "बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं सावगाणं साविगाणं।^{१०}

१. ज्ञाताधर्मकथा, १/१०९.

२. वही, ११०.

३. वही, १०९.

४. वही, २/२८.

५. वही, २/५२.

६. वही, ८/१३२.

७. वही, ९/६०.

८. वही, ७/४.

९. वही, ७/२४

१०. वही, १/६६.

११. वही, ४/१०.

२०. पंचमी विभक्ति के एकवचन में न्तो, तो, ओ, ते- उ, हि, हितो और प्रत्यय लोप भी होता है। इन प्रत्यय के पश्चात् दीर्घ हो जाता है। ज्ञाताधर्मकथा में न्तो, तो, ओ एवं प्रत्यय लोप की बहुलता है। यथा— 'मम हत्याओ इमे पंच सालिअक्खए गेणहाहि'।^१ 'अहं पिट्ठातो विधुणामि' ९/३९ (तो-आतो) पंचमी बहुवचन में उक्त प्रत्ययों का ही प्रयोग होता है परन्तु कहीं-कहीं पर "हितो" प्रत्यय का भी प्रयोग हुआ है 'गुणोववेयाओ सरिसेहिन्तो रायकुलेहिन्तो आणियल्लियाओ'।^२ गिहेहितो पडिनिक्खमंति १/३३।

नोट:— निकलने/बाहर जाने/अलग होने में हितो प्रत्यय का प्रयोग ज्ञाताधर्म में कई जगह प्रयुक्त है।

२१. सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ए, म्मि इन दो प्रत्ययों का विशेष रूप से प्रयोग होता है। परन्तु ज्ञाताधर्मकथा में इन दोनों प्रयोगों के अतिरिक्त "अंसि" प्रत्यय की बहुलता है। यथा- 'कायंसि निवइयंसि समाणंसि'।^३ (अंसि) पदेसंसि, तंसि।^४ अंतोजलम्मि^५, पच्चत्थिमिल्ले वणसंडे^६ (ए)

नोट:— मणसि १/६८ जैसे प्रयोग भी ज्ञाताधर्म में हैं। (उ)

२२. सप्तमी बहुवचन में सु, सुं इन दो प्रत्ययों का प्रयोग होता है। ज्ञाताधर्मकथा में इन दोनों का प्रयोग है। परन्तु "सु" प्रत्यय की बहुलता सर्वत्र है। यथा- "बहुसु कज्जेसु य, कारणेसु य, कुडुंबेसु य, मंतेसु य, गुज्जेसु य"।^७

नोट:— अकारांत पुल्लिंग शब्दों में जो प्रत्यय लगते हैं वे ही प्रत्यय प्रायः इकारांत, उकारांत आदि शब्दों में लगते हैं परन्तु ज्ञाताधर्मकथा के कुछ प्रयोगों में भिन्नता है। उन प्रयोगों को प्रस्तुत किया जा रहा है- 'सुद्धेण वारिणा'^८ तृतीय में 'णा' प्रत्यय का प्रयोग।

२३. नपुंसकलिंग— नपुंसकलिंग के प्रथमा एवं द्वितीय विभक्ति में प्रायः एक ही समान रूप चलते हैं। जैसे—

प्रथमा एकवचन

वर्ण

१. ज्ञाताधर्मकथा, ७/६.
३. वही, ७/९.
५. वही, ९/११.
७. वही, ७/३०.

प्रथमा बहुवचन

वर्ण

२. वही, १/१२३.
४. वही, ९/१२.
६. वही, १३/१७.
८. वही, १/३३.

सुमिर्णं सम्मं पडिच्छइ^१

इयाणि अणिट्ठा^२

द्वितीया एकवचन

द्वितीया बहुवचन

वणं

वणाइ, वणाइं, वणाणि, वणाणिं

विपुलं असणं, पाणं...

पुव्वुदिट्ठाइं महव्वयाइं^३

उवक्खडावेन्ति^४

बहूणि वासाणि^५

नोट:— तृतीया विभक्ति से लेकर सप्तमी विभक्ति पर्यन्त नपुंसकलिंग में पुलिंग की तरह ही रूप चलते हैं।

२४. स्त्रीलिंग— इस शब्द रूप में अकारांत, इकारांत, ईकारांत आदि शब्द होते हैं। जिनमें मूलतः पुलिंग बहुवचन के प्रत्यय ही प्रयुक्त होते हैं। फिर भी कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य पाये जाते हैं।

(१) प्रथमा विभक्ति के एकवचन में सामान्य रूप से प्रत्यय का लोप हो जाता है और लोप होने पर ह्रस्व स्वर का दीर्घ हो जाता है और दीर्घ स्वर दीर्घ ही रहता है। यथा— सा णावा विमुक्कबंधणा, ^६ अत्थसिद्धी ८/५८ (ह्रस्व का दीर्घ)

रोहिणी, मल्ली, माइंदी^७ (दीर्घ का दीर्घ)

(२) प्रथमा बहुवचन में ह्रस्व स्वर का दीर्घ, दीर्घ का दीर्घ एवं ओ और उ प्रत्यय भी होते हैं। यथा— पंच महव्वया संवड्डिया भवति^८ (ह्रस्व का दीर्घ)

ते साली पत्तिया वत्तिया^९ (दीर्घ का दीर्घ)

भारियाओ चत्तारि सुण्हाओ होत्था, ७/३ (ओ का प्रयोग)

धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ, २/११

(३) द्वितीया विभक्ति एकवचन में अनुस्वार होता है। अनुस्वार होने पर यदि दीर्घ शब्द है तो उसका ह्रस्व हो जाता है और ह्रस्व का ह्रस्व ही रहता है। यथा— 'पेसणकारिं महाणसिणिं', ७/२२। मिहिलं रायहाणिं, ८/१३३।

१. ज्ञाताधर्मकथा, १/४०.

२. वही, १/९३.

३. वही, १/१४.

४. वही, १४/५४.

५. वही, ८/६.

६. वही, ८/५९.

७. वही, १/११.

८. वही, ७/३१.

९. वही, ७/११.

(४) तृतीय विभक्ति एकवचन से लेकर सप्तमी एकवचन पर्यन्त आ, आ, इ और ए प्रत्यय होते हैं। ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में 'ए' प्रत्यय की ही बहुलता है। यथा—
दित्तीए जुत्तीए छायाए पभाए ओयाए लेस्साए १०/५।

चम्पाए णयरीए बहिया १/२ (षष्ठी), तत्थ णं चंपाए नयरीए, ३/४ (सप्तमी)

२५. सर्वनाम शब्द रूप पुलिंग में अकारांत, नपुंसकलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग इन तीनों में शब्द रूपों की तरह प्रत्यय लगते हैं। परन्तु कुछ विभक्तियों में अतिरिक्त रूप ही बनते हैं।

- (१) अकारान्त पुलिंग प्रथमा बहुवचन में "ए" प्रत्यय का ही प्रयोग होता है। यथा—
सव्वे चिट्ठंति। ११/१०, १२।
- (२) चतुर्थी एवं षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में "सिं"- एसिं प्रत्यय का भी प्रयोग होता है। यथा—
तेसिं ३/२४।
- (३) स्त्रीलिंग प्रत्ययों के सप्तमी बहुवचन में निम्न प्रयोग होते हैं। यथा—
तासिं १४/३३
- (४) सप्तमी विभक्ति के एकवचन में म्मि, ए, हिं प्रत्ययों के अतिरिक्त "स्सिं" प्रत्यय भी पाया जाता है।

२६. युष्पद् तुम्ह

तुम्ह, अम्ह शब्द के रूप तीनों लिंगों में समान हैं।

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	तुमं, १/१२२	तुम्ह, तुम्हं, १४/३२
द्वितीया	तुमं, णं तुज्झं, १/१७७ तुम्भं, १४/३२	तुम्हे, १/१२२
तृतीया	ते	तुम्हेहि, तुम्हेति, तुज्झेहि तुम्भेहिं, १/११८ तुज्झेहिं
चतुर्थी/षष्ठी	तव, तुह, तुम्भे, १/६३, ८/९६ १/१७१	तुम्हाण, तुम्हाणं
पंचमी	तुम्हां तुम्हाओ	तुम्हाओ, तुज्झेहिंतो
सप्तमी	तुम्हम्मि, तुम्हस्सिं	तुम्हेसु, तुम्हेसुं

तुम्हत्थ, तुज्झम्मि

२७. अस्मद् अम्ह शब्द

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहं, हं १/६२, १४/३३	अम्हा, अम्हे १/१२१
द्वितीया	अहं, हं, ममं, णं १/१२४	अम्ह, अम्हे
तृतीया	मए, मे १/११८	अम्हेहि, अम्हेहिं, अम्हाहि, अम्हाहिं
चतुर्थी, षष्ठी	मे, मम, मह १/२५, १/६३	अम्हाण
पंचमी	अम्हं १/१५६, ममाओ	ममाहितो
सप्तमी	मए, मे, ममम्मि ममम्हि, ममस्सि, ममत्थ	मज्झाहि, मज्झाहितो महसुं

२८. क्रिया विश्लेषण- वर्तमान काल और उसकी विशेषताएँ

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	दलयति १/१०६, विहरति १/१०९ करेइ २/२३, पिहेइ २/२३	णिग्गच्छंति १/११० उवट्ठवेन्ति १/१३३ वदंति नमसंति १/२११ करेंति २/२० झियाएंति ९/१५
मध्यम पुरुष	झियायसि १/५३, करेसि १/५५ विहरसि १/१७७ पाडेसि १/१७८ पायाएज्जासि २/१४	विप्पसरित्था १/१८५
उत्तम पुरुष	सदहामि १/१५५, इच्छामि १/१२४, १/१२६ अणवडडेमि २/१३,	

करेज्जामि २/३५

जीवानो १/१२१, इच्छामो १/१२१

अवक्कमामो २/३६, घडेमो ८/३९

नोट:—

- (१) वर्तमान काल प्रेरणार्थक में निम्न प्रयोग होता है। घोसिज्जई, दिज्जए ८/१६१
- (२) विहरेज्जाद ९/२२, गच्छेज्जाह, भवेज्जाह ९/२३, म.पु. बहुवचन
- (३) वर्तमान काल में 'ति' 'इ' 'अति', सि आदि प्रत्यय के पूर्व 'अ' का 'ए' भी हो जाता है जैसे करेई २/२३
- (४) मध्यम पुरुष में 'सि' प्रत्यय से पूर्व 'अ' और 'ए' के अतिरिक्त 'आ' का भी प्रयोग हुआ है। जैसे 'पाया एज्जासि' २/१४
- (५) उत्तम पुरुष में एकवचन एवं बहुवचन में प्रत्ययों से पूर्व 'अ' का 'ए' 'अ' का 'आ' भी होता है। कहीं-कहीं पर ऐसा नहीं भी है। 'इच्छामि' ५/३९ अणुवद्धेमि २/१३
- (६) उत्तम पुरुष के बहुवचन में 'मो' प्रत्यय के पहले 'अ' को 'ए', 'अ का आ' भी हुआ है। जैसे— भवेज्जामि १४/३०
- (७) वर्तमान काल के प्रेरणार्थक में 'आव' 'आवे' जैसे प्रत्ययों का प्रयोग भी पाया जाता है। जैसे- मज्जेवइ, करावेइ १६/१२७
- (८) वर्तमान काल में 'अस्' घातु का तीनों लिंगों एवं दोनों वचनों में 'अत्थि' का प्रयोग होता है। यथा- अत्थि णं चोक्खा ८/११३ तं अत्थि याइं में अज्जाओ
- (९) भूतकाल^१

एकवचन

बहुवचन

पडिगया १/१५८ वयासी १/१५९

अमिरमेत्था १/१७४

१. नोट- अर्धमागधी प्राकृत के भूतकाल में "इंसु", सु, अंसु, आदि प्रत्यय की बहुलता है। इंसु- अणुपव्वईसु ८/१८४.

एकवचन

बहुवचन

प्रथम पुरुष

इच्छिंसु

इच्छिंसु

मध्यम पुरुष

इच्छिंसु

इच्छिंसु

उत्तम पुरुष

इच्छिंसु

इच्छिंसु

होत्था १/१६१, २/३	एस गयो १/१८०
उइन्नो १/१६८ (उतर गये)	कओ १/१८०
खुते १/१६९ (फंस गये)	पन्नते २/१
तुमं पयाया १/१७१ (बुरी स्थिति रही)	धम्मो कहिओ २/५०
विरित्था १/१७१	वयासी ९/४० (कहा)
पडिगए १/१७० (गिर गये)	

नोट:—

- (१) अत्थि का सभी वचनों में एक ही तरह का प्रयोग है।
- (२) ज्ञाताधर्मकथा में प्रायः था, थी एवं थे के लिए “होत्था” का प्रयोग हुआ है यथा- जक्खायवणे होत्था उज्जाणे होत्था ५/४, जुवराया याविं होत्था- ८/७
- (३) भूतकाल में था, थी एवं थे के लिए ज्ञाताधर्म में “आसि” का प्रयोग भी हुआ है। यथा- मणामा आसि १४/३०।

(१०) भविष्यत् काल^१

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भविस्सई १/३८, १/६३ जाएस्सइ ७/७	संकलित्सांति १/११४
	सिज्झिहिइ, तुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ परिनिव्वाहिइ काहिइ १/२१७	
	विणिहिइ १/६६	
मध्यम पुरुष	पव्वइस्ससि १/१२१, १/२२२	
उत्तमपुरुष	करिस्सामि १/६३, पव्वइस्सामि १/११५	चिद्धिस्सामो ९/१८२

१. भविष्यत्काल में ति, सि आदि प्रत्यय लगने पर भी “अ” का “ए” और “अ” का “आ” भी होता है।
२. भविष्यत्काल में दो तरह के प्रयोग मिलते हैं, प्रथम प्रयोग “स्स” और द्वितीय प्रयोग “हि” जैसे- बहस्संति, चिद्धिस्सामो ९/४०, करेहिइ ९/३९.

१२८ ज्ञाताधर्मकथांग का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

११. विधि एवं आज्ञार्थक

एकवचन

बहुवचन

प्रथम पुरुष होउ २/२०

पडिच्छंतु १/१५६,

गच्छंतु १६/२११

नोट:- धवेज्जा ५/३७, ५/३८

मध्यम पुरुष गच्छाहि, कप्पेहि १/१३९ पक्खालेह, संदिसह १/१३९,
जिणाहि, पालेहि, वालाहि मा पडिबंध करेह १/१९७, १/१९८,
१/१५४, गेणहाहि, विहराहि ठावेह ८/१४८

७/६, जाएज्जा ७/६

भवेज्जाह, गच्छेज्जाह ९/२५

गच्छ १/१५४

उत्तम पुरुष गच्छमु

गच्छमो

नोट:-

- (१) विधि आज्ञार्थक में प्रत्ययों से पूर्व भी “अ” का “ए” ही प्रायः होता है। जैसे- “णिवेसेह” १६/२१५
- (२) विधि एवं आज्ञार्थक में “ज्जा” प्रत्ययों के प्रयोग भी होते हैं “ज्ज” और “ज्जा” ये दोनों ही प्रत्यय प्रथम पुरुष एकवचन, बहुवचन में समान रूप से ही होते हैं। जैसे- धोवेज्जा ५/३७, (प्रथम पुरुष एकवचन) जाएज्जा ७/६, (मध्यम पुरुष एकवचन), गच्छेज्जाह ९/२५, (मध्यम पुरुष बहुवचन)।
- (३) विधि आज्ञार्थक में “ज्ज” और “ज्जा” के प्रयोग के बाद इनके प्रत्ययों का भी प्रयोग होता है। जैसे- “भवेज्जाह” ९/२५।
- (४) मध्यम पुरुष के एकवचन में “हि” प्रत्यय से पूर्व दीर्घ का प्रयोग भी हुआ है जैसे- “तारयाहि” “पालयामि” ९/३६।
- (५) मध्यम पुरुष के बहुवचन में भी “ह” से पूर्व दीर्घ हो गया। जैसे “णो आढाह” “णो परियाणह” ९/३६।

२९. वर्तमान कृदन्त

न्त- जलन्ते १/२०५, अभिनंदन्ता ८/५६

माण- दलयमाणे पडिच्छेमाणे १/९२ (पुल्लिंग)

म्रण- रोयमणी, कंदमाणी, तिप्पमाणी, सोयमाणी, विलवमाणी १/१२०,
संगोवेमाणीय, संवइढेमाणीए ७/९ (स्त्रीलिंग)

२०. विधि कृदन्त

तव्व- गंतव्वं १/१९१

यव्व- जइयव्वं, घडियव्वं, परक्कमियव्वं ५/२३, भाणियव्वा ५/५१, ८/३०।

एव्व- पमाएव्वं ५/२३, संदोएव्वी ८/३०

३१. सम्बन्ध कृदन्त

ऊणं- गिण्हऊणं २/११, टट्टु- कट्टु १/१३५, २/१२

च्चा- सोच्चा १/८९, २/२५, किच्चा ६/५, समेच्चा ८/८

त्ता- करित्ता १/९०, सट्टवित्ता १/९१, फासित्ता, पालित्ता, सोहंत्ता, तीरेत्ता, किट्टेत्ता
१/१९६

म्म- णिसम्म १/८९, आय- गहाय १/१३८, २/३४

३२. तद्धित प्रयोग

ज्ञाताधर्मकथा में तद्धित प्रत्ययों का भी प्रयोग हुआ है जिनके कुछ उदाहरण
दिए जा रहे हैं—

इल्लं- दक्खिणिल्लं, उवरिल्लं, उत्तरिल्लं, उवरिल्लं, दाहिणिल्लं, हेट्ठिल्लं ८/१७६

इज्ज- आपुच्छणिज्जे, पडिपुच्छणिज्जे १/१५, इज्ज प्रत्यय का प्रयोग अभिनदिन्न १/
८२ विशेषण के रूप में किया जाता है यह योग्यता का सूचक भी है यहाँ पर
योग्यतावाची का ही प्रयोग हुआ है।

इआ- बाहिरिआ १/३० बाहर की ओर

इय- अब्भितरियं १/३१ भीतर की ओर, एव्वसंगितियं १/६६

अओ- एगयओ १/३३ एक ओर से

य- वेइयं १/८८

ग- कुंभगस्स- ८/१५६

त- गरुयत्तलहुयत्तं ६/४

नोट:— कुछ सार्थक प्रत्यय भी होते हैं जिनका प्रयोग होने पर अर्थ नहीं बदलता है जैसे- कचुंडअ- महयग्ग १/९६ कचुइ यह मूल शब्द है “अ” का इसमें आगम हो गया है। इसी शब्द में ज्ज का भी आगम हुआ है। जैसे- मेहेकचुइज्जपुरिसस्स १/११२

३३. शब्द विश्लेषण

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं १/१, १/४, १/६

इस पंक्ति में सप्तमी के योग में तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है। प्राकृत व्याकरणकार ने इस तरह का सूत्र नहीं दिया है। किन्तु वृत्ति में इस तरह का प्रयोग दिया गया है।^१

(ख) संजमेण तवसा १/४, १/६ संजमेण के बाद तवसा में तेयसा १/२८ तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है। यह आर्ष प्रयोग है। संजमेण की तरह तवेण का प्रयोग नहीं हुआ है।

(ग) तेणामेव १/४, जेणामेव १/७, १/७० ये दोनों प्रयोग नये हैं। ज्ञाताधर्मकथा में जेणेव, तेणेव १/२९ की बहुलता है।

(घ) “सूरे सहस्सरस्सिमि” १/२८ रस्सि शब्द मूलतः स्त्रीलिंग का है। परन्तु यहाँ सप्तमी पुलिङ्ग एकवचन का “मि” प्रत्यय का प्रयोग हुआ है।

(ङ) “मणसि करेमाणस्स” १/६६ सप्तमी एकवचन में “इ” प्रत्यय का प्रयोग हुआ है।

(च) सप्तमी के योग में द्वितीया का प्रयोग बहूणि गामागर जाव आहिंडइ १४/३० हुआ है।

ध्वनि परिवर्तन— ज्ञाताधर्म में ध्वनि परिवर्तन के सभी प्रकार विद्यमान हैं, परन्तु यहाँ एक दो उदाहरण ही दिए जा रहे हैं।

स्वर आगम— चेइए १/२, चैत्य “इ” आगम हो गया।

भरियाओ १/१२३, (भार्या)

(इ) वाइय- पित्ति- सेभिय सण्णिवाइय १/२०८ अरहओ ५/४२, अ आगम अरिहा अरिडुनमी ५/२३।

१. हेमचन्द्र- प्राकृत व्याकरण वृत्ति, ३/१३७.

३५. व्यञ्जनागम

मंगल्ले १/२५ ल् का आगम

सुमिणे १/२५ उ और इ का आगम, प का म स्वप्न

खाइम- साइम १/४० इ का आगम

आणियल्लियाओ १/१२३ यहाँ पर “ल्” का आगम हुआ है।

मंगल्लेण १/२०१ यहाँ पर “ल्” का आगम हुआ है।

सीयल च्छायाए ३/२ यहाँ पर “च” का आगम है।

उंबर पुप्फं ५/२३ (उदुम्बर पुष्प) लोप वयंजन हुआ है।

जम्मण ५/२३ अन्तिम में “न” व्यञ्जन का लोप न होकर ण पूर्ण हो गया।

कंचुइज्ज १/११२ कंचुइ में “ज्ज” का आगम हो गया

परिसा ६/३

गुरुयत्तं ६/४ लहुयत्तं ६/४ त, त्त का आगम।

दक्खिणिल्लं, उवरिल्लं, उत्तरिल्लं, दाहिणिल्लं, हेट्ठिल्लं ८/१७६

इल्ल प्रत्ययों का प्रयोग

ध्वनि परिवर्तन में आगम, लोप विपर्यय, घोषीकरण, अघोषीकरण, स्वीकरण, दीर्घीकरण, स्वरभक्ति, अल्पप्राण, महाप्राण आदि से सम्बन्धित कई विशेषताएँ ज्ञाताधर्मकथा में मिलती हैं। इनके अतिरिक्त भी शब्द परिवर्तन, शब्द रूप, क्रिया रूप आदि की कुछ विशेषताएँ भी हैं, जिनका हमने पूर्ण विवेचन न देकर एक सामान्य संकेत मात्र ही प्रस्तुत किया है। ज्ञाताधर्मकथा में कथानकों के बीच में देशी शब्दों, सूक्तियों, मुहावरों एवं उपदेशात्मक प्रसंग भी भाषा की रमणीयता को व्यक्त करते हैं जिनका विवेचन साहित्यिक विश्लेषण में यथा सम्भव किया गया है।

३६ देशी शब्द

टिंटसि १/३६

खिंवस्य (निंध) ८/१/६

कोरंट १/४४, १/११३ पुष्प विशेष

मुहमक्कडियाओ- मुँह मटकाना ८/११६

चोलोवयणं १/९७

मिसमिस- उपहास करना ८/११६

दिया १/१९९ दिन

देतूसए- गेंद से ९/१०

१३२ ज्ञाताधर्मकथांग का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

कल्ल २/१२, १२ (कल)	तडतड- ९/१०
चप्पुडियाए ३/२५ (चुटकी)	फुट्ट (फूटना) ९/१०
उंबर ५/२३ (उदुम्बर)	हाहाकय- हाहाकार ९/१०
घंट १/११३ (घण्टा)	चोक्खा (चोखा) ८/११०
छोल्ल ७/८ (छोलना)	भुज्जो-भज्जो (बार-बार) १/७२
उसीसा ७/८ (तकिया)	पल्ल ७/१८ कोठार
खुड्डांग ७/९	

३७. सन्धि

जब किसी शब्द में दो वर्ण पास आने पर मिल जाते हैं तो उनसे उत्पन्न होने वाले विकार को सन्धि कहते हैं। ज्ञाताधर्मकथा में सन्धि विकल्प से है नित्य नहीं। यथान्तेणामेवउवागच्छ १/४, ज्ञाताधर्मकथा में सन्धि के तीन भेद हैं- स्वर सन्धि, व्यञ्जन सन्धि, अव्यय सन्धि।

(अ) ज्ञाताधर्मकथा में स्वर सन्धि— ज्ञाताधर्मकथा में चार तरह के स्वर सन्धि मिलते हैं- दीर्घ, गुण, ह्रस्व दीर्घ और प्रकृति भाव या सन्धि निषेधा।

दीर्घ सन्धि— महतिमहालियाए १/११४, महति- महा- आलियाए (आ-आ— आ) सव्वालंकार विभूसिए १/११३, सव्व-अलंकार विभूसिए (अ-अ-आ) समणाउसो ४/१०

गुण सन्धि— झाणकोट्टोवगए १/६ झाग-कोट्टा- उवगए (अ-उ-ओ) सव्वोउय ३/२ सव्व-उउय नागेंद-नाग-इंद ८/१७७, इमेया इम- इया ८/१५३।

ह्रस्व दीर्घ सन्धि— ज्ञाताधर्म में सामासिक पदों में ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है- एयात्त्वे- एयरूवे १/६३।

दीर्घ का दीर्घ- इत्थीसएहिं ८/१८३

दीर्घ का ह्रस्व- इत्थिणामगोयं ८/१३ इत्थीणाम पुढ्विसिलापट्टय १/२१२

प्रकृति भाव सन्धि— सन्धिकार्य के न होने को प्रकृतिभाव सन्धि कहते हैं। तुमं इओ तच्चे अईए १/१६४, हंता अट्टे १/१६३ मेहा इ समणे १/१६३, आयरिय उवज्जायणं ४/१०

स्वरलोप सन्धि— ज्ञाताधर्मकथा में स्वरलोप की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है। यथा- जेणेव तेणेव ४/११, जेण-एव, तेण-एव, अगुतिंदिए ४/१०, तहेव ५/२२, लोगुत्तामेणं १/८, राईसर ७/४, राईसर।

(ब) व्यंजन सन्धि— ज्ञाताधर्मकथा में प्रायः व्यञ्जन सन्धि का प्रयोग नहीं पाया जाता है। परन्तु कुछ नियम इस प्रकार हैं।

- (१) “अ” के बाद आए हुए विसर्ग की जगह उस पूर्व “अ” के साथ ओ हो जाता है यथा- कोणिंओ निग्गओ धम्मो कहिओ १/५ णमो ८/१८१ नमः।
- (२) पद के अन्त में “म्” का अनुस्वार होता है यथा- रज्जं च रट्ठं च, कोसं च, कोट्टागारं च १/१५।
- (३) “म्” से परे स्वर रहने पर विकल्प से अनुस्वार होता है। यथा- मज्झंमज्जेणं १/११३, सुहसुहेण ९/२१।
- (४) बहुलाधिकार रहने से हलन्त अन्त्य व्यञ्जन का भी म होकर अनुस्वार होता है। यथा- एवं १४/३४।
- (५) वर्ग के अन्तिम ड, ब्, ण और न के स्थान में पश्चात् व्यञ्जन होने पर अनुस्वार हो जाता है। यथा— णंदिमिन्ते ८/१८४ पंच- पञ्च ८/१८१ मंडल-तलो ९/२३।
- (६) **अव्यय सन्धि**— ज्ञाताधर्मकथा के अनुसार अव्यय पदों में सन्धि कार्य करना अव्यय सन्धि है यथा— दोच्चं पि तच्चं पि ४/८ णं इह १/१०, जंबुत्ति १/९।

३८. अव्यय

लिङ्ग, विभक्ति और वचन के अनुसार जिनके रूपों में व्यय (अर्थात् घटती-बढ़ती) न हो उसे अव्यय कहते हैं। ज्ञाताधर्मकथा में प्रयुक्त अव्यय के पाँच वर्ग हो सकते हैं— उपसर्ग, क्रिया विशेषण, समुच्चयादि बोधक, मनोविकार सूचक, अतिरिक्त अव्यय।

(१) उपसर्ग

जो अव्यय क्रिया से पूर्व आते हैं, उन्हें उपसर्ग कहते हैं -

प पक्खिवेइ ७/८

परि परियणस्स ७/६

१३४ ज्ञाताधर्मकथांग का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

उं	उवम्बडावेइ ७/५
अणु	अणुगिलइ ७/८, अणुपुव्वेणं ७/१०
सं	संगोवंति, संरम्बंति ७/१०
वि	विप्पवसियंसि ७/४
नि	निज्जाएमि (लौटूंगा) ७/२८,
पडि	पडि ७/२८, पडिजागरमाणी ७/२५
वि	विहरामि ७/२५, विहाडेइ ७/२४
सुं	सुमित्त ८/१८४

(२) क्रिया विशेषण

ज्ञाताधर्मकथा में कई तरह के क्रिया विशेषण अव्यय प्राप्त होते हैं—

अ १/१९८ वाक्य पूर्ति, वाक्य पूरक अव्यय एवं आदि के अर्थ में होता है।

अण्णया (कभी)	अण्णया कयाई १३/९
अण्णहा (अन्यथा, अन्य रूप)	अण्णहमे न याणामि ९/३७
अंतो	सा पउमावई अंतो अंतेउरंसि ८/४३
अवि (भी)	अवि याई अहं १६/५७
अह (अनन्तर, अगर किन्तु)	१४/३५
अहो (अरे)	अहोणं इमा १६/७४
इवा (अथवा, या, वा)	१४/४७
इहं (यहाँ)	गिहाओ इहं हव्वमागए १६/५६
उवरि	९/४८
उ (तो, फिर)	जक्खे उ सेलए ९/५७
एवं (इस प्रकार)	१४/३४
कओ (कहाँ)	१४/५

केई (कोई)	जइ णं केइ १६/७४
कयाई (कभी, भी)	अन्नया कयाई १३/९
कहिं (कहाँ पर)	कहिं गया १३/५
कहिं चि (कहीं)	ईसरस्स वा कहिंचि ८/११९
खलु (निश्चयवाचक या ही) एवं खलु सामी	१/५६
च (और, तथा)	चुलसीइं च ८/१९२
केइ कहिंचि (कोई कहीं पर) केइ कहिं चि अच्छेरए	८/७६
जं (जिस समय)	जं समयं ८/१८२
ण (निषेधवाचक)	तं ण णज्जइ १४/४६
णं (क्योंकि)	वाक्य की शोभा के लिए भी णं का प्रयोग किया जाता है। पासित्ता णं १/१८
तं (उसी)	तं समयं ८/१८२
तत्थ	तत्थ वि य १४/४९
तंजहा (भय के रूप में प्रयोग होता है।)	१४/४७
तओ (इसके पश्चात्)	७/६
तएणं	१४/३३
तहेव (उसी तरह)	तहेव जक्खे ९/५७ तखे भज्जणं ८/८५
ताहे (उससे)	तहि तम्भे वदह ९/३७
तो (तब)	तो हं विसज्जेमि १४/३५
तम्हा (इसलिए)	तम्हा पवयणसारे ९/५९
तहा (तथा, और तो)	तहा पच्चक्खाएयव्वे ८/६५
तह (तथा)	तह त्ति पडिसुणेइ १४/४२
तामेव (वही)	तामेव दिसिं पडिगए १/८५
ने	१४/४७, ४८। ज्ञाताधर्मकथा में निश्चयवाचक अव्यय का प्रयोग पर्याप्त हुआ है

न हु (नहीं)	न हु जुज्जसि ९/५२
पुरओ (सामने)	पुरओ रोहिणियं ७/३०
परं (अत्यन्त)	परं सायासाक्खमणुडभवमाणे विहरइ १३/२०
पिव (तरह समान)	धाराहयकलबगं पिव १३/२०
पिट्ठओ (पीछे)	पिट्ठओ अणुगच्छइ १/८१
भो (सम्बोधनवाचक)	भो समणा माहणा १४/५०
मा (निषेधवाचव)	मा पडिबंध करेह १४/३६
जं	जं णं सागरदत्तए १६/५५ (वाक्यालंकर के लिए इसका प्रयोग होता है)
जहा	जहा व सा रोहिणीया ७/३१, जहा देवाणंदा १४/३७
जाव	भए जाव १४/४०
जओ (जिससे)	जओ णं बहवे १/११०
जम्हा (जहाँ)	जम्हा णे अम्हं १/९५
जामेव (उसी)	जामेव दिसिं पाउब्भूए १/८५
यावि (जो भी)	यावि होत्था १४/३८
सव्वओ (सभी ओर)	सव्वओ समंता आहिंडति १/८२
साणीयं	साणीयं १४/४०
सीसयं (समान)	सरिसयं कुंडलजुयलं ८/८९
सद्धिं (साथ)	सेणाए सद्धिं ८/५१
हा हा (खेदवाचक)	हा हा अहा अकज्ज १६/२०

(३) समुच्चय बोधक अव्यय

जिस अव्यय से एक वाक्य दूसरे वाक्य में समाहित होता है उसे समुच्चयबोधक अव्यय कहते हैं। इसके सात भेद हैं—

(अ) संयोजक- य--अहं पि य ण १६/२१८, दोवई य देवी १६/२१९, दोच्चं पि १९/२७।

- (ब) वियौजक- वा- कयरं देसं वा दिसिं वा १६/२१२, २१३।
 (स) संकेतार्थ- जइ चेव- जइ णं तुब्भे १६/२१८, जइ णं मंते २/१/३५, चेव इह मेव चेव ७/३१।
 (द) कारणवाचक तेण, तेणेव उवागच्छइ १९/१८।
 (य) प्रश्नवाचक किं णं- कि णं तुमे १/५३, पिंपि १/५०।
 (र) कालवाचक जाव-जाव कालगए १६/२२६।
 (ल) उदाहरण सूचक जहां व से १९/२६।

३९. समास

“समसनं समासः” को संक्षेप में समास कहते हैं। दो या दो से अधिक शब्दों को साथ रखने को समास कहते हैं। ज्ञाताधर्मकथा में जितने भी गद्यांश हैं उन सभी में समास की बहुलता है। सम्पूर्ण गद्यांश का अनुच्छेद समास पद से विभूषित है। इसमें लम्बे समासान्त पदों का प्रयोग है। यथा- सुकुमाल- पाणि- पाया..... जुन्तोवयारकुसला।^१ अरिहंतं सिद्ध पवयण गुरु धेर बहुस्सुए तवस्सीसुं।^२

सभी प्रकार के समासों का प्रयोग ज्ञाताधर्म में हुआ है। यथा—

(१) **अव्ययीभाव समास**— जिस समास में पहला पद अव्यय हो उसे अव्ययी-भाव समास कहते हैं, यथा— अहापडिरूपं १/४ यहाँ पर “अहा” अव्यय पडिरूप से पूर्व है इसलिए अव्ययीभाव समास है। अंतेवासी १/४, अहासुतं अहाकप्पं अहामग १/१९६।

(२) **तत्पुरुष समास**— जिसमें उत्तरपद की प्रधानता होती है उसे तत्पुरुष समास कहते हैं। यथा— कुलसम्पन्न १/४ मऊरपोसण पाउग्गेहिं ३/२२, जिणदतपुर ३/२२ कोडुंविपपरिझे ५/८।

(३) **बहुब्रीही समास**- जिस पद से किसी अन्य अर्थ का ज्ञान हो उसे बहुब्रीही समास कहते हैं। जैसे— देवाणुप्पिया १/४०, देवों के प्रिय यह शब्द मूलतः ज्ञाताधर्म में ऐतिहासिक एवं पौराणिक पुरुषों के लिए आया है। ज्ञाताधर्म में अनुच्छेद के अनुच्छेद बहुब्रीही समास के मिल जाते हैं। यथा- जाइसंपन्ने, कुलसंपन्ने ओयंसी, तेयंसी.....तवपहाणे।^३ सभी शब्द आर्य सुधर्मा के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

१. ज्ञाताधर्मकथांग १/१६.

२. वही, ८/१४.

३. वही, १/४.

(४) **द्वन्द्व समास**— दो या दो से अधिक संज्ञाएं एक साथ जहाँ आती हैं वही द्वन्द्व समास होता है। ज्ञाताधर्म में जहाँ कहीं भी गुणों, ऐतिहासिक पुरुषों या पशु-पक्षियों का वर्णन किया गया है वहाँ पर एक से अधिक संज्ञाएं आ गई हैं। यथा- उसभं- तुरय- णर- मगर- विगह- वालग- किन्नर- रूरु सरम- चमर- कुंजर- वणलय ५ पउमलय भतिचितं।^१ सगडीसागडं (७/२८)। ज्ञाताधर्म के सभी अध्ययनों में एक साथ द्वन्द्व समास देखे जा सकते हैं। रोहिणी ज्ञात का छठा अनुच्छेद द्वन्द्व समास से युक्त है।

(५) **द्विगु समास**— जिस शब्द में पूर्व पद संख्यावाची हो उसे द्विगु समास कहते हैं, यथा- पंचसालिअक्खए ७/२८, चोदसपुव्वो, चउनाणोवगए १/४, एगदिसिं १/१११। प्रथम अध्ययन के अनुच्छेद १९९ में द्विगु समास की बहुलता है। यह तेरह पंक्तियों का अनुच्छेद है।

(६) **कर्मधारय समास**— जिस समास में विशेष और विशेष्य हो उसे कर्मधारय समास कहते हैं, जैसे- सुकुमालपाणिपाया १/१४, महावीर १/४, महासुमिणाणं १/३७, भदसण १/१५३, विमलसलिल पुत्रं १/१५०। समासशैली एक वैज्ञानिक कला है जिसका प्रयोग करना अत्यन्त कठिन माना जाता है, परन्तु ज्ञाताधर्मकथा के कथानकों, घटनाओं एवं वर्णनात्मक विवेचनों में प्रायः समास पदों का प्रयोग हुआ है। इसकी प्रत्येक कथा के प्रत्येक अनुच्छेद समास पदों से जुड़े हुए हैं, महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि लिखित साहित्य के प्रारम्भिक प्रयोग में ही समास पदों से युक्त वाक्य रचनाएं समास की लम्बी परम्परा का व्याख्यान करते हैं। समास अर्थात् संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति मानवीय प्रयोगों का प्रमुख गुण रहा है। अतः ज्ञाताधर्मकथा के कथांश में समासों का प्रयोग भाषा की दृष्टि एवं काव्यानुशासन के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण कहा जा सकता है।

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १/३१.

सप्तम अध्याय

ज्ञाताधर्मकथांग का सांस्कृतिक अध्ययन

भारतीय साहित्य में मनोविनोद एवं ज्ञानवर्धन के लिए विशेष उपदेश दिया गया है जो सुनने में मधुर एवं आचरण में सुगम जान पड़ता है। आगम साहित्य धार्मिक आचार-विचार, तत्त्व-चिन्तन, नीति और कर्तव्य का बोध करानेवाला साहित्य है। ज्ञाताधर्मकथांग भी उन्हीं में से एक है। इसमें सिद्धान्त-निरूपण, तत्त्व निर्णय गूढ़ रहस्यों आदि को सुलझाने के लिए कथाओं के माध्यम से जो कथन किया गया है वह सभी दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

इस कथा प्रधान आगम में जो सांस्कृतिक सामग्री है वह भारतीय संस्कृति की समकालीन प्राचीन परम्परा को प्रतिपादित करती है। इसके कथानकों में पौराणिक एवं तत्कालीन ऐतिहासिक पुरुषों एवं नारियों का चरित्र-चित्रण है। इसमें वर्णित कथाओं में द्वीप, क्षेत्र, पर्वत, नदियाँ, बन्दरगाह, अरण्य, वृक्ष, जंगली पशु, जनपद, नगर आदि भौगोलिक सामग्री उपलब्ध हैं। राजा का निर्वाचन, उत्तराधिकारी मंत्रिमण्डल और उसका निर्वाचन, अन्तःपुर, राजप्रासाद, भवनोद्यान, भवनदीर्घिका, महानसंग्रह आदि राजनैतिक सामग्री इसमें उपलब्ध हैं। वर्ण एवं जाति, पारिवारिक जीवन, परिवार के घटक- माता-पिता और सन्तान का सम्बन्ध, विवाह, विवाह चयन, विवाह-संस्कार, बहु-विवाह, मित्र, दास-दासियाँ, समाज में नारी का स्थान, कन्या, पत्नी, माता, वेश्या, साध्वी, भोजनपान, स्वास्थ्य और रोग, वस्त्राभूषण, नगरों की स्थिति, वाहन, पालतू पशु-पक्षी, उत्सव, रीति-रिवाज आदि सामाजिक सामग्रियों का समावेश है। आजीविका के साधन, समुद्र-यात्रा और वाणिज्य आदि आर्थिक सामग्री भी हैं। प्रमुख धर्म अणुव्रत, महाव्रत, श्रावक धर्म आदि धार्मिक सामग्री का भी उल्लेख है। शिक्षा, साहित्य, गीत, नृत्य, इन्द्रजाल, वीणा, नाट्य सूत्र, प्रहेलिका आदि ७२ कलाओं के अतिरिक्त अन्य कई सांस्कृतिक मूल्यों के विवेचन भी ज्ञाताधर्म की कथाओं में समाहित हैं। सारांशतः आधुनिक विज्ञान की दृष्टि एवं अतीत की कला, शिक्षा, संस्कृति के समाजस्य के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

ऐतिहासिक और पौराणिक व्यक्ति

ज्ञाताधर्मकथा कथा प्रधान आगम है। इसमें राजा श्रेणिक, कूणिक, अभयकुमार, मेघकुमार आदि के विशेष उल्लेख शोधार्थी को ऐतिहासिक पक्ष का बोध कराते हैं। इतिहास का विषय जितना प्रामाणिक होता है उतना ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। ज्ञाताधर्मकथांग प्राकृत कथा साहित्य का प्राचीन ग्रन्थ है इसलिए यह भी आवश्यक एवं प्रामाणिक संकेत देता है कि इसमें जितने भी पुरुषों, नारियों, कलाचार्यों, रानियों, उपासकों, चोरों, सार्थवाहों, गणिकाओं, महाबलों आदि के उल्लेख हैं वे सभी इतिहास की अमूल्य धरोहर हैं।

ज्ञाताधर्मकथा में कई ऐतिहासिक नारियों के भी उल्लेख आये हैं जिनमें धारिणी, भद्रा, थावच्चा, उज्जिका, भोगवती, रक्षिका, रोहिणी, मल्ली, रत्नद्वीपदेवी, पोडिला, नागश्री, सुकुमारिका, द्रौपदी, काली, राजी, रजनी, विद्युतदेवी, मेघा, रूपा, कमला आदि नारियाँ प्रमुख हैं। इन सभी के विषय में प्रामाणिक जानकारी के लिए यह आगम ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है क्योंकि एक साथ एक ही ग्रन्थ में कई प्रकार के ऐतिहासिक पुरुषों एवं नारियों का उल्लेख मिल पाना कठिन है। यदि यह किसी एक कथा विशेष का ग्रन्थ होता तो कुछ निश्चित ऐतिहासिक पुरुष एवं नारियाँ ही इसमें समाहित हो पातीं। किन्तु यह पृथक्-पृथक् कथाओं का संग्रह ग्रन्थ है जिसमें पौराणिक, ऐतिहासिक आदि सभी सामग्रियाँ समाहित हैं। इसलिए यह कथा ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करनेवाला महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। कुछ ऐतिहासिक पात्रों का विवरण इस प्रकार है—

पार्श्वनाथ

ज्ञाताधर्मकथांग में भगवान पार्श्वनाथ^१ एवं उनके श्रमण- श्रमणियों का उल्लेख प्राप्त होता है। अधिकांशतः विद्वान् इनको ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं।

भगवान महावीर

जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर का जन्म ईसा से लगभग ५८९ वर्ष पूर्व वैशाली के समीप कुण्डग्राम के क्षत्रिय वंश में हुआ था। ये काश्यप गोत्रीय राजकुमार थे। इनके पिता सिद्धार्थ एवं माता त्रिशला देवी थीं।^२

१. ज्ञाताधर्मकथांग २/१/१४.

२. विमलचन्द्र पाण्डेय, प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृ. १८७.

गणधर गौतम

गौतम गणधर का पूरा नाम इन्द्रभूति गौतम था। इनका उल्लेख विपाकसूत्र में अनेक स्थानों पर मिलता है।^१ इनकी गणना महावीर स्वामी के प्रथम शिष्य के रूप में की जाती है।^२

सुधर्मा स्वामी

सुधर्मा स्वामी भगवान महावीर के पाँचवें गणधर एवं जम्बूस्वामी के गुरु थे।

जम्बू स्वामी

सुधर्मा स्वामी के शिष्य आर्य जम्बू थे। जैन आगमों में अनेक स्थानों पर इनका उल्लेख आया है।^३ जम्बू राजगृह के समृद्ध सेठ के पुत्र थे। इनके पिता ऋषभदत्त एवं माता धारिणी थीं।^४ ये काश्यप गोत्रीय ऊँचे शरीर एवं गौर वर्ण के थे।^५

ज्ञाताधर्मकथांग में अरिष्टनेमि का भी उल्लेख मिलता है।^६ जैन आगमों के अन्तकृतदशा, अनुत्तरौपपातिक एवं ज्ञाताधर्मकथांग में कृष्ण का उल्लेख भी प्राप्त होता है जो अरिष्टनेमि के चचेरे भाई थे।^७

श्रेणिक

मगध के प्रारम्भिक नरेशों में राजा श्रेणिक का महत्वपूर्ण स्थान है। श्रेणिक का विवाह वैशाली नरेश की पुत्री चेलना के साथ सम्पन्न हुआ था।^८ इनकी पट्टरानी का नाम धारिणी^९ था। राजा श्रेणिक एक कुशल प्रशासक थे, साथ ही भगवान महावीर के अनन्य अनुयायियों में इनकी गिनती होती थी। इन्होंने कई दीक्षा ग्रहण करनेवालो को सहयोग दिया था।^{१०} श्रेणिक के तीन पुत्र थे- अभयकुमार, मेघकुमार

१. विपाक सूत्र १/१३.

२. वही, ८/५.

३. स्थानांग सूत्र, १/१/१, विपाकसूत्र, १/१/३.

४. अनुत्तरौपपातिकदशा, पृ० ५६.

५. ज्ञाताधर्मकथांग १/६.

६. वही, ५/७.

७. अन्तकृतदशा ८/१३, ज्ञाताधर्मकथांग ५/५.

८. डॉ. भागचन्द्र भास्कर, भगवान् महावीर और उनका चिन्तन, पृ० १०५.

९. ज्ञाताधर्मकथांग १/१६.

१०. डॉ. भागचन्द्र भास्कर भगवान महावीर और उनका चिन्तन, पृ० १०६.

एवं अजातशत्रु^१ जीवन के अन्तिम दिनों में अजातशत्रु/कूणिक ने राजा श्रेणिक को कारागाह में डाल दिया था।^२

राजा कूणिक

कूणिक को अजातशत्रु भी कहा जाता है जो मगध का राजा था। स्वभाव से कूणिक करुणाशील, मर्यादित, क्षेमकर एवं क्षेमधर था। इसी कारण जनमानस द्वारा वह सम्मानित एवं पूजित था।^३ परन्तु कर्मप्रकृति प्रदत्त वह क्रोधी था। उसने अपने पिता बिम्बसार को दारुण दुःख दिया था।^४ धारिणी नामक उसकी रानी थी।^५ राजा कूणिक ने अपने सहोदर भाईयों के गले से हार एवं सेचनक हाथी को छीनने के लिए अपने नाना चेटक से भयंकर युद्ध किया था। कोणिक चेटक युद्ध इतिहास प्रसिद्ध है।^६

भौगोलिक परिचय

ज्ञाताधर्म की कथाओं में भौगोलिक परिवेश का भी विवेचन है। इसमें विविध देशों, प्रदेशों, राजधानियों, नगरों, उपनगरों, ग्रामों, बन्दरगाहों, द्वीप, क्षेत्र, पर्वत, नदियों आदि का भी वर्णन है। ज्ञाताधर्म की कथाओं में प्राकृतिक एवं राजनैतिक दोनों ही प्रकार की सामग्रियों का समावेश है जिनकी संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार दी जा रही है—

चम्पानगरी अति समृद्धशाली एवं विविध राजपरिषदों से युक्त थी। चम्पानगरी का ही एक विशेष उपनगर राजगृह था जिसका इस ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर विवेचन हुआ है। यह उपनगर विविध प्रकार के शृंगाटक आकार के मार्ग वाला, तिराहे, चौराहे, चतुर्मुख, पथ एवं महापथ आदि से सुशोभित था।^७ क्षेत्रफल की दृष्टि से इसका विस्तार उत्तर-पूर्व दिशा में फैला हुआ था जो विविध प्रकार के उद्यानों, तोरण द्वारों एवं नाना प्रकार की वन सम्पदाओं से युक्त था।^८ मूलतः कथाकार ने चम्पानगरी

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १/१०२.
२. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, डॉ. जगदीशचन्द्र जैन, पृ०-५०९.
३. औपपातिक सूत्र १/११.
४. भगवान महावीर और उनका चिन्तन, डॉ. भागचन्द्र भास्कर, पृ० १०६.
५. औपपातिक सूत्र, १/१२.
६. अन्तगडदशांग, पृ० १८६-१८७.
७. ज्ञाताधर्मकथांग, १/१०९.
८. वही, २/२-३.

एवं राजगृह इन दो को ही आधार बनाया है क्योंकि महावीर ने इन दोनों स्थानों पर ही अपना अधिकांश समय व्यतीत किया था।

द्वारकानगरी का क्षेत्रफल देते हुए कहा गया है कि वह पूर्व-पश्चिम में १२ योजन लम्बी और उत्तर-दक्षिण में नौ योजन चौड़ी थी। इसकी रचना अलकापुरी/ इन्द्रपुरी के समान की गयी थी। इसके उत्तर-पूर्व दिशा में रेवतक पर्वत/गिरनार पर्वत इसकी शोभा में चार चाँद लगाते थे जो बहुत ऊँचे तथा आकाशमार्ग को छूनेवाले थे।^१ पंचम अध्याय में सौगंधिका नगरी का उल्लेख है जो समृद्धशाली थी।^२ इसी सौगंधिका नगरी को कथाकार ने परिव्राजकों के निवास की नगरी माना है।^३ वितशोकानगरी को विजय क्षेत्र की राजधानी कहा गया है। विजय क्षेत्र को सलिलावती नाम से भी सम्बोधित किया गया है।^४ अंगदेश में श्रावस्तीनगर,^५ कुणाल, मिथिला, विदेह, हस्तिनापुर, कुरु, पांचाल, कांपिल्य आदि नगरों का उल्लेख एक मात्र मल्ली अध्ययन में हुआ है। मिथिला का भी उल्लेख आया है।^६

इस प्रकार इस आगम में केवल नगरों का उल्लेख मात्र नहीं है, अपितु उनकी परिधि, क्षेत्र, विस्तार आदि का भी वर्णन है।

प्रमुख नदियाँ

ज्ञाताधर्मकथांग में विविध नदियों के वर्णन में गंगा को महानदी कहा गया है।^७ जैनागम साहित्य एवं ज्ञाताधर्मकथांग में सीता, नारीकान्ता, रक्ता, रक्तावली आदि महानदियों का उल्लेख भी हुआ है।^८ सीतोदान को भी महानदी कहा गया है।^९

वनों का विवेचन

ज्ञाताधर्मकथा में नैसर्गिक रूप में वनखण्डों का समावेश है। मणिकर श्रेष्ठी ने नंदा पुष्करणी के चारों ओर वनखण्ड लगवाए, रोपे, उनकी रखवाली की, संगोपन किया इत्यादि वर्णन के प्रसंग में यह भी कथन किया गया है कि यह वनखण्ड विशाल पुष्पों, पत्रों और हरियाली से युक्त था।^{१०} अग्रामिक अटवी,^{११} नंदनवन^{१२}

- | | |
|--|-----------------|
| १. ज्ञाताधर्मकथांग, ५/२-३. | २. वही, ५/३०. |
| ३. वही, ५/४०. | ४. वही, ८/३. |
| ५. वही, ८/७९. | ६. वही, ८/१६४. |
| ७. वही, ४/२. | |
| ८. स्थानांगसूत्र २/२९२, २/३०२, ज्ञाताधर्मकथांग १९/२. | |
| ९. वही, ८/२. | १०. वही, १३/१३. |
| ११. वही, १८/२९. | १२. वही, ५/३. |

एवं रत्नद्वीप देवता नामक देवी के निवास स्थान के चारों ओर में चार वनखण्ड थे जिनके नामों का उल्लेख नहीं है।^१ उस प्रासाद के दक्षिण दिशा में जो वनखण्ड स्थित था उसे दुर्गन्धयुक्त कहा गया है।^२ इसका कारण यही कहा जा सकता है कि उस वन में जो दुर्गन्ध आती थी वह सोंप आदि के मृत कलेवर से रही होगी। वहाँ प्राणी रक्षा का अभाव रहा होगा इसलिए दक्षिण दिशा का यह वनखण्ड दुर्गन्धित, प्रदूषित वातावरण से युक्त रहा होगा।

गुफा

एक मात्र सिंह गुफा^३ का उल्लेख ही ज्ञाताधर्म में मिलता है। पंचम अध्ययन में गुफा का उल्लेख नहीं है, परन्तु बहुसंख्यक गुफाएँ रेवतक पर्वत में थीं, ऐसा उल्लेख है।^४

द्वीप

कालिकद्वीप— कालिकद्वीप जहाँ पर चाँदी, सोने, रत्नों, हीरों आदि की खानें थीं। उसमें विविध प्रकार के अश्व भी प्राप्त होते थे। कालिकद्वीप को समृद्धशाली द्वीप भी कहा गया है।^५

जम्बूद्वीप— प्रायः कथानक के प्रारम्भिक वर्णन में जम्बूद्वीप को किसी न किसी रूप में अवश्य लिया गया है। इसे अत्यन्त बड़ा द्वीप माना है।^६

रत्नद्वीप— यह द्वीप अनेक योजन लम्बा, चौड़ा एवं अनेक योजन घेरे वाला था। इसके प्रदेश में अनेक प्रकार के वनखण्ड भी थे।^७

पर्वत

रेवतक पर्वत जिसे गिरनार भी कहते हैं। यह फूलों के गुच्छों, लताओं और बल्लियों से व्याप्त था। हंस, मृग, मयूर, कोंच, सारस, चक्रवाक और कोयल आदि पक्षियों के झुण्डों, झरने, जलप्रपात आदि से सुशोभित था।^८

इस तरह नदी, उपवन, द्वीप आदि के भौगोलिक विवेचन सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री इस ग्रन्थ में समाविष्ट है जिनमें से विस्तार भय के कारण कुछ का ही उल्लेख यहाँ किया गया है।

१. ज्ञाताधर्मकथांग, ९/१३.

२. वही, ९/३२.

३. वही, १८/२४.

४. वही, ५/३.

५. वही, १७/९.

६. वही, १/१३.

७. वही, ९/१२.

८. वही, ५/३.

सामाजिक जीवन

सामाजिक रचना के ताने-बाने में वर्ण, जाति, परिवार, विवाह, संस्कार, नारी-स्थान, आहार-विहार आदि को स्थान दिया जाता है। इसलिए ज्ञाताधर्म में प्रतिपादित सामाजिक जीवन के कुछ उपादान इस प्रकार हैं—

वर्ण व्यवस्था— आगम साहित्य से यह प्रतीत होता है कि समाज आर्य और अनार्य दो वर्गों में विभाजित था। यद्यपि जैन परम्परा में कर्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था मानी गयी है जिसमें प्रारम्भ में क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों का ही उल्लेख मिलता है। किन्तु कालान्तर में जैन वर्ण-व्यवस्था में भी क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्णों के साथ ब्राह्मण वर्ण का समावेश हो गया जिसे वैदिक परम्परा से प्रभावित व्यवस्था कह सकते हैं।

ब्राह्मण— ज्ञाताधर्मकथांग में ब्राह्मण के लिए प्राकृत भाषा का 'माहण' शब्द प्रयुक्त हुआ है।^१ जैन आगमों में अनेकों जगह ब्राह्मण और श्रमण शब्द का प्रयोग एक साथ हुआ है इससे यह प्रतीत होता है कि समाज में इन दोनों को सम्माननीय स्थान प्राप्त था।^२

क्षत्रिय— जैन आगम साहित्य में क्षत्रिय के लिए प्राकृत भाषा में 'खत्तिय'^३ शब्द आया है। प्राचीनकाल में क्षत्रियों को समाज में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था। ये छत्र, मुकुट तथा चामर इत्यादि राज्य चिह्नों से युक्त होते थे।^४

वैश्य— वणिक् के लिए प्राकृत भाषा में 'वइस्स'^५ शब्द है। ज्ञाताधर्म में वैश्य के लिए श्रेष्ठी (सेठ) शब्द का प्रयोग किया गया है।^६ क्षत्रियों के बाद इन्हें ही समाज में श्रेष्ठ स्थान दिया गया था।

शूद्र— शूद्र, चाण्डाल आदि निम्न जातियों के रूप में समाज में स्थापित थे। शूद्र प्रायः निम्न श्रेणी का कार्य करते थे इस कारण इनका सर्वत्र निरादर होता था। अन्य जातियों की तरह इनका भी एक परिवार होता था, जहाँ ये रहते थे।

चाण्डाल— चाण्डाल पाप कर्म करते थे। इस कारण समाज में इन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। यह अत्यन्त भयानक क्रूर कर्म करने वाले, दया से

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १६/३.

२. वही, १४/४९.

३. विपाकसूत्र, ५/६.

४. ज्ञाताधर्मकथांग, १/३०.

५. विपाकसूत्र, ५/६.

६. ज्ञाताधर्मकथांग, २/८.

रहित एवं नरसंघातक होते थे।^१ यद्यपि जैन परम्परा में चाण्डाल द्वारा भी श्रमण दीक्षा लेने का उल्लेख है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन जैन समाज में चाण्डाल को भी औरों की भाँति समान अधिकार प्राप्त थे।

इनके अतिरिक्त ज्ञाताधर्मकथांग में निम्न जातियों के रूप में नाई, मयूर पोषक का नाम भी आता है किन्तु आलंकारिक पुरुष (नाई) की स्थिति संतोषप्रद होती थी। राजा द्वारा इनको यथायोग्य सम्मान प्राप्त होता था। जब कोई राजा या राजकुमार दीक्षा लेने जाते थे तो उनका मुण्डन नाई ही करता था। नाई सुगंधित पदार्थों से हाथ पैर धोकर मुँह पर श्वेत वस्त्र बांधकर बाल को काटता था।^२ इसी प्रकार मयूर पोषकों को भी राजा द्वारा जीविका हेतु द्रव्य मिलता था।^३

कुटुम्ब

प्राचीनकाल में संयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित थी। यह एक प्रकार की संस्था होती है इसी के कारण मनुष्य का उत्थान सम्भव था। जैन सूत्रों से यह विदित होता है कि परिवार में माता-पिता, पुत्र, भाई, बहन के मध्य परस्पर प्रगाढ़ प्रेम होता था। वे एक-दूसरे के सुख-दुःख के भागीदार होते थे।^४ माता-पिता, भाई-बहिन के अतिरिक्त शादी के बाद एक परिवार और इस संस्था में जुड़ जाता था। जिसमें सास-ससुर मुख्य होते थे। संयुक्त परिवार में पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, माता-पिता, पुत्र-वधू, धाय माता, दास-दासी, नौकर-नौकरानियाँ एक साथ रहते थे।^५ परिवार में पिता की देवता के समान पूजा की जाती थी।^६ पिता समय-असमय अपने पुत्रों-पुत्रवधुओं की परीक्षा लिया करते थे।^७ राजा भी अपने पुत्रों को अत्यधिक सम्मान देता था। श्रेणिक राजा अपने पुत्र अभयकुमार की मंत्रणा से ही राज्यकार्य संचालित करता था।^८ राजा जब प्रव्रज्या ग्रहण करता था तो अपने ज्येष्ठ पुत्र को राजकार्य सौंप देता था।^९ परिवार में पुत्री को भी सम्मान प्राप्त था।^{१०}

शिक्षा एवं विद्याभ्यास

प्राचीनकाल से ही शिक्षा सुनियोजित तथा सुव्यवस्थित रूप से प्रदान की जाती थी। हाँ! यह जरूर था कि वह शिक्षा गुरु के पास (गुरुकुल) जाकर प्राप्त की

१. ज्ञाताधर्मकथांग २/९.

३. वही, ३/२४.

५. वही, ८/८३.

७. वही, ७/५.

९. वही, ८/१०.

२. वही, १/३९.

४. वही, १८/३९.

६. वही, १८/३७.

८. वही, १/१५.

१०. वही, ८/३१, ३४.

जाती थी।-शिक्षा सभी वर्गों को सुलभ थी। यह प्रायः एकान्त जगहों पर दी जाती थी।^१ बालक जब आठ वर्ष का हो जाता था तो माता-पिता शुभ तिथि तथा शुभ मुहूर्त में उसे शिक्षा प्राप्त करने के लिए कलाचार्य के पास भेज देते थे।^२ शिक्षकों को बड़ा ही आदर एवं सम्मान प्राप्त था। उन्हें समय-समय पर प्रीतिदान एवं पारितोषिक भी मिलते रहते थे।^३

ज्ञाताधर्मकथा में कला

प्राचीनकाल में शिक्षार्थी को चार वेद, छः वेदांगों, न्याय, पुराण, धर्मशास्त्र, गणितशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र एवं छन्दशास्त्र में प्रवीण कराया जाता था।^४ जैन सूत्रों से यह विदित होता है कि बालकों को कलाचार्य के पास भेजकर बहतर प्रकार की कलाओं में प्रवीण कराया जाता था। फलतः उनके नौ अंग दो नेत्र, दो कान, दो नाक, जिह्वा, त्वचा और मन जो बाल्यावस्था अपरिपक्वावस्था में रहते थे वे परिपक्व हो जाते थे।^५ ज्ञाताधर्मकथा में बहतर कलाओं का विस्तृत विवेचन मिलता है।

ज्ञाताधर्म में भाषा

ज्ञाताधर्म में चार प्रकार की वाणी/भाषा का उल्लेख प्राप्त होता है—

- (१) आख्यापना- सामान्य रूप से प्रतिपादित करनेवाली वाणी।
- (२) प्रज्ञापना - विशेष रूप से प्रतिपादित करनेवाली वाणी।
- (३) संज्ञापना - सम्बोधन करनेवाली वाणी
- (४) विज्ञापना - अनुनय विनय करनेवाली वाणी।^६

वस्त्र एवं वेशभूषा

आचारांग की भाँति ज्ञाताधर्म में भी विविध प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख है। आचारांग में छः प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख हुआ है- जांगमिक, भांगिक, सानिक, पोत्रक, लामिक और तूलकृता। इन छः प्रकार के वस्त्रों को मुनि धारण करते थे। साध्वी चार संघाटिका (चादर) धारण करती थीं। चादर एक, दो या तीन हाथ प्रमाण

-
- | | |
|--|--------------------------|
| १. वही, अचारांग २-२/४१२. | २. ज्ञाताधर्मकथांग १/९८. |
| ३. वही, १/१००. | |
| ४. विपाकसूत्र ४/५, उत्तराध्ययन सूत्र १४/३. | |
| ५. ज्ञाताधर्मकथांग १/१०१. | ६. वही, १/२७. |

विस्तृत तथा चार हाथ प्रमाण लम्बी होती थी।^१ ज्ञाताधर्मकथा के सोलहवें अध्ययन में 'मृगचर्म' का विवेचन है। साथ ही यह भी उल्लेख है कि धारिणी देवी आकाश तथा स्फटिक मणि के समान वस्त्र पहनी हुई थीं जो इतना कोमल था कि नासिका के निश्वास की वायु से उड़ जाता था।^२ राजा कोरा तथा बहुमूल्य वस्त्र धारण करते थे।^३ स्नान के पश्चात् पक्षी के पंख के समान कोमल तथा कषाय रंग से रंगे वस्त्रों से उनका शरीर पोछा जाता था।^४ उत्तरीय ओढ़नेवाले वस्त्र को उत्तरासंग कहते थे। यह लम्बा लटकता हुआ दुपट्टा होता था। इसका प्रयोग राजा लोग करते थे।^५ वस्त्रों को पहनने से पूर्व शरीर पर सुगंधित पदार्थों जैसे चन्दन, सरस आदि का विलेपन^६ तथा शतपाक और सहस्र पाक आदि श्रेष्ठ सुगंधित तेलों से शरीर की मालिश करते थे।^७

आभूषण

स्त्री तथा पुरुष शरीर को शोभायमान बनाने के लिए आभूषणों का प्रयोग करते थे। स्त्रियाँ गले में सुन्दर हार, कानों में कुण्डल, हाथों में कड़े, अंगुलियों में अंगूठी, पैरों में नुपूर तथा कमर में करधनी पहनतीं और बहुओं को श्रेष्ठ बाजूबन्द से स्तंभित करती थीं।^८ राजा लटकते हुए कटिसूत्र, कंठा, अंगूठी, एकावली^९ कुण्डल, कटुक और त्रुटिक नामक आभूषण पहनते थे।^{१०}

स्त्रियों की दशा

जैनागमों में स्त्रियों के दो रूप देखने को मिलते हैं- आदर्श और पतिता। स्त्रियों का परिवार में माता, पत्नी, बहन, पुत्री तथा पुत्रवधु का रूप था।^{११} आचारांग में स्त्रियों को आयुष्मति, यवति (आप), भगवती, उपासिका, श्राविका तथा बहन (भगिनी) आदि शब्दों से सम्बोधित किया गया है।^{१२} कहीं-कहीं ऐसे स्त्रियों का भी उल्लेख मिलता है जिन्होंने दीक्षा ग्रहण करके साध्वी व्रत धारण किया था। मल्लीकुमारी जिनहोंने दीक्षा अंगीकार करके अरिहन्त पद को प्राप्त किया था।^{१३} बहुत-सी ऐसी

- | | |
|---------------------------------|------------------------------|
| १. आचारांगसूत्र २/५/५५३. | २. ज्ञाताधर्मकथांग १/८०, ४४. |
| ३. वही, १/३०. | ४. वही, १/३०. |
| ५. वही, १/३०. | ६. वही, १/३०. |
| ७. वही, १/२९. | ८. वही, १/४४. |
| ९. वही, १/१४२. | १०. वही, १/३०. |
| ११. उत्तराध्ययनसूत्र ६/३. | १२. आचारांगसूत्र ४/५२९. |
| १३. ज्ञाताधर्मकथांग ८/१८३, १९२. | |

स्त्रियों का वर्णन भी है जिन्होंने गृह त्याग कर मुण्डित होकर जैन दीक्षा ग्रहण कर कुल, शील तथा आचरण को सुरक्षित रखा था।^१ साथ ही कुछ ऐसी स्त्रियों का भी वर्णन प्राप्त होता है जिन्हें दुराचरण के कारण मारा-पीटा जाता था।^२

विवाह

जैनागम साहित्य के अध्ययन से यह विदित होता है कि विवाह प्रायः माता-पिता अपनी इच्छा से तय करते थे। मेघकुमार का विवाह उसके माता-पिता ने शुभ मुहूर्त तथा शुभ-तिथि को करवाया था।^३ स्वयंवर विवाह में कन्या स्वयं अपने पति का वरण करती थी।^४ फिर वर के साथ कन्या का विवाह होता था।^५ कहीं-कहीं पर कन्या को पालकी में बैठाकर परिजन स्वयं लड़के को सौंप आते थे।^६ फिर सम्बन्धियों एवं मित्रों को भोजन कराया जाता और ससम्मान विदाई दी जाती थी।^७

दास प्रथा

पुरातन काल में दास-दासी प्रथा का प्रचलन था। सम्पन्न एवं धनाढ्य गृहस्थ अपने यहाँ दास-दासियों को रखते थे।^८ कई स्थानों पर विवाह के अवसर पर दास-दासी भेंट करने का रिवाज भी था।^९

गणिकाएँ

ज्ञाताधर्म में अनेक नृत्य, गीत एवं रति क्रिया से अपना जीविकोपार्जन करने वाली स्त्रियों का वर्णन मिलता है। ये स्त्रियाँ नगर की शोभा मानी जाती थीं एवं राजा विभिन्न अवसरों पर इनके साथ नगर भ्रमण करते थे।^{१०} ज्ञाताधर्म से यह भी ज्ञात होता है कि ये गणिकाएँ चौसठ कलाओं में निपुण, उनतीस प्रकार की विशेष क्रीड़ा करनेवाली, इक्कीस प्रकार के रतिगुणों में निपुण, पुरुष के बत्तीस उपचारों में प्रवीण एवं अट्टारह भाषा की जानकार होती थीं।^{११}

स्वप्न

ज्ञाताधर्मकथा के अनुसार ७२ स्वप्न हैं जिसमें ४२ स्वप्न और ३० महास्वप्नों

- | | |
|---|-----------------|
| १. ज्ञाताधर्मकथांग, २, श्रुतस्कन्ध, १/१५. | |
| २. वही, १६/२७. | ३. वही, १/१०४. |
| ४. वही, १६/१०८. | ५. वही, १६/४५. |
| ६. वही, १४/२२. | ७. वही, १६/४६. |
| ८. वही, २/२१. | ९. वही, १६/१२८. |
| १०. वही, १६/९४. | ११. वही, ३/६. |

का उल्लेख है।^१ विद्वानों का मत है इन तीस महास्वप्नों में से एक भी स्वप्न दृष्टिगत होने पर द्रष्टा को आरोग्य, दीर्घायु, कल्याण और महान सुखों की प्राप्ति होती है।^२

मनोरञ्जन

प्राचीन समय में मनोरञ्जन के अनेक साधनों का उल्लेख हमें जैन आगमों में प्राप्त होता है। जिनमें मनोरञ्जन करानेवाली दासियाँ, कन्दूक एवं जल क्रीड़ा द्वारा मन बहलाना, उपवन एवं बाग में टहलना, स्त्री एवं पुरुष द्वारा चोपड़ खेलना पुरुषों द्वारा मयूरों को नृत्य कराना आदि मुख्य हैं।^३

उद्यान

जैन साहित्य में जीर्ण उद्यान (जो राजगृह के बाहर स्थित था), सुभूमिभाग उद्यान (जो चम्पानगरी के बाहर स्थित था) आदि का वर्णन प्राप्त होता है। विभिन्न प्रकार के फूल के पेड़ों से शोभायमान इन उद्यानों में अनेक श्रमण अपने शिष्यों सहित आकर ठहरते थे एवं नगर के व्यक्ति भी मनोरञ्जन हेतु इनका उपयोग करते थे।^४

नृत्य एवं नाटक

ज्ञाताधर्मकथा में बहतर कलाओं में संगीत, नृत्य एवं नाटक का भी समावेश है। यह संगीत गद्य एवं पद्यमय गेय, मनोहर सप्तस्वर, सुखान्त, ग्यारह अलंकारों एवं आठ गुणों से युक्त होता था।^५ आगमों में बत्तीस प्रकार के नाटकों के उल्लेख मिलते हैं। नाटक करते समय स्त्री एवं पुरुष विभिन्न आभूषणों, मांगलिक चिह्नों एवं उपकरणों से सुसज्जित होते थे।^६ ज्ञाताधर्म में उल्लेख आया है कि गुणशील उद्यान में दुर्दुर नामक देव ने ३२ प्रकार के नाटक दिखाए थे।^७

आहार

जैन साहित्य में अशन, पान, खादिम, स्वादिम आदि चार प्रकार के भोजन का उल्लेख है। तत्कालीन समाज में भोज्य पदार्थों के अन्तर्गत अनाज, सब्जी, दूध,

-
- | | |
|---|-------------------|
| १. ज्ञाताधर्मकथांग, १/३६. | २. वही, १/३८. |
| ३. वही, १४/७, १/४५, १/४४, ३/१२, ३/२२, २५. | |
| ४. वही, २/२, ३/२, ५/३, २/३. | |
| ५. राजप्रश्नीय सूत्र १/४/१. | ६. वही, सूत्र ७६. |
| ७. ज्ञाताधर्मकथांग, १३/४. | |

दही, घी, तेल, माँस, मदिरा आदि का प्रचलन था।^१ किन्तु ज्ञाताधर्मकथा में विभिन्न विधियों द्वारा अशुद्ध पानी को शुद्ध करने तथा मांसाहार रहित भोज्य पदार्थ का सेवन करने का विधान निर्देशित है।^२

रोग एवं चिकित्सा

ज्ञाताधर्मकथा में १६ प्रकार के रोगों का उल्लेख मिलता है।^३ इन रोगों की स्नेहपान, वमन, विरेचन, अवदहन, उद्वलन, उद्वर्तन, अपस्नान, अनुवासना, वस्तिकर्म, तक्षण, प्रक्षण, तर्पण, पुटपाक, कन्दमूल, पुष्प, फल आदि अनेक औषधियों द्वारा चिकित्सा करते थे।^४ विभिन्न औषधालयों का भी संचालन होता था जहाँ बीमारों की चिकित्सा की जाती थी।

विशिष्ट आराधना

जैन आगमों में कार्य को सिद्ध करने के लिए देवताओं की आराधना का उल्लेख मिलता है। जैसे अभयकुमार ने तेला का उपवास कर देवाराधना की थी।^५ पद्मनाभ ने द्रौपदी को पाने के लिए देवआराधना की थी।^६

त्यौहार एवं उत्सव

जैन आगमों में अनेक पर्वों एवं उत्सवों का उल्लेख प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ पुत्रोत्सव दस दिन तक धूमधाम से मनाया जाता था। इस अवसर पर कैदियों को मुक्त करने का भी उल्लेख मिलता है।^७ नामोत्सव के अवसर पर स्वजनों एवं सम्बन्धियों को अनेक वस्त्र एवं अलंकारों से सम्मानित किया जाता था।^८ इसी प्रकार विवाह उत्सव एवं दीक्षा महोत्सव का उल्लेख प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए मेघकुमार दीक्षा समारोह, थावच्चा कुमार दीक्षा समारोह आदि का वर्णन महत्वपूर्ण है।^९ अनेक देवी-देवताओं की पूजा भी उत्सव के रूप में की जाती थी। जैसे नागोत्सव, इन्द्रोत्सव, यक्षोत्सव।^{१०}

इस प्रकार ज्ञाताधर्मकथा में चारों वर्णों के पात्रों को लेकर उनके आचार-विचार, धर्म-कर्म, नीति-व्यवहार आदि पर स्वतन्त्र रूप से प्रकाश डाला गया है। इस आधार

- | | |
|---------------------------|-----------------|
| १. ज्ञाताधर्मकथांग, २/३३. | २. वही, १२/१६. |
| ३. वही, १३/२१. | ४. वही, १३/२२. |
| ५. वही, १/६७. | ६. वही, १/८२. |
| ७. वही, १/९०, ९१. | ८. वही, १/९५. |
| ९. वही, १/१४२, १४३, १५४. | १०. वही, १/१४१. |

पर यह कहा जा सकता है कि उस समय की सामाजिक व्यवस्था के घटक आधुनिक युग को निश्चित ही नई दिशा प्रदान करने में समर्थ हैं। राजा नीति निपुण एवं प्रजारक्षक होता था जो आज भी संवैधानिक है। परिवार में माता-पिता, भाई-बहिन की जो व्यावहारिक स्थिति पूर्व में थी वह अब विलुप्त होती हुई नजर आ रही है, क्योंकि परिवार विभाजित होते जा रहे हैं। परन्तु पूर्व में ऐसा नहीं था इसलिए सभी प्रकार की समाज व्यवस्था बनी हुई थी। समाज में नारी का स्थान सम्मानजनक था। कन्या, पत्नी, माता, विधवा, साध्वी, गणिका आदि को तात्कालीन समाज में शिक्षित बनाया जाता था ताकि वे नाना प्रकार के आडम्बरों से रहित सदाचारपूर्वक जीवनयापन कर सकें। उस समय कुल मर्यादा को विशेष महत्त्व दिया जाता था जो आज भी विद्यमान है, परन्तु कुछ अनावश्यक व्यवधान कुल मर्यादा में बाधक बन गये हैं, अतः आज इस प्रकार के आगमिक विषय को अत्यन्त प्रभावशाली माना जा सकता है।

तत्कालीन समाज में खान-पान आदि पर भी विचार किया जाता था। अन्नाहार, फलाहार और मांसाहार ये तीनों आहार प्रचलित थे परन्तु अन्नाहार और फलाहार को ही सर्वत्र महत्त्व दिया गया, मांसाहार को नहीं। आज शाकाहार का आन्दोलन नया नहीं है, बल्कि यह प्राचीनकाल में भी विद्यमान था। आज भी इसकी परम आवश्यकता है क्योंकि मांसाहार से मूल प्राणियों के वध से पर्यावरण प्रदूषण भी होता है, अतः जो ज्ञाताधर्म में भोजन-पान-सम्बन्धी व्यवस्थाएँ की गयी हैं वे व्यक्ति को न केवल निरोगी बनाती हैं, अपितु जीव संरक्षण में भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं।

अतः समाज मानव जीवन के लिए एक ऐसा संगठित स्थान है जहाँ परम्पराएँ बनती हैं और बिगड़ती भी हैं। अतः सुखी सामाजिक व्यवस्था की तब से अब तक मांग बनी हुई है। सुखी समाज की कल्पना आचार-विचार की सम्यक्-विधि से ही संभव है। अतः सदाचरण युक्त सामाजिक जीवन को बनाए रखना ही इस आगम की प्रमुख शिक्षा है।

शासन-व्यवस्था

जैन अंग आगमों में राज्य व्यवस्था के सम्बन्ध में कोई व्यवस्थित उल्लेख नहीं है फिर भी ज्ञाताधर्मकथांग में कहीं-कहीं पर प्राप्त उस काल की राजनैतिक व्यवस्था की झाँकी मिलती है। उदाहरणार्थ- राजा, युवराज, उत्तराधिकारी, राज्याभिषेक, राजप्रासाद, मंत्री एवं पदाधिकारी, कर-व्यवस्था, न्याय-व्यवस्था आदि मुख्य हैं।

राजा

प्रजा का पालन करने के लिए राजा का होना अत्यन्त आवश्यक बताया गया है। राजा तत्कालीन शासन-व्यवस्था का केन्द्रबिन्दु था। श्रेणिक, पाण्डु, महाबल, वसु, पूरण, अभिचन्द्र आदि की राज्य-व्यवस्था का उल्लेख है। ये सभी राजा कुशल नीतिज्ञ और प्रशासक थे।

युवराज

राजा का शासन में हाथ बटाने तथा राज्य की सुदृढ़ व्यवस्था बनाए रखने के लिए युवराज का होना अत्यन्त आवश्यक था। ज्ञातार्धर्म के अनुसार मगध के राजा बिम्बिसार के समय में भी अभयकुमार ही राज्य (शासन), राष्ट्र (देश) कोश, कोठार (अन्न भण्डार), बल (सेना) और वाहन (सवारी के योग्य हाथी, अश्व आदि) पुर और अन्तःपुर की देखभाल करता था।

उत्तराधिकारी

साधारणतः राजा की मृत्यु के पश्चात् या राजा जब दीक्षा ग्रहण करने जाता था तो अपना पदभार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंप देता था।

राज्याभिषेक

राजा का राज्याभिषेक बहुत धूमधाम से किया जाता था। ज्ञातार्धर्मकथांग में मेघकुमार के राज्याभिषेक का विस्तृत विवेचन मिलता है।^१

राजमहल

राजा राजप्रासादों में रहते थे। ये प्रासाद अत्यन्त ऊँचे होते थे। ऊँचे होने के कारण इनके शिखर आकाशतल का उल्लंघन करते थे। राजप्रासाद में अन्तःपुर होता था। यहाँ पर रानियाँ निवास करती थीं। अन्तःपुर में अनेकों रानियाँ रहती थीं। अमरकंका के राजा पद्मनाभ के अन्तःपुर में सात सौ रानियाँ थीं।^२

मंत्री

मंत्री या राजा राज्य की धुरी होता था। मंत्री साम, दण्ड और भेद इन चारों नीतियों का निष्णात होने के साथ-साथ जीव-अजीव का ज्ञाता होता था।^३ मन्त्रिपरिषद् राज्य-व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग था। ये राज्य के शुभचिन्तक होते थे तथा शासन का संचालन भी करते थे।^४

१. ज्ञातार्धर्मकथांग १/१३४.

२. वही सूत्र १६/१४४.

३. वही, ९/११, १४/३.

४. वही, ५/२८.

राज्य परिषद्

राज्य के अन्य सहायकों में अनेक गणनायक, क्षेत्राधिपति, दण्डनायक, ईश्वर (युवराज), तलवर (राजा द्वारा प्रदत्त स्वर्ण के पट्टे वाले), मांडलिक (कतिपय ग्रामों के अधिपति) कौटुम्बिक (ग्राम का स्वामी) ज्योतिषी, द्वारपाल, सेनापति, सार्थवाह, दूत और सन्धिपाल आदि होते थे।^१

कोषागार

राज्य का महत्वपूर्ण आधार होने के कारण राजकोष पर भी प्राचीन जैन ग्रन्थों में चर्चा की गई है। ज्ञाताधर्मकथांग में राजकोष को श्रीग्रह कहा गया है।^२

कर

ज्ञाताधर्मकथांग में विभिन्न प्रकार के करों का उल्लेख मिलता है।^३ विशेष अवसरों पर इन करों में छूट भी प्रदान की जाती थी।^४ जैन अंग आगम साहित्य में विभिन्न प्रकार के करों का वर्णन है। गायों पर प्रतिवर्ष लगनेवाला कर, चुंगी, किसानों से लिए जानेवाला कर, अपराध के अनुसार अपराधियों से लिया जानेवाला कर^५ आदि अट्टारह प्रकार के करों का वर्णन है।^६

भेंट या घूस

जैन साहित्य से यह मालूम होता है कि उस वक्त रिश्वत का प्रचलन था। व्यक्ति अपना कार्य निकलवाने के लिए कर्मचारियों को भेंट (रिश्वत) देते थे। ज्ञाताधर्मकथांग में धन्य सार्थवाह ने अपने बालक को ढूँढ़ने के लिए नगर रक्षक कोतवाल को बहुमूल्य भेंट दिया था।^७

न्याय-व्यवस्था

न्याय-व्यवस्था, शासन प्रणाली का अभिन्न अंग था। अपराधियों को अपराध के अनुसार दण्डित किया जाता था। भयंकर अपराध करनेवाले व्यक्ति को अंग-भंग से लेकर मृत्युदण्ड भी दिया जाता था। कभी-कभी बेड़ियों में बांधकर भोजन पानी बन्द कर दिया जाता था, तो कभी अर्थदण्ड दिया जाता था। कभी देश निर्वासन

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १/३०.

२. वही, १/१३८.

३. वही, १/९१.

४. वही, ८/७४, १७/२५.

५. वही, १/९१.

६. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० १११-११२.

७. ज्ञाताधर्मकथांग २/२६.

तो कभी कारावास की सजा दी जाती थी।^१ परन्तु कभी उत्सव एवं राज्याभिषेक के समय सजा माफ करने का भी उल्लेख प्राप्त होता है।^२

सैन्य-व्यवस्था

ज्ञाताधर्म में सैन्य-व्यवस्था के रूप में सेना, सेनापति, सैनिक आदि के प्रसंग देखने को मिलते हैं। सेना के अश्व, गज, रथ एवं पैदल ये चार अंग होने के कारण इन्हें चतुरंगिणी सेना कहा जाता था।^३

अस्त्र-शस्त्र

ज्ञाताधर्म से ज्ञात होता है कि पुरातनकाल में धनुष, बाण, तलवार, बछ्छी, भाले, ढाल,^४ चक्र, गदा, अवरोध, चाबुक, कैची, हल, लाठी आदि अस्त्र-शस्त्रों का प्रचलन था। ७२ कलाओं में धनुर्विद्या को एक कला माना गया है।^५ सैनिक एवं रक्षक भाले का प्रयोग मारने एवं सुरक्षा के रूप में करते थे। युद्ध में वाद्यों की ध्वनि, ध्वज पताकाएँ एवं रथ पर विशेष चिह्न अंकित रहते थे जो रथ पर आरूढ़ व्यक्ति की पहचान कराते थे।^६

संदेशवाहक

संदेशवाहक का कार्य दूत के रूप में संदेश पहुँचाना होता था। द्रुपद राजा ने द्रौपदी के स्वयंवर हेतु सभी राजाओं के पास दूत भिजवाए थे।^७

युद्ध नीति

युद्ध में निपुण व्यक्ति साम-नीति, भेद-नीति, उपप्रदान-नीति के ज्ञाता होते थे। युद्ध में कलह (वाग्युद्ध), युद्ध (शस्त्रों का समर) का उल्लेख प्राप्त होता है।^८

व्यय

राज्य का सफल संचालन करने हेतु राजा को शासन-व्यवस्था, सैन्य-व्यवस्था, न्याय एवं सुरक्षा और जनकल्याण के कार्यों पर अत्यधिक व्यय करना पड़ता था।^९

१. ज्ञाताधर्मकथांग, २/३३, २/३०, ८/१०६, ८/९०, २/५८, १/७८.

२. वही, १/९० ३. वही, ८/१२८, १/४४.

४. वही, १८/२२. ५. वही, १/९९.

६. वही, १/४४. ७. वही, १६/८६.

८. वही, १६/१२९.

९. वही, १/२४, १/३५, २/३१, १८/३९.

सामाजिक जीवन की तरह राजनैतिक व्यवस्था भी अत्यन्त उपयोगी मानी गयी है। नैतिक जीवन, सदाचार, धर्मरक्षा, अर्थरक्षा, जीवन रक्षा, प्राणी रक्षा, दण्ड-व्यवस्था, न्याय-नीति, नगर सुरक्षा, वन संरक्षण, कर-व्यवस्था आदि के लिए शासन व्यवस्था आवश्यक है। कथाकार ने सभी जगह राजा को प्रजारक्षक, राजपुत्र को जनसेवक, मंत्री को शासन-व्यवस्था में सहभागी, पुरोहित को सामाजिक योगदान में अग्रणीय, मण्डप को विचार-विमर्श का केन्द्र, अन्तःपुर को रानियों के निवास का सुन्दर स्थान एवं राजप्रासाद आदि को भव्य तथा नगर की शोभा का केन्द्रबिन्दु माना है।

पड़ोसी देश एवं राष्ट्र की सुरक्षा हेतु सेना की व्यवस्था की जाती थी जिसमें पदाति सैन्य, अश्व सैन्य, वाहन एवं जलयान-व्यवस्था प्रमुख थी, क्योंकि पड़ोसी राजा की राजनीति या दुष्चक्र का प्रभाव कब और किस समय युद्ध का रूप धारण कर ले यह निश्चित नहीं रहता था। सेनापति सेना का प्रमुख होता था। आज भी युद्ध क्षेत्र में यह व्यवस्था देखने को मिलती है। अस्त्र-शस्त्र आदि में अग्रेयास्त्र, प्रक्षेपास्त्र आदि प्रमुख थे जो आज भी विद्यमान हैं।

राज्य शासन का कार्य राजा स्वयं करता था। अपराधों की जाँच के लिए मंत्री भेजे जाते थे। वे जो अपराध प्रस्तुत करते थे उन्हें विशेष न्यायाधीश के द्वारा उचित न्याय दिलवाया जाता था। गुप्तचर विभाग, चोरी, डकैतों आदि का पता लगाता था। इसके पश्चात् अपराधी को दण्ड दिया जाता था। राज्य की सुरक्षा, प्रजा की रक्षा एवं दुष्काल के समय लोगों की सहायता हेतु बड़े-बड़े कोषागार बनाए जाते थे। धन-व्यवस्था के लिए कर लगाया जाता था। जीवन रक्षा के लिए आहार, औषधि आदि की व्यवस्था की जाती थी। चोरों को रोकने के लिए कोतवाल आदि की व्यवस्था की जाती थी। छोटे-मोटे विवादों का ग्राम, उपग्राम, नगर, उपनगर आदि में ही निपटारा किया जाता था।

इस प्रकार की शासन-व्यवस्था से यह प्रतीत होता है कि बिना राजा, मंत्री, सेना आदि के द्वारा राज्य सत्ता को स्थायित्व नहीं प्रदान किया जा सकता। अतः कहा जा सकता है कि शासन-व्यवस्था आज भी उतनी ही उपयोगी है जितनी पूर्व में थी।

आर्थिक जीवन

संसार में अर्थ का महत्त्व सर्वत्र व्याप्त है। ज्ञाताधर्म में नन्द नामक मणिकार ने धन देकर पुष्करिणी बनाने की आज्ञा प्राप्त की थी।^१ शास्त्रों में अर्थ एवं काम

१. ज्ञाताधर्मकथांग, मुनिमधुकर १०/११/१३/११.

की सिद्धि अर्थ से ही मानी गयी है। कहा गया है कि जिस के पास सम्पत्ति है उसी के सब मित्र-बन्धु हैं, वही पराक्रमी है, वही गुणी है, वही पण्डित है।^१ ज्ञाताधर्मकथा में श्रेणिक पुत्र अभयकुमार को अर्थशास्त्र का ज्ञाता बताया गया है।^२ चार पुरुषार्थों में अर्थ का महत्वपूर्ण स्थान है। ज्ञाताधर्म में अर्थ/धन के कमाने के साधन आदि पर भी विचार किया गया है।

अर्थोपार्जन के साधन

अर्थोपार्जन से तात्पर्य वहाँ के व्यापार, व्यवसाय, उत्पादन एवं धन अर्जित करने के साधनों से लिया जाता है। जैन आगमों में अर्थ एकत्र करने में कृषि का विशेष योगदान माना गया है। कृषि, वाणिज्य एवं शिल्प कार्य करने वालों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।^३ कृषि हेतु जिन उपकरणों को कार्य में लिया जाता था उनका भी उल्लेख आगमों में प्राप्त है।^४ ज्ञाताधर्म में मेढ़ी शब्द का प्रयोग खलिहान में एक ही केन्द्रबिन्दु के चारों ओर घूमकर अनाज साफ करने के यन्त्र के लिये हुआ है।^५ कृषि के लिए कौन-सी ऋतु का कब और किस फसल हेतु उपयोग होता है इसका वर्णन भी आगमों में उपलब्ध है।^६ फसलों को एकत्र करने के लिये कोठार का अन्न भण्डार के रूप में उपयोग किया जाता था।^७

अनाज मिट्टी के बड़े-बड़े कोठारों में रखकर पत्थर, मटका, लोहा, मिट्टी या गोबर से लेपकर बन्द कर दिया जाता था और भविष्य में कोई अनाज चुरा न ले इस हेतु मोहर लगाकर सील भी कर दिया जाता था।^८

ज्ञाताधर्मकथांग में शालीं (चावल) जो तत्कालीन धान्यों में प्रमुख था, का उल्लेख प्राप्त होता है।^९ गेहूँ का भी उल्लेख अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है।^{१०} साथ ही दाल, ईख, जौ, तिल, सरसों, कपास, मसाले, फूलों, सुगन्धित पदार्थों, कपूर, लौंग, चन्दन, अगर, लोभाण आदि का विवरण मिलता है।^{११}

१. कौटिल्य अर्थशास्त्र १/७, रामायण ६/८३/२१.

२. ज्ञाताधर्मकथांग १/५.

३. स्थानांग ५/७१.

४. प्रश्नव्याकरण सूत्र १७, ज्ञाताधर्मकथा ७/१२.

५. ज्ञाताधर्मकथा १/१५.

६. वही, १/१६७.

७. वही, १/१५.

८. वही, ७/१३.

९. वही, ७/१२.

१०. वही, १/८/५४.

११. वही, ५/५९, १/२०२, १/४४, ४/२, ८/२७.

वस्त्र उद्योग

जैनागमों में जीवन निर्वाह एवं अर्थ संग्रह हेतु शिल्पकार्य, वस्त्र निर्माण, चर्म उद्योग एवं अनेक उद्योगों का वर्णन मिलता है। ज्ञाताधर्म में सामान्य एवं स्वर्णमण्डित वस्त्रों के निर्माण, उन्हें रंगना, सिलाई करना, अद्भुत महीन वस्त्रों के निर्माण जो सिर्फ निःश्वास में उड़ जाए का उल्लेख है।^१

धातु उद्योग

वस्त्र उद्योग की तरह ज्ञाता में धातु उद्योग का भी वर्णन प्राप्त होता है। ७२ कलाओं में धातु की भी शिक्षा का प्रावधान था।^२ धातु को पहले पिघलाकर उसके उपकरण बनाये जाते थे। ज्ञाता में लोहार की भट्टियों का उल्लेख प्राप्त होता है।^३ यहीं पर अन्य धातुओं के रूप में तांबा, शीशा आदि के व्यापार का भी वर्णन है।

रत्न उद्योग

इस काल में स्वर्ण एवं रत्न उद्योग भी अपनी चरम सीमा पर था। ज्ञाताधर्म में उल्लेख है कि धारिणी देवी हार, करधनी, बाजू, कड़े एवं अंगूठियाँ पहनती थीं।^४ मेघकुमार को दीक्षा के पूर्व अट्टारह लड़ोंवाले हार, एकावली, मुक्तावली, रत्नावली, पाद प्रालम्ब, कड़ा, अंगूठियों, कंदोरा, कुण्डल आदि पहनाये गये थे।^५ ज्ञाताधर्म के मल्ली नामक अध्ययन में मल्ली की स्वर्ण प्रतिमा बनाये जाने का प्रसंग प्राप्त होता है।^६ ज्ञाताधर्म में १६ प्रकार के रत्नों का नामोल्लेख है।^७

भाण्ड एवं काष्ठ उद्योग

प्राचीन काल में मिट्टी के बर्तनों का विशेष रूप से प्रयोग होता था। कमोरशाला अर्थात् कुम्भकारों की दुकानों का उल्लेख ज्ञाताधर्मकथा में प्राप्त होता है।^८ लकड़ी से बनी नाव की मेढी जो नाव का आधार होता था, का उल्लेख प्राप्त होता है। भवनों के द्वार, कंगूरें, खिड़कियाँ आदि लकड़ी द्वारा ही निर्मित होती थीं।

अन्यान्य उद्योग

ज्ञाताधर्मकथा में तिल, अलसी, सरसों, एरण्ड, चन्दन शतपाक एवं सहस्र

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १/४४, १/९९, ८/१०३, ८/१०४.
२. वही, १/९८.
३. वही, १/९/२६.
४. वही, १/४४.
५. वही, १/१४२.
६. वही, ८/३५.
७. वही, १/६९.
८. वही, १२/१६.

पाक के तेल का उल्लेख प्राप्त होता है।^१ खाण्ड उद्योग में गन्ने को कोल्हू में पेड़कर शक्कर बनाना और उसे बिक्री हेतु बाजार में ले जाने का वर्णन है।^२ प्रसाधन उद्योग उस समय की विलासप्रियता का द्योतक है। ज्ञाताधर्म में चन्दन, चम्पा, इलायची, जूही, कस्तूरी, केसर आदि से युक्त वस्तुओं का विवरण प्राप्त होता है।^३ चित्र उद्योग में दीवारों पर, छतों पर लताओं, पुष्पों के चित्र अंकित कराये जाने का उल्लेख मिलता है।^४ रंगों के रूप में काला, हरा, लाल, नीला, पीला आदि रंगों के प्रयोग वस्त्रों के लिये किये जाते थे।^५ मद्य उद्योग में मद्य के निर्माण एवं विशेष अन्नस्रोतों पर जनता द्वारा मद्यपान करने का वर्णन है। वास्तुकला के अन्तर्गत नगर की संरचना, दुर्गोत्थान, परिखा, गुफा, देवालय, बाजार, सभास्थल, मन्दिर, आश्रम, प्याऊ, स्तूप, बावड़ियाँ आदि निर्मित किये जाते थे।^६ पशुपालन में दूध, कृषि, यातायात, मांस, सवारी एवं बोझा ढोने में पशुओं का प्रयोग होता था।^७ गायें एवं बकरियाँ पालतू पशु थे।^८ मयूर व कुक्कुट पालन का भी रिवाज था, ऐसा प्रतीत होता है।

वैश्य या व्यापारी

आगमों में दो प्रकार के व्यापारियों का उल्लेख है। प्रथम वे जो एक स्थान पर रहकर वणिज, गाथापति या श्रेष्ठी नाम प्राप्त कर व्यापार करते थे। ये एक निश्चित स्थान पर बैठकर क्रय-विक्रय करते थे। द्वितीय वे जो अनेक व्यक्तियों को साथ लेकर अन्य शहरों में जाकर व्यापार करनेवाले सार्थवाह कहलाते थे।^९ ज्ञाताधर्म में इनकी १८ श्रेणियाँ बतायी गयीं हैं। स्त्रियाँ भी व्यापार करती थीं।^{१०}

व्यवसायिक स्थल

व्यापारी अपना व्यवसाय शहर के राजमार्गों, चौराहों, तिराहों एवं बाजार विशेषों में करते थे। कहीं-कहीं पर यह भी उल्लेख है कि एक चस्तु देकर दूसरे शहर से दूसरी वस्तु ले आते थे। अर्थात् वस्तु विनिमय रूप में भी कार्य होता था।^{११}

यातायात के साधन

प्राचीन समय में व्यापार हेतु जल एवं सड़क दोनो मार्ग उपलब्ध थे। राजमार्ग

- | | |
|----------------------------|-----------------------|
| १. ज्ञाताधर्मकथा १/४२. | २. वही, १/१७-२०. |
| ३. वही, १/१/१७. | ४. वही, १/१७. |
| ५. वही, १/३०. | ६. प्रश्न व्याकरण १३. |
| ७. ज्ञाताधर्मकथांग १/१५. | ८. वही, २/६. |
| ९. वही, २/६. | १०. वही, २/८. |
| ११. ज्ञाताधर्मकथांग १७/१०. | |

को महापथ कहा जाता था। जहाँ तीन दिशाओं से आकर सड़के मिलती थीं उन्हें शृंगाटक, चार दिशाओं से आकर मिलती थीं उन्हें चौक, जहाँ छः सड़कें आकर मिलती थीं उन्हें प्रपट कहा जाता था।^१ सड़कमार्ग पर लकड़ी की गाड़ियों का प्रयोग किया जाता था।^२ ये पशुओं द्वारा खींची जाती थीं। जलमार्ग में नौकाओं का प्रयोग किया जाता था।^३ देशान्तर में जहाज के प्रयोग के भी उल्लेख मिलते हैं जिसमें डांड एवं पतवार लगे रहते थे।^४ पाल के सहारे जहाज आगे बढ़ता था। उसे रोकने के लिए पतवार डाल दिया जाता था।

इस प्रकार आजीविका के प्रथम साधनों में अंसि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्पविद्या आदि कार्यों को महत्त्व दिया गया है। इंगालकम्म, वणकम्म, साडीकम्म आदि पन्द्रह कर्म आजीविका के प्रमुख साधन थे। परन्तु इन साधनों को श्रेष्ठ नहीं कहा गया है, क्योंकि इनसे जीव रक्षण न होने के साथ-साथ पर्यावरण प्रदूषण भी होता था। इन साधनों के अतिरिक्त रत्न-व्यापार, वस्त्र-उद्योग, शिल्पकला, धातु-उद्योग, कला-शिक्षण, अश्व-शिक्षण, हस्तविद्या, रथवाहन-विद्या, लेख, नाट्य, काव्य, गजलक्षण, धातु परीक्षण, मणिसूचक, मणिभेदक, धर्नुविद्या आदि से लोग आजीविका चलाते थे। तत्कालीन समाज में बहतर प्रकार की कलाओं की शिक्षा इसी बात का संकेत करती है कि व्यक्ति इनके माध्यम से जीवन को उपयोगी बना सकता है। जहाँ व्यक्ति के लिए बहतर कलाएँ थीं वहीं पर नारियों की जीवन पद्धति को समाज में विशेष स्थान दिलानेवाली चौसठ कलाएँ थीं। इन चौसठ कलाओं को उनकी आजीविका का साधन कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

सारांशतः आर्थिक जीवन के लिए कई प्रकार के साधनों का निरूपण इस आगम में किया गया है जो न केवल उस समय उपयोगी था अपितु आज भी अत्यन्त उपयोगी एवं सार्थक है। अर्थ के बिना जीवन पद्धति नहीं चल सकती इसलिए अर्थोपार्जन के विविध साधनों का जो इस आगम में उल्लेख किया गया है उसका स्वरूप आज भी विद्यमान है।

कला एवं शिक्षण

कला मानव जीवन में सौन्दर्यानुभूमि की अभिव्यक्ति है। कला धर्म, ज्ञान और संस्कृति का दर्पण होता है। विभिन्न धर्म परम्पराओं में कलाओं का उल्लेख प्राप्त

१. ज्ञाताधर्मकथा १/४४.

२. राजप्रश्नीय सूत्र १३९/७६, ज्ञाताधर्मकथा १/२०२.

३. ज्ञाताधर्मकथा १/८/५४.

४. वही, १७/४७६.

होता है। कलाओं की संख्या कहीं-कहीं पर ६४ एवं कहीं-कहीं पर ९६ बतायी गयी हैं। ज्ञाताधर्मकथा, औपपातिक एवं प्रश्नव्याकरण में ७२ कलाओं का उल्लेख प्राप्त होता है।^१

वास्तुकला

बहतर कलाओं में वास्तुकला का विशेष विवरण ज्ञाताधर्म में प्राप्त होता है। वास्तुकला के अन्तर्गत मकान का निर्माण, छत, झरोखे, स्नानगृह, प्रेक्षा गृह, झरोखा आदि का सुव्यवस्थित निर्माण करना होता है। शास्त्रों में भूतगृह, मोहनगृह, गर्भगृह, प्रसाधनगृह, जालगृह, शालगृह आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।^२ शास्त्र में भवनों का आकार पर्वत की चोटी के समान बताया गया है जिसमें जालीवाली खिड़कियाँ होती थीं। बाहर ताला लगाने का भी प्रावधान था। कहीं-कहीं पर तो वातानुकूलित गृहों के निर्माण का भी विवरण उपलब्ध होते हैं।^३

नाट्यशाला (प्रेक्षागृह) सैकड़ों थम्बों पर वेदिका, तोरण आदि से सज्जित कर बनायी जाती थी। यह अनेक मणियों, रत्नों व पताकाओं से शोभायमान होती थी। द्वार पर तोरण लटके रहते थे, छत चित्रकला के अद्भूत नमूने दर्शाती नजर आती थी, वहाँ पर नाट्यगृह होता था जिस पर हंसासन, भद्रासन आदि में कला की प्रतिकृति के रूप में मूर्तियों का भी निर्माण कराया जाता था। राजभवनों एवं अन्य गृहों में विभिन्न पुतलियों की स्थापना की जाती थी।

धनाढ्य अपने लिए उच्च प्रासाद बनवाते थे, जो मणि, सोने व रत्नों से सुशोभित होते थे। उन प्रासादों में शानदार शयनागार होता था जिनके द्वार पर मांगलिक कलश स्थापित होते थे। शयनागार को अन्तःपुर भी कहा जाता था। शयनागार में एक गुप्त द्वार भी होता था।^४

इसी के साथ स्वयंवर मण्डल, व्यायामशाला,^५ स्नानागार,^६ मोहनगृह, पुष्करिणी,^७ सभा एवं समवसरणभवन^८ का भी उल्लेख वास्तुकला के अन्तर्गत प्राप्त होता है।

१. ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र १/९९, औपपातिक सूत्र १०७९, प्रश्नव्याकरण १/५/९६.
२. ज्ञाताधर्मकथा, पृ० ५७६. ३. वही, १३/४, विपाकसूत्र ३/२६.
४. वही, १४/२१. ५. वही, १/२९.
६. वही, १/३०. ७. वही, १३/१२.
८. वही, १/२६.

चैत्य स्तूप एवं उद्यान

शहर के बाहरी भागों में बड़े-बड़े सुदृढ़ खम्भों पर पताकाओं एवं सैकड़ों घण्टों से युक्त विशाल चैत्यों का निर्माण किया जाता था।^१ चैत्य को देवरूप मानकर व्यक्ति पूजा-अर्चना करता था। चैत्य में विभिन्न कलाओं को प्रदर्शित करनेवाले नृत्य, कलाबाज, मल्ल आदि निवास करते थे।

मृतक के अंतिम संस्कार के स्थल के पास स्तूप निर्मित किये जाते थे। शास्त्रों में ऋषभदेव की स्मृति में भरत द्वारा स्तूप बनाये जाने का विवरण प्राप्त होता है।

इसी प्रकार नगरवासियों के आराम एवं क्रीड़ा हेतु उद्यानों का निर्माण कराया जाता था। ये उद्यान अशोक, आम, जामुन आदि के वृक्षों से भरपूर होते थे।^२

मूर्तिकला

मनुष्य को प्राचीन काल से ही सोने, चाँदी, तांबा, पीतल, मिट्टी आदि की मूर्तियाँ बनाने का ज्ञान था। मल्लीकुमारी की स्वर्ण प्रतिमा का निर्माण इसका प्रमाण है।^३ इसके अतिरिक्त नाग प्रतिमा एवं वैश्रमण प्रतिमा का उल्लेख भी प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राप्त होता है।^४

संगीतकला

बहतर कलाओं में वाद्य बजाना, स्वरों के आरोह, अवरोह, नाचना व सात स्वरों के सात उदय स्थानों का वर्णन भी प्राप्त होता है।

वाद्यकला

प्राचीन समय में ५९ वाद्यों का उल्लेख आता है। संगीत, नृत्य एवं नाटक वाद्य के बिना अपूर्ण माने गये हैं। समस्त वाद्यों को स्वर एवं वादन विधि के अनुसार चार भागों में बांटा गया है। (१) तार रहित वाद्य, (२) तार वाले वाद्य, (३) तारसी से निकलने वाला स्वर, (४) पोल या छिद्र से निकलने वाला स्वर।^५

नाट्यकला

शास्त्रों में ३२ प्रकार के नाटकों का उल्लेख मिलता है जिसे सूर्याभदेव ने महावीर के समक्ष प्रस्तुत किया था।^६

१. ज्ञाताधर्मकथांग, १०/२.

२. वही, १/४४, २/३, ३/२, ५/३, १६/२३३.

३. वही, ८/३५.

४. वही, २/१५.

५. वही, ८/१६३.

६. वही, २/१/१०.

नाटकों में शिल्प, कला, ज्ञान, विद्या, योग एवं कर्म समाहित होने पर ही उनका सौन्दर्य रंगमंच के माध्यम से जनता के समक्ष बखूबी प्रस्तुत होता है।

युद्धकला

युद्ध को भी ७२ कलाओं में एक कला माना गया है।^१ इसमें सेना का संचालन, मोर्चा, व्यूह-रचना, कुशती, लाठी, तलवार, मुष्ठी, धनुष-बाण आदि का समावेश है।

चित्रकला

प्राचीनकाल में चित्रकला अपने भरपूर यौवन पर थी। चित्रकार भूमि पर हाव-भाव, विलास और शृंगार से युक्त प्रस्तुति करते थे। कोई चित्रकार तो ऐसे होते थे जो किसी वृक्ष, मानव या पशु का एक अंग देखकर ही सम्पूर्ण चित्र बना देते थे। जैसे— जाली.में से मल्ली के अंगूठे को देखकर चित्रकार ने हूबहू उसका चित्र अंकित कर दिया था।^२ चित्रकला में भित्तिचित्र, फलक चित्र एवं पटचित्र मुख्य थे।

लेखनकला

लेखनकला के अन्तर्गत पुस्तक, पत्र, दावात, स्याही, कलम, अक्षर, धार्मिक लेख आदि के प्रमाण प्राप्त होते हैं। शत्रुओं के विरुद्ध राजदूतों के माध्यम से पत्रों के भेजे जाने का उल्लेख ज्ञाताधर्म में प्राप्त होता है।^३ जैन ग्रन्थों में १८ प्रकार की लिपियों का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

गणितकला

बहतर कलाओं में गणित को एक कला मानकर एक से एक करोड़ तक की गिनती, एक अणु से एक योजन तक का माप, ज्यामिति एवं सम-विषम संख्याओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

हस्तकला एवं लेप कर्म

मिट्टी, लकड़ी आदि के खिलौने बनाने के कार्य को हस्तकर्म कहा गया है।^४ ज्ञाताधर्म के तेरहवें अध्ययन में बर्तनों पर लेप करने का उल्लेख भी प्राप्त होता है।^५

१. ज्ञाताधर्मकथांग १/९९.

२. वही, ८/९५.

३. वही, १६/१८०.

४. वही, १/९९.

५. वही, १३/१४.

इस प्रकार ज्ञाताधर्मकथांग में वास्तुकला, चित्रकला, संगीतकला, काव्यकला आदि कई प्रकार की कलाएँ शिक्षित समाज के मापदण्डों को प्रस्तुत करती हैं। प्राकृत साहित्य के इस आगम में पुरुषों की बहतर कलाओं एवं नारियों की चौसठ कलाओं का उल्लेख है। अन्य ग्रन्थों में भी कला के बहतर और चौसठ भेद दिए गए हैं। समवायांग, भगवती, राजप्रश्नीय, औतपातिक, कल्पसूत्र टीका आदि में उक्त प्रकार की कलाओं का विवेचन किया गया है। ये कलायें व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में जितनी महत्वपूर्ण हैं उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण शिक्षा-पद्धति के उद्देश्य को व्यक्त करने में। शिक्षा-पद्धति के क्षेत्र में कला-विज्ञान का न केवल सामाजिक जीवन, बल्कि चरित्र निर्माण, संस्कृति रक्षा आदि में महत्वपूर्ण स्थान है। इन्हीं कलाओं द्वारा प्राचीन शिक्षा-पद्धति का बोध होता है। ज्ञाताधर्म में शिक्षा के प्रारम्भ का समय आठ वर्ष का बतलाया गया है। शिक्षार्थी कलाचार्य के पास जाकर सभी प्रकार की कलाओं का ज्ञान प्राप्त करता है और जब वह पूर्ण यौवन को प्राप्त होता है तब उन शिक्षा के साधनों के माध्यम से सामाजिक जीवन के क्षेत्र में प्रवेश करता है। शिक्षित समाज में शिक्षा के बिना व्यक्ति की कोई उपयोगिता नहीं होती है। यदि शिक्षा अनर्थकारी है तो भी वह समाज, देश, राष्ट्र आदि में सम्मान प्राप्त नहीं कर पाता है।

अतः मानवीय एवं शारीरिक विकास के लिए कला एवं विज्ञान के अध्ययन की महती आवश्यकता जितनी तब थी उससे कहीं अधिक इस भौतिकवादी युग में है क्योंकि इसके बिना किसी भी तरह का विकास सम्भव नहीं है।

धार्मिक जीवन

संस्कृति के क्रमिक विकास के साथ ही मानव कल्याण के लिए धर्म का स्वरूप प्रकाश में आया। प्राचीन काल से ही मनीषियों ने धर्म को न केवल इस जन्म के कल्याण का साधन माना है अपितु अगले जन्म के कल्याण का भी साधन माना है, अतः ऐहिक अभ्युदय और पारलौकिक निःश्रेयस की प्राप्ति ही धर्म का धर्मत्व है। यदि मनुष्य अपने अधिकार के अनुसार धर्म के आदेश का अनुगमन करते हुए निष्काम भाव से कर्मों को करता रहे तो वह इहलोक में चरम सुख एवं शान्ति और परलोक में मोक्ष को प्राप्त करने में सफल हो सकता है।

प्रमुख धर्म

धर्म शब्द का अनेक रूपों में प्रयोग मिलता है जैसे- श्रुतधर्म, गृहस्थधर्म, दानधर्म, पदार्थधर्म, कुलधर्म, नगरधर्म, ग्रामधर्म, राष्ट्रधर्म, गणधर्म, संघधर्म, चरित्रधर्म

आदि।^१ ज्ञाताधर्मकथांग में धर्म के दो भेद बताए गये हैं— (१) सागार विनय, (२) अनगार विनय।^२ आचार की दृष्टि से अनगार धर्म और सागारधर्म ये भेद किये गये हैं।

ज्ञाताधर्मकथांग में गृहस्थ के लिए आगार शब्द का प्रयोग हुआ है। गृहस्थ धर्म में पाँच अणुव्रत तथा सात शिक्षा व्रत समाविष्ट हैं। ज्ञाताधर्म में वर्णित है कि श्रमणों को पाँच महाव्रत, पाँच गुप्तियों तथा बारह भिक्षु प्रतिमाओं का पालन करना चाहिए।

ज्ञाताधर्मकथांग में श्रावक व श्रमण के व्रतों एवं नियमों की संक्षिप्त चर्चा है। फिर भी प्रसंगानुसार श्रावक एवं श्रमणों के व्रतों का नामोल्लेख है जिनमें महाव्रत समिति, गुप्ति, परीषह और धर्म प्रमुख हैं।^३

अणुव्रत

श्रावक की साधना-उसके व्रतों पर ही आश्रित होती है। श्रावक का वह व्रत जिसे पूरा करने में उसे किसी भी प्रकार का कष्ट न उठाना पड़े उसे अणुव्रत कहते हैं।^४ ये अणुव्रत पाँच प्रकार के कहे गए हैं— (१) अहिंसाणुव्रत, (२) सत्याणुव्रत, (३) अस्तेयाणुव्रत, (४) ब्रह्मचर्याणुव्रत, (५) अपरिग्रहाणुव्रत।

शिक्षाव्रत

उपासकदशांग में श्रावक के ७ शिक्षाव्रतों का उल्लेख मिलता है।^५ (१) दिशापरिमाणव्रत, (२) उपभोग-परिभोग परिमाणव्रत, (३) अनर्थदण्ड परिमाणव्रत, (४) सामायिकव्रत, (५) देशावकाशिकव्रत, (६) पौषधोपवासव्रत, (७) अतिथिसंविभागव्रत। प्रत्येक व्रत के पाँच-पाँच अतिचार बतलाए गए हैं।

उपासकदशांग में श्रावक के बारह व्रतों के अतिरिक्त पन्द्रह कर्मादान का भी वर्णन है। श्रावक को कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे कर्मों का बन्ध होता है, ऐसे कार्य को करने से नरक की प्राप्ति होती है। पन्द्रह कर्मादान निम्न हैं—

(१) अंगार कर्म, (२) वन कर्म, (३) शकट कर्म, (४) भाटी कर्म, (५) स्फोटन कर्म, (६) दन्त वाणिज्य, (७) लाक्षा वाणिज्य, (८) रस वाणिज्य, (९)

१. पं० बेचरदास दोशी, जैन साहित्य का वृहद इतिहास, भाग १, पृ० १९३.

२. ज्ञाताधर्मकथांग ५/३५.

३. ज्ञाताधर्मकथांग १६/६८.

४. वही, ५/३०.

५. वही, १२/२३.

विष वाणिज्य, (१०) केश वाणिज्य, (११) यन्त्रपीडन कर्म, (१२) निर्लाछन कर्म, (१३) दावगिनदापन कर्म, (१४) सरहदतडागशोषण, (१५) असतीजन पोषण।

ग्यारह उपासक प्रतिमाएँ

ज्ञाताधर्मकथांग में श्रावकों के व्रत में ग्यारह उपासक प्रतिमाओं का भी उल्लेख आया है।^१ ग्यारह प्रतिमाएँ निम्न हैं—

(१) दर्शन प्रतिमा, (२) व्रत प्रतिमा, (३) सामायिक प्रतिमा, (४) पोषध प्रतिमा, (५) कायोत्सर्ग प्रतिमा, (६) ब्रह्मचर्य प्रतिमा, (७) सचित्ताहारःवर्जन प्रतिमा, (८) स्वयं आरम्भः वर्जन प्रतिमा, (९) भृतक प्रेष्यारम्भः वर्जन प्रतिमा, (१०) उद्दिष्ट भक्तः वर्जन प्रतिमा, (११) श्रमण भूत प्रतिमा।

श्रमण धर्म

श्रमण धर्म में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह ये पाँच महाव्रत माने गये हैं। इन पाँच महाव्रतों की ५-५ भावनाएँ मानी गयी हैं। महाव्रतों के साथ-साथ श्रमणों के लिए पाँच समिति^२ और तीन गुप्तियों का विधान किया गया है जो मनगुप्ति, वचनगुप्ति व कायगुप्ति के नाम से जानी जाती हैं।

बारह भिक्षु प्रतिमाओं का भी उल्लेख मिलता है जिसमें भिक्षु क्रमशः आहार की मात्रा कम करता जाता है। अर्थात् जितनी प्रतिमायें होती हैं उतनी ही दन्ति आहार पानी लेने का विधान है।

ज्ञाताधर्म की कथाओं में धर्म, दर्शन, आचार-विचार-आदि का वर्णन कथानक के मध्य में दृष्टान्त/उदाहरण या वस्तु स्थिति को समझाने के लिए किया गया है। प्रथम अध्ययन में अणगार, संयत, श्रुतधर्म, ज्ञान, पूजा, दान, चर्या, पुण्य, पाप, व्रत, महाव्रत आदि का विशेष वर्णन किया गया है। इसके अन्त में समाधिमरण के प्रसंग को भी दर्शाया गया है जो साधक की भावना को व्यक्त करता है। इससे साधक मृत्यु के भय से सर्वथा मुक्त हो जाता है तथा अन्तरात्मा में सम्यक्-ज्ञान और वैराग्य को उत्पन्न कर परम आनन्द की ओर अग्रसर होता है।

पञ्चमहाव्रत निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थी दोनों की साधना के लिए महत्वपूर्ण है। संघाट अध्ययन में निर्ग्रन्थ प्रवचन को विशेष महत्व दिया गया है। इसी में प्रत्याख्यान संलेखना अनशन आदि का प्रतिलेखन भी किया गया है।^३ अंडक अध्ययन में भी

१. ज्ञाताधर्मकथांग ५/३५.

२. वही, १६/६८.

३. वही, २/५२.

पाँच महाव्रतों की सार्थकता और षट्जीवनिकाय^१ के जीवों के संरक्षण पर प्रकाश डाला गया है। इसी तरह श्रमण और श्रमणी के बोध के लिए कूर्म का उदाहरण दिया गया है जिसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि जो व्यक्ति श्रमण धर्म स्वीकार कर उसकी रक्षा करता है वह मोक्ष को प्राप्त करता है।

व्रत, समिति, गुप्ति, परीषह जय, भावना, तत्त्वचिन्तन, कर्मक्षय, द्रव्यपर्याय,^२ एकत्व-अनेकत्व,^३ सिद्ध-रिद्ध,^४ महाव्रत, सिद्ध-वृद्धि,^५ निःश्रेयस धर्म, धर्म तीर्थ, धर्महित, जीवहित,^६ आराधक विराधक,^७ पंच इन्द्रिय निग्रह,^८ मासखमण,^९ आदि कई श्रमण धर्म के गुणों का विवेचन कथानकों के प्रसंग में किसी न किसी रूप में आवश्यक किया गया है।

श्रावक के धर्मों का भी विवेचन इसके मूल कथानकों में है। श्रेणिक राजा की तत्त्व के प्रति जिज्ञासा, अभय का धर्म के प्रति आस्था, धारिणी की धर्म जिज्ञासा, शुभाशुभफल की इच्छा,^{१०} जितशत्रु की श्रावकत्व दृष्टि एवं तत्त्व जिज्ञासा, विवेकशीलता, अध्यवसाय, सत् तत्त्व, तथ्य^{११} आदि श्रावक के भाव, पंच अणुव्रत, बारह प्रकार के श्रावक धर्म के प्रति रुचि,^{१२} श्रावकवृत्ति^{१३} आदि व्रतों पर भी प्रकाश डाला गया है। ज्ञाताधर्म में निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी या श्रमण-श्रमणी की तरह श्रावक-श्राविकाओं को भी पूजनीय माना गया है और कहा गया है कि जो व्यक्ति इनके प्रति श्रद्धा रखता है वह परलोक में भी दुःखी नहीं होता।^{१४}

श्रमण धर्म एवं श्रावक धर्म के विवेचन के साथ-साथ अन्य धर्मों की धार्मिक क्रियाओं एवं धार्मिक स्थिति का वर्णन भी है। सन्तान प्राप्ति के लिए देवपूजा, शुक परिव्राजक का परिव्राजक सम्बन्धी धर्म, शौचधर्म, तीर्थस्नान, त्रिदण्ड धारण करने का कथन एवं परिव्राजकों के मठ आदि का विवेचन उस समय प्रचलित विविध धार्मिक मतों की पुष्टि करता है।

१. ज्ञाताधर्मकथांग, ३/२६.

२. वही, ५/५०.

३. वही, ५/५०.

४. वही, ५/५२.

५. वही, ७/३१.

६. वही, ८/१६५.

७. वही, ११/४.

८. वही, १५/१२.

९. वही, १६/२४.

१०. वही, १/९०.

११. वही, १२/१५.

१२. वही, १२/२३, २४.

१३. वही, १२/२४.

१४. "सावयण-सावियाणं अच्चणिज्जे भवइ, परलोए विय नो आगच्छइ जाव"
ज्ञाताधर्मकथांग १५/१२.

इस प्रकार कथाओं में भारतीय समाज के सांस्कृतिक मूल्यों एवं सभ्यता का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञाताधर्म में जन साधारण से लेकर तीर्थंकर, गौतम गणधर राजा, महाराजा, रानी-महारानी, राजपुत्र, अमात्य, मंत्री, पुरोहित आदि के चरित्र-चित्रण के विस्तार में सांस्कृतिक विरासत छिपी हुई है। इन कहानियों में वन-उपवन, द्वीप, पर्वत, नदी आदि भौगोलिक प्रसंग भी यथेष्ट ज्ञान कराते हैं। शिल्पकला वर्णन में वैज्ञानिक पक्ष भी समाविष्ट हैं। इसकी प्रकृति में क्रियाशीलता और वातावरण में सजीवता है। इस प्रकार इस ज्ञाताधर्मकथा में जीवन दर्शन एवं संस्कृति के विविध पक्षों का समावेश देखा जा सकता है।

अष्टम अध्याय

उपसंहार

सर्वज्ञ की देशना का प्रतिफल आगमों में है। आगम को ज्ञान-विज्ञान का अक्षय भण्डार कहा गया है। आगमों में हमारी सांस्कृतिक विरासत के मूल तथ्य विद्यमान हैं जो इस बात की प्रेरणा देते हैं कि आगम परस्पर में विरोधरहित वचनों के सार से युक्त हैं। व्यक्ति को भोगवादी जीवन से हटाकर ज्ञानमार्ग की ओर ले जाने में सहायक हैं। इसके अन्तरंग में अर्थ, शब्द, भाव एवं विचार की गम्भीरता और सूत्रों में सम्पूर्ण जीव-जगत के रहस्य का छायांकन है। इसके भाष्यों में जिनशासन का अपूर्व दर्शन, विज्ञान, गणित, ज्योतिष, भूगोल, खगोल आदि विधाओं का गुम्फन है।

अंग आगमों की संख्या बारह है जिसमें तीर्थकरों की वाणी सिद्धान्त रूप में प्रतिपादित हैं। आचार-विचार, व्यवहार, समय, समवाय आदि सभी कुछ इसके मूल में हैं, परन्तु इसके मूल को समझाने के लिए जो कथात्मक प्रयोग किये गये हैं वे सभी अंग आगम ग्रन्थों में नहीं हैं। अनुसंधानकर्ताओं एवं विचारकों ने कथा के स्वरूप को ध्यान में रखकर ज्ञाताधर्म को कथा ग्रन्थ का प्रारम्भिक चरण स्वीकार किया है। मैंने जैसे ही आगमों के अध्ययन को प्रारम्भ किया वैसे ही धर्म तत्त्व के गम्भीर रहस्य हमारे सामने आये परन्तु रहस्य को रहस्य बनाए रखने का प्रयोजन न होने के कारण यह संकल्प किया कि महावीर के जितने भी उपदेश हैं क्या वे सहज एवं सरल रूप में किसी आगम के माध्यम से समझे जा सकते हैं। इस दृष्टि से ज्ञाताधर्मकथांग, विपाकसूत्र आदि कई अंग आगम रहस्य को समझानेवाले ग्रन्थ मेरे चिन्तन के विषय बन गए। किन्तु शोध-प्रबन्ध के रूप में मैंने ज्ञाताधर्मकथांग को सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की स्थापना करनेवाला विशिष्ट कथात्मक ग्रन्थ मानकर इसका समालोचनात्मक एवं साहित्यिक विश्लेषण किया है।

आगम आप्तवचन है इसकी परम्परा अनादि है, परन्तु इसके अन्तिम उपदेशक महावीर माने जाते हैं जिनके उपदेश अर्थ रूप में विद्यमान हैं। गणधरों ने उसे सूत्रबद्ध किया और आचार्यों ने उनकी देशना को विधिवत विषयानुसार विभाजित करके आगम

ग्रन्थ का रूप प्रदान किया। आगम को अंग, उपांग, मूलसूत्र, छेदसूत्र आदि के रूप में विभाजित किया गया है। इनका यह विभाजन विविध वाचनाओं के माध्यम से किया गया है।

ज्ञाताधर्मकथांग अंग आगमों का छठा ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में सिद्धान्त, आचार-विचार संयम-साधना आदि को समझाने के लिए संयमी जीवों की प्रचलित कहानियों एवं प्रचलित पशु-पक्षियों के उदाहरणों को सामने रखकर कहीं प्रतीकात्मक योजना बनाई गयी है तो कहीं पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथा को लेकर सिद्धान्त का निरूपण किया गया है।

ज्ञाताधर्मकथांग की रचना कब और किसने की यह कहा नहीं जा सकता, क्योंकि यह मूल अंग आगम ग्रन्थों का एक सूत्र ग्रन्थ है जिसे अर्थरूप में अरिहन्त भगवन्त ने प्रतिपादित किया और गणधरों ने उसे सूत्रबद्ध किया। पंचम गणधर आर्य सुधर्मा स्वामी ने जो प्रश्न किये उन्हीं प्रश्नों का समाधान जम्बूस्वामी ने किया। जम्बूस्वामी के समाधान कथात्मक रूप में हैं। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में सुधर्मा-जम्बूस्वामी का वर्णन एवं 'णाय्याणि य धम्मकहाओ य' शब्द इसकी प्राचीनता को सिद्ध करते हैं। इसके प्रारम्भ में इस बात का भी विवेचन किया गया है कि यह धर्मकथा छठे अंग के रूप में दो श्रुत स्कन्धों में विभाजित है। जो ज्ञातृपुत्र महावीर के द्वारा प्रतिपादित अर्थ को व्यापक रूप प्रदान करती है।

ज्ञाताधर्मकथांग से सम्बन्धित ग्रन्थों का प्रकाशन समय-समय पर किसी न किसी रूप में अवश्य हुआ है। पूर्व में हस्तलिखित पाण्डुलिपि के रूप में और बाद में विशेष सम्पादन के रूप में प्रताकार प्रतियाँ हमारे सामने आयीं। पुनः जन-जन में लोकप्रिय बनाने के लिए इन्हें पुस्तकाकार रूप दिया गया और लगभग बीसवीं शताब्दी के मध्य में हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित किया गया, जिनमें मूल पाठों की सुरक्षा भी की गई। प्राकृत कथा साहित्य का स्वरूप आगमों के हृदय में विद्यमान है। आचारांग में महावीर का जीवन स्वरूप कथात्मक रूप में ही आया है। सूत्रकृतांग में भी कई प्रकार की कथाएँ हैं, परन्तु वे कथाएँ कथानक, कथाविकास, पात्र चरित्र-चित्रण, उद्देश्य आदि को विस्तार निरूपित नहीं करती हैं। ज्ञाताधर्मकथा जैन साहित्य का प्रथम कथाग्रन्थ है। भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों ही दृष्टियों से ज्ञाताधर्मकथांग को प्राचीन कथाग्रन्थ कहा जा सकता है। साथ ही यह भी प्रमाणित होता है कि प्राकृत के आगम ग्रन्थों की कथाओं से ही कथाओं का विकास हुआ है।

ज्ञाताधर्मकथांग की कथाएँ कथा प्रवृत्तियों के सम्पूर्ण अन्तरंग एवं बहिरंग भावों

को लिए हुए विषय की ओर बढ़ती हैं। कथा वर्गीकरण के कारण इसके भाव को यद्यपि धर्मकथा के रूप में व्यक्त किया गया है, परन्तु इसमें दिव्य-कथा, मानवीय-कथा और दिव्य-मानवीय-कथा के स्वरूप भी विद्यमान हैं। यह एक ऐसा कथाग्रन्थ है जिसमें घटनाक्रम को सविस्तार उद्देश्यपूर्वक प्रदर्शित किया गया है। यथा- धर्म, अर्थ और काम ये तीन पुरुषार्थ मानव जीवन को क्रियाशील बनाते हैं जिसकी परिणति उद्देश्यमूलक मोक्ष के रूप में होती है।

जहाँ तक इसकी विषयवस्तु का प्रश्न है तो सर्वत्र ही उपदेश, नीति, आचरण, संयम, त्याग, तप आदि में तादात्म्य सम्बन्ध है। इसकी एक कथा में कई अवान्तर कथाएँ हैं जिनकी सामान्य विशेषताएँ व्यक्ति के विशेष गुणों को उद्घाटित करती हैं।

ज्ञाताधर्मकथांग का जो साहित्यिक स्वरूप है वह निश्चित ही आधुनिक कथा साहित्य के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। इसी दृष्टि से वर्तमान परिप्रेक्ष्य से इसके साहित्यिक स्वरूप का विश्लेषण किया गया है। कथाकार ने इसमें अन्तरंग और बहिरंग दोनों ही प्रकार की दृष्टियों को सामने रखकर कथानकों को बखूबी प्रस्तुत किया है। इसमें मानवजीवन का प्रतिनिधित्व, पशु-पक्षियों का प्रतिनिधित्व एवं लोक प्रचलित पात्रों का प्रतिनिधित्व कथानक की वास्तविकता को चित्रित किया है। जिससे कथानक में न केवल तथ्य की सत्यता उद्घाटित हुई है, अपितु मानव-मूल्यों के नैतिक आदर्शों का आभास भी हुआ। आज के उलझनशील, अनाचार, दुराचार एवं प्रदूषित वातावरण में ज्ञाताधर्म के पात्रों की चेतना-शक्ति न केवल प्रेरक बनती है अपितु मनुष्य को मनुष्यत्व का आभास भी कराती है।

ज्ञाताधर्म कथा के पात्र बोलते, चलते, फिरते एवं आपस में बात-चीत करते हुए प्रतीत होते हैं, क्योंकि कथा की वर्णन योजना उदात्तीकरण के साथ-साथ जनमानस के लोकतत्त्व की रुचि के अनुसार है, इसलिए इसकी मौलिकता मनोरञ्जन और शिक्षा दोनों ही प्रदान करती हैं।

आगमों की भाषा अर्धमागधी मानी गयी है। आर्ष प्राकृत के रूप में इसका प्रमुख स्थान है। ज्ञाताधर्मकथांग आर्षपुरुष द्वारा प्ररूपित और आर्ष ज्ञाता द्वारा सूत्रबद्ध किया गया है, अतः आर्ष के गुणों से युक्त अर्धमागधी भाषा के इस आगम ग्रन्थ में कई प्रकार की भाषात्मक विशेषताएँ हैं। आगम भाषा का कोई स्वतन्त्र व्याकरण नहीं है। यदि इनके नियमों को आधार बनाकर व्याकरण प्रस्तुत किया जाए तो अर्धमागधी के प्राचीन स्वरूप को अधिक बल मिल सकेगा। ज्ञाताधर्मकथांग के क्रियात्मक प्रयोगों

में भूतकाल का प्रयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिसमें मूल क्रिया में इंसु, एसुं (गच्छिसुं, गच्छेसुं) जैसे विशेष प्रयोग हैं। अनियमित प्रयोगों के रूप में पण्णत्ते, निग्गया, निग्गओ, पडिगया आदि क्रिया रूपों का प्रयोग है। भूतकाल में था, थी, थे के लिए 'होत्था' के प्रयोग की बहुलता है। गच्छिसुं, गच्छेसुं, होत्था, हुत्था का प्रयोग प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, उत्तम पुरुष के एकवचन और बहुवचन दोनों में ही हुआ है। इसी तरह अन्य प्रयोग भी हैं। भविष्यत्काल में 'भणिस्सति', 'भणिहिति' जैसे प्रयोग हैं जो अन्य आगमों में भी समान रूप से विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त भविष्यत्काल के उत्तम पुरुष में 'होस्सं' रूप भी मिलता है। कर्मणि एवं प्रेरणार्थक को बतलाने के लिए 'कराविति' (आवि प्रत्यय), 'वएज्जा', 'वएज्ज' आदि का प्रयोग किया गया है। इसी तरह वर्तमान, भविष्यत् एवं विधि अर्थक ज्ञान के लिए दोनों वचनों एवं तीनों पुरुषों में 'ज्ज', 'ज्जा' क्रिया में इन दो प्रत्ययों को लगाकर काम चलाया गया है।

भाषात्मक दृष्टि को स्वतन्त्र रूप में प्रस्तुत करने पर ही ज्ञाताधर्म की अर्धमागधी भाषा के स्वरूप का बोध हो सकता है। यह प्रयास हो रहा है जिससे अर्धमागधी आगमों का भाषा की दृष्टि से सही ज्ञान हो सके। यहाँ सिर्फ संक्षिप्त तथा मूल एक दो ही प्रयोगों को दृष्टान्त रूप में रखकर ज्ञाताधर्म के भाषात्मक स्वरूप को स्पष्ट किया गया है जो नगण्य ही कहा जा सकता है।

संस्कृति साहित्य के अंचल का वह भाग है जिसमें सामान्य व्यक्ति से लेकर सम्पूर्ण सामाजिक परिवेश बंधा हुआ है। इसमें विविध वातावरण रीति-नीति, विश्वास, भौगोलिक परिचय, ऐतिहासिक सन्दर्भ, राजनैतिक दृष्टिकोण, आर्थिक जीवन, कला, धर्मदर्शन आदि सांस्कृतिक विरासत के अन्तर्गत आते हैं। इसके बिना सनातन परम्परा का ज्ञान नहीं हो सकता है और न किसी ग्रन्थ के साहित्यिक स्वरूप का ज्ञान ही संभव है। सांस्कृतिक मूल्यों के सभी स्वरूप ज्ञाताधर्म में समाहित हैं जिनकी संक्षिप्त जानकारी दी गयी है।

ज्ञाताधर्मकथांग का सम्पूर्ण परिवेश घटनाक्रमों के वैविध्य से जुड़े हुए अनेक प्रकार के शिल्प विधाओं को भी प्रस्तुत करते हैं। साथ ही यह लोक जीवन की गहरी अनुभूति से युक्त सशक्त कड़ियों में जुड़ा हुआ, कथा के सरस और रोचक सूत्रों को भी प्रतिपादित करता है। इसके कथानकों में नवनिर्माण की विचारधारा को भी देखा जा सकता है। इसकी कथाएँ प्रान्त, देश, सम्प्रदाय, धर्म, राजनीति आदि की भावनाओं से ही नहीं जुड़ी हैं, अपितु गाँव से लेकर नगर के उन्नत वातावरण से भी घनिष्ठता स्थापित की हुई हैं। इसमें मानव को मानव बनाने की शिक्षा है।

इसमें एक ओर चेतन को अचेतन के प्रति भी लगाव रखने की भावना समाहित है तो दूसरी ओर गहरे परिवेश में अनुभूति और सौहार्दमयी आस्था भी यथार्थ को लेकर सत्यार्थ का निरूपण करती है।

ज्ञाताधर्मकथांग के प्रत्येक मूल्यांकन से कोई न कोई दिशा निर्देश अवश्य मिलता है। इसके सांस्कृतिक विवेचन से प्रकृति के परिवेश की जानकारी होती है। इसमें यमुना, सरयू, कोशी, माही, गंडकी, ब्रह्मपुत्र, गंगा आदि बड़ी नदियों की संख्या १४०००^१ बतायी गयी है। इनके योजन का प्रमाण लम्बाई, गहराई आदि अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं हैं। नये-नये नगरों, उपनगरों, ग्रामों, आदि का विवेचन अन्यत्र नहीं मिलता। बत्तीस सुकुमारियों के नामों का उल्लेख, उनकी दीक्षा आदि का प्रसंग इसकी मौलिकता है। इसके अतिरिक्त अन्य कई ऐसे प्रसंग भी हैं जिनको सांस्कृतिक विवेचन में प्रस्तुत किया गया है।

साहित्यिक दृष्टि से इसकी सामग्री आज भी उदात्तीकरण के भाव को व्यक्त करती है। प्रत्येक कथानक चरित्र-चित्रण, कथोपकथन आदि को व्यक्त करने की इसकी जो शैली है वह इससे पूर्व के आगमों में नहीं प्राप्त होती है। परवर्ती आगमों में जो भी कथानक विकसित हुए हैं उनमें इस कथाग्रन्थ का अवश्य ही प्रभाव पाया जाता है। ज्ञाताधर्म के पश्चात् के प्राकृत कथा साहित्य में बदलाव अवश्य आया है परन्तु सभी का उद्देश्य मानव को राग से हटाकर विराग की ओर ले जाना रहा है। सभी का उपसंहार सुखान्त है। दुखान्त वातावरण कथानकों के मध्य में कह दिये गये हैं जो कथा कहने की एक शैली है। ज्ञाताधर्म के कथा कहने की जो शैली है वह आज भी जनमानस के हृदय पटल पर उसी क्रम को लिए हुए निश्चित उद्देश्य का प्रतिपादन करती है। यही इस कथा के साहित्य का साहित्यिक योगदान कहा जा सकता है।



सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) प्राचीन ग्रन्थ सूची

१. अंग-सुत्ताणि : मुनि नथमल, प्रकाशक— जैन विश्वभारती, लाडनू, वि.सं. २०३१.
२. अंगुत्तर-निकाय : काश्यप जगदीश नालन्दा १९५६.
३. अन्तकृत्दंशाग-सूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
४. अनगार धर्माभृत : पं. आशाधर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, वि.सं. २०३४.
५. अनुत्तरौपपातिक-सूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
६. अनुयोगद्वार-सूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
७. आचारांग-वृत्ति भाग १-२ : युवाचार्य मधुकर मुनि श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
८. आचारांग-वृत्ति : शीलांकाचार्य, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.
९. आयारो तह आचारचूला : मुनि नथमल जैन विश्व भारतीय, लाडनूं.
१०. आवश्यक टीका : हरिभद्र, आगमोदय समिति, बम्बई, १९१६.
११. आवश्यकसूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
१२. उत्तराध्ययनसूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
१३. उपासकदशांगसूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.

१४. औपपातिकसूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
१५. कल्पसूत्र : शास्त्री, देवेन्द्रमुनि, तारक गुरु ग्रन्थालय, उदयपुर.
१६. कप्पसुत्त : मुनि कन्हैयालाल "कमल", आगम अनुयोग प्रकाशन, सांडेरावा वि.सं. २०३४.
१७. कर्मग्रन्थ छः भाग : मुनि मिश्रीमल, श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति, ब्यावर.
१८. कषायपाहुड : जयधवला टीका.
१९. कार्तिकेयानुप्रेक्षा : उपाध्ये, ए.एन., श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास, १९७८ ई०.
२०. गीता : गीता प्रेस, गोरखपुर.
२१. गोम्मटसार (कर्मकाण्ड) : नेमिचन्द्र, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास, १९८६.
२२. गोम्मटसार (जीवकाण्ड) : नेमिचन्द्र, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास १९८६.
२३. चन्द्रप्रप्तिसूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
२४. चरणानुयोग, भाग १-२ : सं० मुनि कन्हैयालाल, आगम अनुयोग ट्रस्ट, अहमदाबाद.
२५. छेद सूत्राणि : युवाचार्य मधुकर मुनि श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
२६. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
२७. जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग १-२ : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.

१७६ ज्ञाताधर्मकथांग का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

२८. तत्त्वार्थसार : पं० पन्नालाल, श्री गणेश प्रसादवर्णी
ग्रन्थमाला, डुमराव बाग, वाराणसी १९७०.
२९. तत्त्वार्थभाष्य : श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास.
३०. तत्त्वार्थसूत्र : विवे० संघवी सुखलाल, पार्श्वनाथ विद्याश्रम
शोध संस्थान, वाराणसी, वि.सं. २०३१.
३१. तत्त्वार्थसूत्र : सम्पा०- शास्त्री कैलाशचन्द्र, भारतीय दिगम्बर
जैन संघ, मथुरा.
३२. तिलोपपण्णति भाग १-२ : सम्पा०- विशुद्धमति भारतवर्षीय दिगम्बर जैन
महासभा, लखनऊ, १९८४.
३३. दशवैकालिकसूत्र : सम्पा०- आचार्य तुलसी, जैन विश्व भारती,
लाडनू.
३४. दशवैकालिकसूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन
समिति, ब्यावर.
३५. दशाश्रुतस्कन्धसूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन
समिति, ब्यावर.
३६. द्रव्यसंग्रह : नेमिचन्द्र, कुन्दकुन्द भारती, दिल्ली.
३७. धवला टीका : जैन संस्कृति रक्षक संघ; शोलापुर.
३८. धर्मबिन्दु : हरिभद्र सूरि, हिन्दी जैन साहित्य प्रचारक
मण्डल, अहमदाबाद.
३९. नंदीसूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन
समिति, ब्यावर.
४०. निरयावलिका सूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन
समिति, ब्यावर.
४१. नियमसार : सम्पा०- परमेष्ठीदास दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा
ट्रस्ट, जयपुर वि.सं., २०४१.
४२. निशीथसूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि श्री आगम प्रकाशन
समिति, ब्यावर.

४३. नीतिवाक्यामृतम : सोमदेव सूरि, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.
४४. पंचास्तिकाय संग्रह : आ० कुन्दकुन्द, दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, जयपुर १९६२.
४५. प्रमाणनयतत्त्वालोक : तिलोकरत्न जैन स्थानक संघ, अहमदनगर.
४६. प्रवचनसार : आ० कुन्दकुन्द, जैन संस्कृति रक्षक संघ, शोलापुर.
४७. प्रश्नव्याकरणसूत्र : (टीका) अभयदेव सूरि, आगमोदय समिति, बम्बई १९८९.
४८. प्रश्नव्याकरणसूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
४९. प्रज्ञापनासूत्र भाग १-३ : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
५०. प्राकृत व्याकरण भाग १-२ : सम्पा०- प्यारचन्द्र जी म०सा०, श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर वि०सं० २०२०.
५१. प्राकृत व्याकरण : वैद्य पी.एल., संस्कृत एवं प्राकृत सीरीज, बम्बई वि०सं० २०१५.
५२. भगवतीसूत्र : टीका अभयदेव सूरि, आगमोदय समिति, रतलाम, १९३७.
५३. भगवती आराधना : विजयोदयाटीका शिवार्य, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, वि०सं० २०३५.
५४. महापुराण : सम्पा०- वैद्य पी.एल., भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली वि०सं० २०३६.
५५. मूलाचार भाग १-२ : भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली.
५६. योगशास्त्र : आ० हरिभद्र, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.
५७. रत्नकरण्डकश्रावकाचार : समन्तभद्र, वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली, १९७२.

१७८ ज्ञाताधर्मकथांग का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

५८. रयणसार : सम्पा०- शास्त्री देवेन्द्र कुमार, श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर वि०सं० २५००.
५९. राजप्रश्नीयसूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
६०. वसुनन्दी श्रावकाचार : आचार्य वसुनन्दी, सोनागिर दातिया.
६१. विशेषावश्यकभाष्य : मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
६२. व्यवहारसूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
६३. व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र : सम्पा०- दोशी बेचरदास, श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई, १९७४.
६४. व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र भाग-१-४ : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
६५. वृहत्कल्पसूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
६६. समण-सूत्र : सर्वसेवा संघ, वाराणसी १९७५.
६७. समयसार : कुन्दकुन्द भारती, प्राकृत भवन, दिल्ली १९९२.
६८. समवायांगसूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
६९. सर्वार्थसिद्धि : सम्पा०- फूलचन्द्र शास्त्री भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली.
७०. स्याद्वादमञ्जरी : अमरचन्द्र भैरोदार सेठिया जैन शास्त्र भण्डार, बीकानेर.
७१. स्थानांगसूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.

७२. सागर धर्माभृत : शास्त्री, कैलाशचन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली २०००.
७३. सिद्धहेमशब्दानुशासन : सम्पा०- प्यारचन्द्र महाराज, ब्यावर १९५६.
७४. सूत्रकृतांगसूत्र : युवाचार्य मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
७५. ज्ञाताधर्मकथांग : आगम संस्थान संग्रहालय, उदयपुर.
७६. ज्ञाताधर्मकथांग : अभयदेव, वृत्ति सहित, बम्बई सन् १९६१.
७७. ज्ञाताधर्मकथा : गुजराती छायानुवाद, पूंजा भाई जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद १९३१.
७८. ज्ञाताधर्मकथा : हिन्दी अनुवाद, मुनि प्यारचन्द्र जी, जैनादय पुस्तक प्रकाशन समिति, रतलाम वि०सं० १९९५.
७९. ज्ञाताधर्मकथा : संस्कृत व्याख्या एवं गुजराती अनुवाद सहित, मुनि घासीलाल जी, जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट, सन् १९६३.
८०. ज्ञाताधर्मकथा : आमोलक ऋषि, हैदराबाद, वि.सं. २४४६.
८१. ज्ञाताधर्मकथा : मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.
८२. ज्ञाताधर्मकथा : जेठालाल, जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, वि.सं. १९८५.
८३. ज्ञाताधर्मकथा : पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल, सेठिया जैन ग्रन्थमाला, बीकानेर.

(ख) आधुनिक सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. अग्रवाल बी.एस. : प्राचीन भारतीय लोकधर्म, अहमदाबाद १९६४.
२. आचार्य तुलसी : उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, जैन श्वे० तेरापंथी महासभा, कलकता, १९६८.

१८० ज्ञाताधर्मकथांग का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

३. उपाचार्य, देवेन्द्र मुनि : जैन नीतिशास्त्र एक परिशीलन, श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, १९८८.
४. उपाध्याय, बलदेव : भारतीय दर्शन, शारदा मन्दिर, वाराणसी १९६०.
५. उपाध्याय, भरतसिंह : बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन
६. उपाध्याय, रामजी : प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद १९६६.
७. कोटिया, महावीर : श्रीमद् जवाहराचार्य-शिक्षा, अ०भा० साधुमार्गी जैनसंघ, बीकानेर १९७७.
८. कोठारी, सुभाष : उपासकदशांग और उसका श्रावकाचार एवं परिशीलन, आगम, अहिंसा, समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर १९८८.
९. चौधरी गुलाबचन्द्र : जैन साहित्य का बृहद इतिहास ६, पार्श्वनाथ शोध संस्थान, वाराणसी १९७३.
१०. जैन उदयचन्द्र : हेमप्राकृत व्याकरण शिक्षक, राजस्थान प्राकृत भारतीय संस्थान, जयपुर १९८३.
११. जैन, जगदीशचन्द्र : प्राकृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६५.
१२. जैन जगदीशचन्द्र : जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी १९६५.
१३. जैन, प्रेमसुमन : कुवलयमाला का सांस्कृतिक अध्ययन, प्राकृत जैन शास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली, २०३२.
१४. जैन, महेन्द्रकुमार : जैन दर्शन, वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, वाराणसी १९७४.
१५. जैन सागरमल : जैन बौद्ध एवं गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग १-२, राजस्थान

- प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर १९८२.
१६. जैन, सुदर्शनलाल : उत्तराध्ययन एक परिशीलन, सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर वि०स० २०१७.
१७. जैनाचार्य जवाहर : गृहस्थ धर्म, श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर.
१८. जैनाचार्य जवाहर : दिव्य सन्देश, श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासार.
१९. जैनाचार्य जवाहर : धर्म और धर्मनायक, श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासार.
२०. पारिक, ओंकार : श्रीमद् जवाहराचार्य समाज, श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर १९७६.
२१. प्रेमी, नाथूराम : जैन साहित्य और इतिहास, हिन्दी ग्रन्थ इलाकर कार्यालय, बम्बई १९४२.
२२. बैद, इन्दरराज : श्रीमद् जवाहराचार्य, श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर १९७८.
२४. भानावत, नरेन्द्र : अपरिग्रह विचार और व्यवहार, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर.
२३. मालवणिग्या, दलसुख : जैन दर्शन का आदिकाल, एल.डी. इन्स्टीट्यूट ऑफ इन्डोलोजी, अहमदाबाद २०३१.
२५. मुनि नथमल : जैन दर्शन मनन और मीमांसा, जैन विश्व भारती, लाडनूं.
२६. मुनि, पुष्कर : श्रावक धर्म-दर्शन, श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर.
२७. मेहता, मोहनलाल : जैनधर्म दर्शन, पार्श्वनाथ विद्या शोध संस्थान, वाराणसी, १९७७.
२८. दोषी, बेचरदास : जैन साहित्य का बृहद इतिहास, वाराणसी वि.सं. २०४६.
२९. रांधेय राघव : प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास.

१८२ ज्ञाताधर्मकथांग का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

३०. लोढ़ा, कन्हैयालाल : जीव-अजीव तत्त्व, प्राकृत भारतीय संस्थान, जयपुर १९९४.
३१. शास्त्री, देवेन्द्रमुनि : जैन आगम साहित्य मनन और मीमांसा, श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर १९८२.
३२. शास्त्री, देवेन्द्रमुनि : जैन आचार मीमांसा, श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर.
३३. शास्त्री, देवेन्द्रमुनि : जैन दर्शन स्वरूप और विश्लेषण, श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर.
३४. शास्त्री, देवेन्द्रमुनि : भगवान महावीर एक अनुशीलन, श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर.
३५. शास्त्री, देवेन्द्रमुनि : ऋषभदेव एक परिशीलन, श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर.
३६. शास्त्री, नेमिचन्द्र : प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी १९६५.
३७. शास्त्री, परमानन्द : जैन धर्म का प्राचीन इतिहास, अ. देशभूषण महा. ग्रन्थमाला, दिल्ली.
३८. शास्त्री, मंगलदेव : भारतीय संस्कृति का विकास, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली.
३९. सिद्धान्तालंकार, हीरालाल : श्रावकाचार संग्रह, जैनसंस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर १९८८.
४०. शर्मा, मकखनलाल : हिन्दी उपन्यास, सिद्धान्त एवं समीक्षा, प्रभाव प्रकाशन, दिल्ली १९६६.

(ग) कोश ग्रन्थ

१. अग्रवाल हिन्दी कोष : शास्त्री, सुखदेव, आगरा बुक स्टोर, आगरा १९४९.
२. अभिधान राजेन्द्र कोष : विजय राजेन्द्र सूरि (सात खण्ड), रतलाम.

३. आगम शब्द कोष : युवाचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्व भारती लाडनूं
१९८०.
४. कुन्दकुन्द शब्द कोष : जैन, उदयचन्द्र, दिग० जैन साहित्य संरक्षण
समिति, दिल्ली.
५. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष : क्षु. जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,
भाग १-४ नई दिल्ली.
६. जैन लक्षणावली : शास्त्री, बालचन्द्र, वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली
१९७९.
७. प्राकृत शब्द कोष : चन्द्रा. के.आर., पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध
संस्थान, वाराणसी.
८. प्राकृत व्युत्पत्ति कोष : अप्रकाशित जैन, उदयचन्द्र
९. पाइय-सद्महाण्णवो : सेठ, हरगोविन्द दास, प्राकृत टेक्स सोसायटी,
अहमदाबाद.
१०. निरुक्त कोष : आचार्य तुलसी, जैन विश्व भारती, लाडनूं
११. संस्कृत हिन्दी कोष : वामन शिवराम आष्टे, मोतीलाल बनारसीदास,
दिल्ली १९७७.
१२. शौरसेनी साहित्य शब्दकोष: अप्रकाशित जैन, उदयचन्द्र.
भाग १-२

(घ) शोध पत्र-पत्रिकाएँ

१. अनेकान्त (त्रैमासिक) : वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली.
२. अमर भारती (मासिक) : सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा.
३. जिनवाणी (मासिक) : सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर.
४. जैन जर्नल : जैन भवन, कलकत्ता.
५. जैन विद्या (छ: माही) : दिग० जैन अतिशय क्षेत्र, महावीर जी (राज.)
६. जैन सिद्धान्त भास्कर : आरा. बिहार.
(छ: माही)

१८४ ज्ञाताधर्मकथांग का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

७. तीर्थकर (मासिक) : हीरा भैय्या प्रकाशन, इन्दौर (म.प्र.)
८. तुलसी प्रज्ञा (त्रैमासिक) : जैन विश्व भारती, लाडनूं.
९. प्राकृत विद्या (त्रैमासिक) : प्राकृत अध्ययन प्रसार संस्थान, उदयपुर.
१०. स्वाध्याय शिक्षा : सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर.
११. सम्बोधि : एल.डी.इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलोजी, अहमदाबाद.
१२. शाकाहार क्रान्ति : हीरा भैय्या प्रकाशन, इन्दौर, (म.प्र.)
१३. श्रमण (त्रैमासिक) : पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी.
१४. श्रमणोपासक (पाक्षिक) : श्री अ०भ० साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर.
१५. शोध पत्रिका : राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर.

Our Important Publication

Studies in Jaina Philosophy	Dr. Nathmal Tatia	200.00
Jaina Temples of Western India	Dr. Harihar Singh	300.00
Jaina Epistemology	Dr. I.C. Shastri	150
Concept of Matter in Indian Thought	Dr. J.C. Sikdar	300.00
Jaina Theory of Reality	Dr. J.C. Sikdar	300.00
Jaina Perspective in Philosophy	Dr. Ramji Singh	200.00
Aspects of Jainology(Complete Set : Vols. 1 to 7)		2500.00
An Introduction to Jaina Sādhanā	Prof. Sagarmal Jain	40.00
Pearls of Jaina Wisdom	Dulichand Jain	120.00
Scientific Contents in Prakrit Canons	Dr. N.L. Jain	400.00
The Heritage of the Last Arhat:Mahāvira	Dr. C. Krause	25.00
The Path of Arhat	T.U. Mehta	200.00
Multi-Dimensional Application of Anekāntavāda Ed. Prof. S.M. Jain		
	& Dr. S.P. Pandey	500.00
The World of Non-Living	Dr. N.L. Jain	400.00
जैनधर्म और तांत्रिक साधना	सागरमल जैन	३५०.००
सागर जैन-विद्या भारती (पाँच भाग)	प्रो० सागरमल जैन	५००.००
गुणस्थान सिद्धान्त : एक विश्लेषण	प्रो० सागरमल जैन	६०.००
अहिंसा की प्रासंगिकता	प्रो० सागरमल जैन	१००.००
अष्टकप्रकरणम्	डॉ० अशोककुमार सिंह	१२०.००
दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति : एक अध्ययन	डॉ० अशोककुमार सिंह	१२५.००
जैन तीर्थों का ऐतिहासिक अध्ययन	डॉ० शिवप्रसाद	३००.००
अचलगच्छ का इतिहास	डॉ० शिवप्रसाद	२५०.००
तपागच्छ का इतिहास	डॉ० शिवप्रसाद	५००.००
सिद्धसेन दिवाकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय	१००.००
जैन एवं बौद्ध योग : एक तुलनात्मक अध्ययन	डॉ० सुधा जैन	३००.००
जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (सम्पूर्ण सेट सात खण्ड)		१४००.००
हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (सम्पूर्ण सेट चार खण्ड)		७६०.००
जैन प्रतिमा विज्ञान	डॉ० मारुतिनन्दन तिवारी	३००.००
महावीर और उनके दर्शधर्म	प्रो० भागचन्द्र जैन	८०.००
वज्जालगं (हिन्दी अनुवाद सहित)	पं० विश्वनाथ पाठक	१६०.००
प्राकृत हिन्दी कोश	सम्पा०-डॉ० के०आर०चन्द्र	४००.००
भारतीय जीवन मूल्य	प्रो० सुरेन्द्र वर्मा	७५.००
नलविलासनाटकम्	सम्पा०-प्रो० सुरेशचन्द्र पाण्डे	६०.००
समाधिमरण डॉ० रज्जनकुमार		२६०.००
हिन्दी गद्य के विकास में पं० सदासुखदासजी का योगदान डॉ० मुन्नी जैन		३००.००
पञ्चाशक-प्रकरणम्	अनु०-डॉ० दीनानाथ शर्मा	२५०.००
जैनधर्म की साध्वियाँ एवं महिलाएँ	हीराबाई बोरदिया	३००.००
बौद्ध प्रमाणमीमांसा की जैन दृष्टि से समीक्षा	डॉ० धर्मचन्द्र जैन	३५०.००
महावीर निर्वाणभूमि पावा : एक विमर्श	भगवतीप्रसाद खेतान	१५०.००
भारत की जैन गुफाएँ	डॉ० हरिहर सिंह	१५०.००

PĀRŚWANĀTHA VIDYĀPĪTH, VARANASI-221005